
शरत
रचनावली

शरत् रचनावली
भाग-3

संपादक मंडल

शरत् रचनावली

भाग-3

संपादक

डॉ० सुशील त्रिवेदी

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली - 110007

ISBN : 81-7145-118-7 (सम्पूर्ण सैट)
ISBN . 81-7145-121-7 (भाग-3)

प्रकाशक : **सन्मार्ग प्रकाशन**
16, यू० बी०, बग्लो रोड,
जवाहर नगर, दिल्ली - 110007

प्रथम संस्करण : 1953.

मूल्य : 400-00 (सपूर्ण सेट 9 भाग 3600-00)

शब्द संयोजन : अन्ना कम्प्यूटर्स, मौजपुर, दिल्ली - 110053.

मुद्रक : चेतना प्रिंसटर्स, मौजपुर, दिल्ली - 110053.

सम्पादकीय

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय (सन् 1876-1936) बांग्ला भाषा के एक बड़े साहित्यकार थे, जिनका साहित्य भाषा की सभी सीमाएँ लांघकर अखिल भारतीय हो गया है। उन्हें अपने जीवन काल में जितनी प्रतिष्ठा और ख्याति बंगाल में मिली उतनी ही लोकप्रियता हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के क्षेत्रों में मिलनी प्रारम्भ हो गई थी। उनके निधन के पश्चात् आज 60 वर्ष बीतने पर भी उनकी रचनाओं के अनुवाद सभी प्रतिष्ठित भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं तथा विश्व की अन्य प्रमुख भाषाओं में हो रहे हैं।

शरत्चन्द्र का जन्म बंगाल के हुगली जिले के एक छोटे से गांव देवानन्दपुर में 15 सितम्बर सन् 1876 में हुआ। इनके पिता श्री मोती लाल साहित्यानुरागी तो थे लेकिन साहित्यानुशीलन से बढ़कर कल्पनाशील थे। शरत् को अपने पिता से मिली यह विरासत उनके साहित्य में पूरी तरह से फलीभूत हुई। शरत् का निजी जीवन एक घुमक्कड़ का लापरवाह जीवन था। इसी कारण शरत्-साहित्य में उनके निजी जीवन की अद्‌भुत झलकियां मिलती हैं।

शरत् का बाल्यकाल और किशोरावस्था का समय सुखी नहीं था। जिसके कारण उनकी दृष्टि और चितन जीवन को यर्थात: से अनुभव करने में सक्षम हुआ। उनकी रचनाओं के पात्र पिछले 100 वर्षों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तनों के होते हुए आज भी जीवित से लगते हैं। इस नाते शरत् वस्तुत: प्रथम कोटि के कथाकार थे।

शरत् गांव की मिट्टी से जुड़े कथाकार थे, यही कारण है कि उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों में गांव-समाज की घटनाएँ चित्रित हैं। उनके साहित्य में वे संवेदना भरपूर है जो पाठक को रस से अभिभूत कर देती है। समाज की निर्मम क्रूरता, विद्रूपता, रूढ़िवादिता को झेलने का उनका निजी अनुभव ही उनके साहित्य में यथार्थता से व्यक्त हुआ है। उनके द्वारा विभिन्न चरित्रों का चरित्रांकन तथा मन को छू लेने वाली कथाओं का गठन उनकी यशस्वी प्रतिभा का परिचय है। जीवन में शरत् ने जो कुछ देखा था, सुना था, अनुभव किया था, उसे ही उन्होंने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

शरत् ने अपने साहित्य में तत्कालीन सामाजिक मूल्यों के आगे प्रश्न चिन्ह लगाये। सदाचार के प्रचलित मानदंडों, विधिविधानो तथा अन्य विसंगतियों पर उन्होंने भरपूर चोट की। शरत् के पुरुष पात्रों से बढ़कर उनकी नायिकाएं हृदय पर प्रभाव डालने वाली हैं, उनके साहित्य में उपेक्षित नारीत्व के प्रति विशेष सहानुभूति है। शरत् मूलत: नारी-संवेदना

के लेखक थे। दलित, अपमानित, पतित भारतीय नारी के साथ शरत् ने व्यवहारिक हमदर्दी का परिचय दिया है जो कि भारतीय साहित्य की अमर वस्तु है।

शरत् प्रसिद्धि से सदा विमुख रहे। अपने लेखन के लिए उन्होंने प्रकाशन का आग्रह कभी नहीं कया। जीवन काल में वह अपनी संभावित ख्याति से कतराते रहे। यह उन के वैरागी मन की अंतर्मुखी प्रतिक्रिया भी हो सकती है। बड़ी दीदी (1907) जब धारावाहिक प्रकाशित हुई तो लेखक का नाम नहीं छपा था। परंतु गठे कथानक, सुन्दर परिपाटी और मनोज्ञ भाषा के कारण लोग हैरान हो गये कि यह लेखक कौन है ?

शरत् के साहित्य की एक विशेषता है कि लेखक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं के कथानक का ताना-बाना बुनते हुए भी अपनी रोमानी प्रवृत्ति की छाप अवश्य छोड़ता रहता है, ताकि कथारस की मर्यादा निभती रहे। उनके साहित्य की अन्य प्रभावी विशेषता है कथोपकथन का ढंग, सघड वर्णन-शैली, मंझी भाषा तथा रचना की सौष्ठवता।

शरत् अपनी सभी रचनाओं में सामाजिक तथा अन्य समस्याओं को वस्तुस्थिति के अनुरुप प्रस्तुत करते हैं लेकिन कोई पुष्ठ समाधान पेश नहीं करते। वह मानवीय संवेदनाओं के प्रति जागरूक होते हुए भी एक प्रचारक के समान नहीं थे, वह केवल सुधारवादी थे। यह होते हुए भी उनकी सभी रचनाओं में एकरसता का नाम नहीं, यही बात उनको सर्वश्रेष्ठ कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

शरत् की प्रारंभिक रचनाओं में बंकिम का प्रभाव साफ दिखाई देता है। देवदास (1901) लिखित तथा 1917 में प्रकाशित) परिणीता, बिराजबहू (1914) तथा देहाती समाज (1916) इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार टैगोर का प्रभाव भी कुछ कहानियों और उपन्यासों में लक्षित किया जा सकता है।

शरत् का सर्वोत्तम रूप वहां व्यक्त होता है जब वह निजी अनुभव से कथाओं का अवतरण करते हैं। ऐसी कृतियों में महत्वपूर्ण हैं—श्रीकांत (चार भाग : सन् 1917, 1918, 1927 तथा 1933) चरित्रहीन (1917) बिराज बहू, देवदास तथा देहाती समाज (उपन्यास) तथा मंदिर नामक कहानी (1904)। यह सभी रचनाएं शरत् के पहले दौर की हैं जब उन्हें एक सशक्त लेखक के रूप में मान्यता मिली थी।

शरत् नियमित रूप में सन् 1913 में सामने आये जब उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचनाएं प्रकाशित हुईं। उन दिनों वह बर्मा में किरानी की नौकरी कर रहे थे तथा उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं चल रहा था। इन रचनाओं की सफलता से वह बांग्ला साहित्य के सबसे पहले साहित्यकार बने जिन्होंने केवल अपने लेखन के बल पर स्वालम्बन पाया और पश्चात् कोठी और कार के मालिक बने। वह नौकरी छोड़ भारत लौट आए और कलकत्ता के एक उपनगर में लेखन को व्यवसाय के रूप में अपनाकर बस गए। उनकी तात्कालिक प्रसिद्धि और बढ़ती लोकप्रियता का हमारे साहित्यिक इतिहास में जोड़ नहीं मिलता। सामान्य पाठक ने उनकी कृतियों को ललक और उत्साह से अपनाया।

'चरित्रहीन' की रचना के साथ उन्हें जहाँ एक ओर भरपूर बदनामी मिली वहीं दूसरी ओर वह राष्ट्रीय महत्व के लेखकों में गिने जाने लगे। तभी वह श्रेष्ठ उपन्यासकार के नाते भी प्रतिष्ठित हुए।

शरत् की रचना का दूसरा दौर एक सजग प्रयास के समान प्रारंभ हुआ। उनकी

प्रतिभा उच्च कोटि की थी साथ ही लेखन शक्ति भी लाजवाब थी। वह एक साथ कई पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं धारावाहिक चलाते थे। इस प्रकार एक के बाद एक उनकी रचनाएं प्रकाशित होने लगीं। बड़ी दीदी के प्रकाशन के छः वर्ष पश्चात 'पंडित मशाई', 'वैंकुठेर विल', मेज दिदि, दर्पचूर्ण, पल्ली-समाज, श्रीकांत, अरक्षणीया, निष्कृति, मामलार फल, गृहदाह, वनविधान, हरिलक्ष्मी, एकादशी वैरागी, विलासी, अभागीर स्वर्ग, अनुराधा, सती ओ परेश, शेष प्रश्न प्रकाशित हुए।

अन्य रचनाओं में विराज बहू, बिन्दुर छेले, काशीनाथ, अनुपमार प्रेम, कोरेल ग्राम, चन्द्र नाथ, देवदास, हरिचरण, बाल्यस्मृति भी यथावत प्रकाशित हुईं।

एक चिंतक के नाते भी उनका नाम चमका। सभी प्रकार के साहित्यक, सामाजिक तथा सामयिक लेख भी वह लिखते थे परंतु सबसे अधिक यश तथा नाम उन्हें 'नारीर मूल्य' नामक लेख से मिला।

शुभदा उनका आरम्भिक काल का उपन्यास है लेकिन उपन्यास में जिन लोगों का वर्णन था वे तब जीवित थे, इसलिए शरत् ने इस उपन्यास को अपने जीवित रहते प्रकाशित नहीं होने दिया। यह उपन्यास उनकी मृत्यु के पश्चात छपा। उनका अंतिम उपन्यासहै जागरण जो कि अपूर्ण है।

बड़ी दीदी उपन्यास के पश्चात रामेर सुमति (राम की सुमति) कहानी के प्रकाशन के साथ शरत् का नाम कहानीकार के नाते भी चमका। जब यह कहानी पत्रिका में छपी तो समकालीन ख्याति नामा स्थापित साहित्यकार भी चमत्कृत हो उठे। पथ निर्देश, महेश, सती आदि इनकी अन्य प्रसिद्ध कहानियां हैं! शरत् की सभी कहानियां सुदीर्घ प्रौढ़ साधना का फल हैं। महेश विश्व की श्रेष्ठतम कहानियों में से एक है।

शरत् ने अपने तीन उपन्यासों का नाट्य रूपांतर स्वयं किया था। इन में 'रमा' का मचंन तो पहले हुआ तथा सफल रहा। वह ब्राह्मण की बेटी का नाट्य रूपांतर करना चाहते थे लेकिन पूर्ण नहीं कर सके।

शरत् के सभी उपन्यासों तथा कहानियों पर सफल फिल्में भी बनी हैं, जो मुखयतः बांग्ला भाषा में हैं। हिन्दी में भी उनके उपन्यासों पर सफल फिल्में बनी हैं। उनके उपन्यासों पर आधारित दूरदर्शन सीरियल भी बने जिनमें चरित्रहीन पूरा तथा श्रीकांत अपूर्ण है। अब भी उनकी कहानी पर आधारित बांग्ला भाषा में फिल्म तैयार हो रही है। अतः सभी माधयमों द्वारा शरत् के साहित्यकार का यश फैला है। शरत् रचनावली में उनके सभी उपन्यास, नाटक और कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं। मूल बांग्ला में पुस्तक रूप में प्रकाशन वर्ष के अनुसार उनका क्रम रखा है। केवल कहानियों मे इस क्रम का पालन नहीं हो सका। प्रत्येक उपन्यास के प्रारंभ मे पुस्तक का मूल बांग्ला नाम तथा प्रकाशन वर्ष दिया जा रहा है ताकि पाठक रचनाकाल की सामयिक परिस्थितियों के अनुसार रसस्वादन करें।

डा० सुशील त्रिवेदी

अनुक्रमणिका

मूल बांग्ला : देवदास
प्रथम प्रकाशन : जून सन् 1917

देवदास

देवदास

1

एक दिन बैसाख के दोपहर में जबकि चिलचिलाती हुई कड़ी धूप पड़ रही थी और गर्मी की सीमा नहीं थीं, ठीक उसी समय मुखोपाध्याय-कुल का देवदास पाठशाला के एक कमरे के कोने में स्लेट लिये हुए पांव फैलाकर बैठा था। सहसा वह अंगड़ाई लेता हुआ अत्यन्त चिन्ताकुल हो उठा और पल-भर में यह स्थिर किया कि ऐसे सुहावने समय में मैदान में गुड्डी उड़ाने के बदले पाठशाला में कैद रहना अत्यन्त दुखदायी है। उर्वर मस्तिष्क से एक उपाय भी निकल आया। वह स्लेट हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ।

पाठशाला में अभी जलपान की छुट्टी हुई थी। लड़कों का दल तरह-तरह का खेल-कूद और शोर-गुल करता हुआ पास के पीपल के पेड़ के नीचे गुल्ली-डंडा खेलने लगा। देवदास ने एक बार उस ओर देखा। जलपान की छुट्टी उसे नहीं मिलती थी; क्योंकि गोविन्द पंडित ने कई बार यह देखा है कि एक बार पाठशाला के बाहर जाने पर फिर लौट आना देवदास बिलकुल पसन्द नहीं करता। उसके पिता की भी आज्ञा नहीं थी। अनेक कारणों से यही निश्चय हुआ था कि इस समय से वह छात्र-सरदार (Monitor) भूलो की देख-भाल में रहेगा।

एक कमरे में पंडितजी दोपहर की थकावट दूर करने के लिए आंख मूंदकर सोये थे, और छात्र-सरदार भूलो एक कोने में हाथ-पांव फैलाकर एक बेंच पर बैठा था और बीच-बीच में कड़ी उपेक्षा के साथ कभी लड़कों के खेल को और कभी देवदास और पार्वती को देखता जाता था। पार्वती को पंडितजी के आश्रय और निरीक्षण में आये अभी कुल एक महीना हुआ है। पंडितजी ने सम्भवत: इसी थोड़े समय में उसका खूब जी बहलाया था, इसी से एकाग्र मन से धैर्यपूर्वक सोये हुए पंडितजी का चित्र 'बोधोदय' के अन्तिम पृष्ठ पर स्याही से खींच रहीं थी और दक्ष चित्रकार की भांति विविध भाव से देखती थी कि उसके बड़े यत्न का वह चित्र आदर्श से कहां तक मिलता है। अधिक मिलता हो, ऐसी बात नहीं थी, पर पार्वती को इसी से यथेष्ट आनन्द और आत्म-सन्तुष्टि मिलती थीं।

इसी समय देवदास स्लेट हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ और भूलो को लक्ष्य करके कहा—'सवाल हल नहीं होता।'

भूलो ने शान्त और गम्भीर मुख से कहा—'कौन-सा सवाल?'

'इबारती.... !

'स्लेट तो देखूं।'

उसके सब काम स्लेट हाथ में लेने मात्र से हो जाते थे। देवदास उसके हाथ में स्लेट देकर पास में खड़ा हुआ। भूलो यह कहकर लिखने लगा कि एक मन तेल का दाम अगर चौदह रूपये, नौ आने, तीन पाई होता है तो... ?

इसी समय एक घटना घटी। हाथ-पांव से हीन बेंच के ऊपर छात्र-सरदार, अपनी पद-मर्यादा के उपयुक्त आसन चुनकर यथानियम आज तीन वर्ष से बैठता आता है। उसके पीछे एक चूने का ढेर लगा हुआ था। इसे किसी समय पंडितजी ने सस्ती दर से खरीदकर रखा था। सोचा था कि दिन लौटने पर इससे एक पक्का मकान बनवायेंगे। कब वह दिन लौटेगा, यह मैं नहीं जानता, परन्तु उसे सफेद चूने को वे बड़े यत्न और सावधानी के साथ रखते थे। संसार से अनभिज्ञ, अपरिणामदर्शी कोई दरिद्र बालक इसका एक क्षण भी नष्ट नहीं करने पाता था। इसीलिए प्रिय-पात्र और अपेक्षाकृत वयस्क भोलानाथ को इस सयत्न संचित वस्तु की सावधानी-पूर्वक रक्षा करने का भार मिला था, और इसी से वह बेंच पर बैठकर उसे देखा करता था।

भोलानाथ लिखता था, एक मन तेल का दाम अगर, चौदह रूपये, नौ आने, तीन पाई है तो.. ? 'अरे बाप रे बाप' इसके बाद बड़ा शोर-गुल मचा। पार्वती जोर से ठहाका मारकर ताली बजाकर जमीन पर लोट गयी। सोये हुए गोविन्द पंडित अपनी लाल-लाल आंखें मींचते हुए घबराकर उठ खड़े हुए; देखा कि पेड़ के नीचे लड़कों का दल कतार बांधकर एक साथ 'हो-हो' शब्द करता हुआ दौड़ा चला जा रहा है और उसी समय दिखायी पड़ा कि टूटे बेंच के ऊपर एक जोड़ा पांव नाच रहा है; और चूने में ज्वालामुखी का विस्फोट-सा हो रहा है। चिल्लाकर पूछा—'क्या है—क्या है—क्या है रे ?'

उत्तर देने के लिए केवल पार्वती थी। पर वह उस समय जमीन पर लेटी हुई ताली बजा रही थी। पंडितजी का विफल प्रश्न क्रोध में परिवर्तित हो गया—'क्या है—क्या है—क्या है रे ?'

इसके बाद श्वेत मूर्ति भोलानाथ चूना ठेलकर खड़ा हुआ। पंडितजी ने और चिल्लाकर कहा—'शैतान का बच्चा, तू ही है—तू ही उसके भीतर है ?'

'आं—आं—आं—'

'फिर ?'

'देवा साले ने—ठेलकर—आं—आं—इबारती—'

'फिर हरामजादा ?'

परन्तु क्षण-भर में सारा व्यापार समझकर चटाई पर बैठकर पूछा—'देवा तुझे धक्के से गिराकर भागा है ?'

भूलो अब और रोने लगा—'आं—आं—आं—' इसके बाद कुछ क्षण चूने की झाड़-पोंछ हुई, किन्तु श्वेत और श्याम के मिल जाने के कारण छात्र-सरदार भूत की भांति मालूम पड़ने लगा और तब भी उसका रोना बन्द नहीं हुआ।

पंडितजी ने कहा—'देवा धक्के से गिराकर चला गया, अच्छा !'

भूलों ने कहा—'आं—आं—आं—'

पंडितजी ने पूछा—'लड़के कहां हैं ?'

इसके बाद लड़कों के दल ने रक्त-मुख हांफते-हांफते लौटकर खबर दी कि 'देवा को हम लोग नही पकड़ सके। उफ! कैसा ताक के ढेला मारता है !'

'पकड़ नहीं सके?'

एक और लड़के ने पहले कही हुई बात को दुहराकर कहा—'उफ! कैसा... !'

'थोड़ा चुप रहो !'

वह दम घोंटकर बग़ल में बैठ गया। निष्फल क्रोध से पहले पंडितजी ने पार्वती को खूब धमकाया, फिर भोलानाथ का हाथ पकड़कर कहा—'चल, एक बार जमींदार की कचहरी में कह आवें।'

इसका तात्पर्य यह है कि जमींदार मुखोपाध्यायजी के निकट उनके पुत्र के आचरण की नालिश करेंगे।

उस समय अन्दाजन तीन बजे थे। नारायण मुखेपाध्यायजी बाहर बैठकर गड़गड़े पर तमाखू पीत थे और एक नौकर हाथ में पंखा लेकर हवा झल रहा था। छात्र के सहित असमय में पंडितजी के आगमन से विस्मित होकर उन्होंने कहा—'क्या गोविन्द है?'

गोविन्द जाति के कायस्थ थे सो झुककर प्रणाम किया और भूलो को दिखाकर सारी बातें सविस्तार वर्णन कीं। मुखोपाध्यायजी ने विरक्त होकर कहा—'तब तो देवदास को हाथ से बाहर जाता हुआ देखता हूँ।'

'क्या करूं, अब आप ही आज्ञा दें !'

जमींदार बाबू ने सटक रखकर कहा—'वह किधर गया?'

'क्या जानूं ? जो लोग पकड़ने गये, उनको ढेलों से मार भगाया।

वे दोनों आदमी कुछ क्षण तक चुप रहे। नारायण बाबू ने कहा—'घर आने पर जो कुछ होगा, करूंगा।

गोविन्द छात्र का हाथ पकड़कर पाठशाला लौट आये तथा मुख और आंख की भाव भंगिमा से सारी पाठशाला को धमकाकर प्रतिज्ञा की कि यद्यपि देवदास के पिता उस गांव के जमींदार हैं, फिर भी वे उसको अब पाठशाला में नहीं घुसने देंगे। उस दिन की छुट्टी समय से कुछ पहले ही हो गयी। जाने के सयम लड़कों में अनेकों प्रकार ही आलोचनाएं और प्रत्यालोचनाएं होती रहीं।

एक ने कहा—'उफ ! देवा कितना मजबूत है !'

दूसरे ने कहा—'भूलों को अच्छा छकाया !'

'उफ ! कैसा ताककर ढेला मारता था !'

एक दूसरे ने भूलो का पक्ष लेकर कहा—'भूलो इसका बदला लेगा, देखना !'

'हिश् ! वह अब पाठशाला में थोड़े ही आयेगा जो कोई बदला लेगा।'

इसी छोटे दल के एक ओर पार्वती भी अपनी पुस्तक और स्लेट लेकर घर आ रही थी। पास के एक लड़के का हाथ पकड़ पूछा—'मणि, देवदास को क्या सचमुच ही अब पाठशाला नहीं आने देंगे ?'

मणि ने कहा—'नहीं, किसी तरह नहीं आने देंगे।'

पार्वती हट गयीं, उसे यह बातचीत बिलकुल नहीं सुहायी। पार्वती के पिता का नाम नीलकंठ चक्रवर्ती है। चक्रवर्ती महाशय जमींदार के पड़ोसी है, अर्थात् मुखोपाध्याय जी

के विशाल भवन के बगल में ही उनका छोटा-सा पुराने किते का मकान है। उनके बारह बीघे खेती-बारी है, दो-चार घर जजमानी है, जमींदार के घर से भी कुछ-न-कुछ मिल जाया करता है। उनका परिवार सुखी है और दिन अच्छी तरह से कट जाता है।

पहले धर्मदास के साथ पार्वती का सामना हुआ। वह देवदास के घर का नौकर था! एक वर्ष की अवस्था से लेकर आठ वर्ष की उम्र तक वह उसके साथ है; पाठशाला पहुँचा आता है और छुट्टी के समय घर पर ले आता है, यह कार्य वह यथानियम प्रतिदिन करता है तथा आज भी इसीलिए पाठशाला गया। पार्वती को देखकर उसने कहा—'पत्तो, तेरा देव दादा कहां है?'

'भाग गये।'

धर्मदास ने बड़े आश्चर्य से कहा—'भाग गये ! क्यों ?'

फिर पार्वती ने भोलानाथ की दुर्दशा की कथा को नये ढ़ंग से स्मरण कर हेसना आरम्भ किया-'देख धर्म, देव दादा—हि—हि—हि—एक बार ही चूने की ढेर में हि—हि—हूं—हूं—एकबागी धर्म, चित्त कर दिया...।'

धर्मदास ने सब बातें न समझकर भी हंसी देखकर थोड़ा-सा हंस दिया,फिर हंसी रोककर कहा—'कहती क्यों नहीं पत्तो, क्या हुआ ?'

'देवदास ने भूलो को धक्का देकर चूने में गिरा..हि-हि-हि- !'

धर्मदास इस बार सब समझ गया और अत्यन्त चिन्तित होकर कहा—'पत्तों, वह इस वक्त कहां है, तुम जानती हो?'

'मैं क्या जानूं ?'

'तू जानती है, कह दे। हाय ! हाय उसे भूख लगी होगी।'

'भूख लगी होगी, पर मैं कहूंगी नहीं ।'

'क्यों नहीं कहेगी ?'

'कहने से मुझे बहुत मारेंगे। मैं खाना दे आऊँगी।'

धर्मदास ने कुछ असन्तुष्ट होकर कहा—'तो दे आना और संझा के पहले ही घर भुलावा देकर ले आना।'

'ले आँऊगी।'

घर पर आकर पार्वती ने देखा कि उसकी मां और देवदास की मां ने सारी कथा सुन ली है। उससे भी सब बातें पूछी गयीं। हंसकर, गम्भीर होकर उससे जो कुछ कहते बना, उसने कहा। फिर आंचल में फरूही बांधकर वह जमींदार के एक बगीचे में घुसी। बगीचा उन लोगों के मकान के पास था और इसी में एक ओर एक बंसवाड़ी थी। वह जानती थी कि छिपकर तमाखू पीने के लिए देवदास ने इसी बंसवाड़ी के बीच एक स्थान साफ कर रखा है। भागकर छिपने के लिए यही उसका गुप्त स्थान था। भीतर जाकर पार्वती ने देखा कि बांस की झाड़ी के बीच में देवदास हाथ में एक छोटा-सा हुक्का लेकर बैठा है और बड़ों की तरह धूम्रपान कर रहा है। मुख बड़ा गम्भीर था, उससे यथेष्ट दुर्भावना का चिन्ह प्रकट हो रहा था। वह पार्वती को आयी देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु बाहर प्रकट नहीं किया। तमाखू पीते-पीते कहा—'आओ।'

पार्वती पास आकर बैठ गयी। आंचल में जो बंधा हुआ था, उस पर देवदास की

दृष्टि तत्क्षण पड़ी। कुछ भी न पूछकर उसने पहले उसे खोलकर खाना आरम्भ करते हुए कहा—'पत्तो, पंडितजी ने क्या किया?'

'बड़े चाचा से कह दिया।'

देवदास ने हुंकारी भरकर, आंख तरेरकर कहा—'बाबूजी से कह दिया?'

'हां।'

'उसके बाद?'

तुमको अब आगे से पाठशाला नहीं जाने देंगे।'

'मैं भी पढ़ना नहीं चाहता।'

इसी समय उसका खाद्य-द्रव्य प्राय: समाप्त हो चला। देवदास ने पार्वती के मुख की ओर देखकर कहा—'सन्देश दो।'

'सन्देश तो नहीं लायी हूं।'

'तब पानी लाओ।'

'पानी कहां पाऊंगी ?'

देवदास ने विरक्त होकर कहा—'कुछ नहीं है तो आयी क्यों? जाओ, पानी ले आओ।'

उसका रूखा स्वर पार्वती को अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—'मैं नहीं जा सकती, तुम जाकर पी आओ।'

'मैं क्या अभी जा सकता हूं?'

'तब क्या यहीं रहोगे ?'

'यहीं पर रहूंगा, फिर कहीं चला जाऊंगा ।'

पार्वती को यह सब सुनकर बड़ा दुख हुआ। देवदास का यह आपत्य वैराग्य देखकर और बातचीत सुनकर उसकी आंखों में जल भर आया; कहा—'मैं भी चलूंगी !'

'कहां ? मेरे साथ? भला यह क्या हो सकता है?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'चलूंगी !'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। तुम पहले पानी लाओ।'

पार्वती ने फिर सिर हिलाकर कहा—'चलूंगी !'

'पहले पानी ले आओ।

'मैं नहीं जाऊंगी, तुम भाग जाओगे।'

'नहीं, भागूंगा नहीं।'

परन्तु पार्वती इस बात पर विश्वास नहीं कर सकी, इसी से बैठी रही। देवदास ने फिर हुक्म दिया—'जाओ, कहता हूँ।'

'मैं नहीं जा सकती ।'

क्रोध से देवदास ने पार्वती का केश खींचकर धमकाया—'जाओ, कहता हूं।'

पार्वती चुप रहीं। फिर उसने उसकी पीठ पर एक घूंसा मारकर कहा—'नही जाओगी?'

पार्वती ने रोते-रोते कहा—'मैं किसी तरह नहीं जा सकती ।'

देवदास एक ओर चल गया। पार्वती भी रोते-रोते सीधी देवदास के पिता के सम्मुख

आकर खड़ी हो गयी। मुखोपाध्यायजी पार्वती को बहुत प्यार करते थे। उन्होंने कहा—'पत्तो, रोती क्यों है।

'देवदास ने मारा है।'

'वह कहां है?'

'इसी बंसीवाड़ी में बैठकर तमाखू पी रहे है।'

एक तो पंडितजी के आगमन से वह क्रोधित होकर बैठे थे, अब यह खबर पाकर वे एकदम आग-बबूला हो गये। कहा—'देवा तमाखू भी पीता है?'

'हां, पीते हैं, बहुत दिनों से पीते हैं। बंसवाड़ी के बीच में उनका हुक्का छिपाकर रखा हुआ है।'

'इतने दिन तक मुझसे क्यों नहीं कहा?'

'देव दादा मारने को कहते थे।'

वास्तव में यह बात सत्य नहीं थी। कह देने से देवदास मार खाता, इसी से उसने यह बात नहीं कहीं थी। आज वही बात केवल क्रोध के वशीभूत होकर उसने कह दी। इस समय उसी व्रयस केवल आठ वर्ष की थी। क्रोध अभी अधिक था; किन्तु इसी से उसकी बुद्धि-विवेचना नितान्त अल्प नहीं थी। घर जाकर वह बिछौने पर लेट गयी और बहुत देर तक रोने-धोने के बाद सो गयी। उस रात को उसने खाना भी नहीं खाया।

2

दूसरे दिन देवदास ने बड़ी मार खायी। उसे दिन-भर घर में बन्द रखा गया। फिर जब उसकी माता बहुत रोने-धोने लगी, तब देवदास को छोड़ दिया गया। दूसरे दिन भोर के समय उसने भागकर पार्वती के घर की खिड़की के नीचे आकर खड़े होकर उसे बुलाया-'पत्तो, पत्तो!'

पार्वती ने खिड़की खोलकर कहा—'देव दादा !'

देवदास ने इशारे से कहा—'जल्दी आओ।'

दोनों के एकत्र होने पर देवदास ने कहा-'तुमने तमाखू पीने की बात क्यों कह दी?'

'तुमने मारा क्यों?'

'तुम पानी लेने क्यों नहीं गयीं?'

पार्वती चुप रही। देवदास ने कहा—'तुम बड़ी गदही हो, अब कभी मत कहना।'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'नही कहूंगी।'

'तब चलो, बांस से बंसी काट लायें। आज बांध में मछली पकड़नी होगी।'

बंसवाड़ी के निकट एक नोना का पेड था, देवदास उस पर चढ़ गया। बहुत कष्ट से बांस की एक नाली नवाकर, पार्वती को पकड़ने के लिए देकर कहा—'देखो, इसे छोड़ना नहीं, नहीं तो मैं गिर पड़ूंगा।'

पार्वती उसे प्राणपण से पकड़े रही। देवदास उसे पकड़कर, नोना की एक डाल पर पांव रखकर बंसी काटने लगा। पार्वती ने नीचे से कहा—'देव दादा, पाठशाला नहीं जाओगे?'

'नही।'

'बड़े चाचा तुम्हें भेजेंगे तब ?'

'बाबू जी ने खुद ही कहा है कि अब मै वहा नहीं पढूगा। पंडितजी ही मकान पर आवेंगे।'

पार्वती कुछ चिन्तित हो उठी। फिर कहा—'कल से गरमी की वजह से पाठशाला सुबह की हो गयी है, अब मै जाऊगी।'

देवदास ने ऊपर से आख लाल करके कहा—'नहीं, यह नहीं हो सकता।'

इस समय पार्वती थोड़ा अन्यमनस्क-सी हो गयी और नोना की डाल ऊपर उठ गयी। साथ-ही-साथ देवदास नोना की डाल से नीचे गिर पड़ा। डाल अधिक ऊंची नही थी, इससे ज्यादा चोट नहीं आयी, किन्तु शरीर के अनेक स्थान छिल गये। नीचे आकर क्रुद्ध देवदास ने एक सूखी कइन लेकर पार्वती की पीठ के ऊपर, गाल के ऊपर और जहां-तहा जोर से मारकर कहा—'जा, दूर हो जा।'

पहले पार्वती स्वय ही लज्जित हुई थी, पर जब छड़ी-पर-छड़ी क्रम से पड़ने लगी, तो उसने क्रोध और अभिमान से दोनो आखे अग्नि की भांति लाल-लाल कर रोते हुए कहा—'मै अभी बड़े चाचा के पास जाती हूँ।'

देवदास ने क्रोधित होकर और एक बार मारकर कहा—'जा, अभी जाकर कह दे, मेरा कुछ नही होगा।'

पार्वती चली गयी। जब वह दूर चली गयी—तब देवदास ने पुकारा—'पत्तो ।' पार्वती ने सुनी-अनसुनी कर दी और और भी जल्दी-जल्दी चलने लगी। देवदास ने फिर बुलाया—'ओ पत्तो, जरा सुन जा ।'

पार्वती ने जवाब नहीं दिया। देवदास ने विरक्त होकर थोड़ा चिल्लाकर आप-ही-आप कहा—जाकर मरने दो।

पार्वती चली गयी। देवदास ने जैसे-तैसे करके दो-एक बसी काट ली। उसका मन खराब हो गया था। रोते-रोते पार्वती मकान पर लौट आयी। उसके गाल के ऊपर छड़ी के नीले दाग की साट उभर आयी थी, पहले ही उस पर दादी की नजर पड़ी। वे चिल्ला उठीं—'बाप रे बाप! किसने ऐसा मारा है, पत्तो ?'

आख मीचते-मीचते पार्वती ने कहा—पंडितजी ने ।'

दादी ने उसे लेकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—'चल तो, एक बार नारायण के पास चले, वह कैसा पडित है। हाय-हाय ! बच्ची को एकदम मार डाला !'

पार्वती ने पितामही के गले से लिपटकर कहा—'चल ।'

मुखोपाध्यायजी के निकट आकर पितामही ने पडितजी के मृत पुरखा-पुरखनियो को अनेको प्रकार से भला-बुरा कहकर तथा उनकी चौदह पीढ़ियों को नरक मे डालकर, अन्त मे स्वय गोविन्द को बहुत तरह से गाली-गुफते देकर कहा—'नारायण, देखो तो उसकी हिम्मत को! शूद्र होकर ब्राह्मण की कन्या के शरीर पर हाथ उठाता है! कैसा मारा है, एक बार देखो!' यह कहकर वृद्धा गाल के ऊपर पड़े हुए नीले दाग को अत्यन्त वेदना के साथ दिखाने लगी।

नारायण बाबू ने तब पार्वती से पूछा—'किसने मारा है, पत्तो ?'

पार्वती चुप रही। तब दादी ने और एक बार चिल्लाकर कहा—'और कौन मारेगा सिवा उस गवार पडित के ।'

'क्यों मारा है ?'

पार्वती ने इस बार भी कुछ नहीं कहा। मुखोपाध्याय महाशय ने समझा कि किसी कुसूर पर मारा है, लेकिन इस तरह मारना उचित नहीं। प्रकट मे भी यही कहा। पार्वती ने पीठ खोलकर कहा—'यहां भी मारा है।'

पीठ के दाग़ और भी स्पष्ट तथा गहरे थे। इस पर वे दोनों ही बड़े क्रोधित हुए। 'पंडितजी के बुलाकर कैफियत तलब की जायेगी।' मुखोपाध्यायजी ने यही अपनी राय ज़ाहिर की। इस प्रकार स्थिर हुआ कि ऐसे पंडित के निकट लड़के-लड़कियों को भेजना उचित नहीं।

यह निश्चित सुनकर पार्वती प्रसन्नतापूर्वक दादी की गोद में चढ़कर घर लौट आयी। घर पहुंचने पर पार्वती माता की जिरह में पड़ी। उन्होंने बैठकर पूछा—'क्यों मारा है?'

पार्वती ने कहा—'झूठ-ही-मूठ मारा है।'

माता ने कन्या का कान खूब जोर से मलकर कहा—'झूठ-मूठ कोई मार सकता है?'

उसी समय दालान से सास जा रही थी, उन्होंने घर की चौखट के पास आकर कहा—'बहू, मां होकर भी तुम झूठ-मूठ मार सकती हो और वह निगोड़ा नहीं मार सकता?'

बहू ने कहा—'झूठ-मूठ कभी नहीं मारा है। बड़ी भली लड़की है, जो कुछ नहीं किया और उन्होंने मारा!'

सास ने विरक्त होकर कहा—'अच्छा यही सही, पर इसे मैं पाठशाला नहीं जाने दूंगी।'

'लिखना-पढ़ना नहीं सीखेगी?'

'क्या होगा सीखकर, बहू? एक-आध चिट्ठी-पत्री लिख लेना, रामायण-महाभारत पढ़ लेना ही काफी है। फिर तुम्हारी पत्तो को न जजी करनी है और न वकील होना है।'

अन्त में बहू चुप हो गयी। उस देवदास ने बहुत डरते-डरते घर में प्रवेश किया। पार्वती ने आदि से लेकर अन्त तक सारी घटना अवश्य ही कह दी होगी, इसमे उसे कोई सन्देह नहीं था। परन्तु घर आने पर उसका लेशमात्र भी आभास न मिला, वरन मां से सुना कि आज गोविन्द पंडितजी ने पार्वती के खूब मारा है, इसी से अब वह भी पाठशाला नहीं जायेगी। इस आनन्द की अधिकता से वह भली-भांति भोजन भी नही कर सका। किसी तरह झटपट खा-पीकर दौड़ा हुआ पार्वती के पास आया और हांफते-हांफते कहा—'तुम अब पाठशाला नहीं जाओगी?'

'नहीं।'

'कैसे?'

'मैंने कहा कि पंडितजी मारते हैं।

देवदास एक बार हंसा, उसकी पीठ ठोककर कहा कि उसके समान बुद्धिमती इस पृथ्वी पर दूसरी नहीं है। फिर उसने धीरे-धीरे पार्वती के गाल पर पड़े हुए नीले दाग ही सयत्न परीक्षा कर, निःश्वास फेंककर कहा—'अहा!'

पार्वती ने थोड़ा हंसकर उसके मुख की ओर देखकर कहा—'क्यों?'

'बड़ी चोट लगी न पत्तो?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'हूं!'

'तुम क्यो ऐसा करती हो? इसी से तो क्रोध आता है और इसीलिए मारता भी हूं।'

पार्वती की आंखों में जल भर आया। मन में आया कि पूछे कि क्या करे? परन्तु पूछ नहीं सकी।

देवदास ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—'अब ऐसा कभी नहीं करना—अच्छा!'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं करूंगी।'

देवदास ने और बार पीठ ठोककर कहा—'अच्छा, तब मैं कभी तुमको नहीं मारूंगा।'

3

दिन पर दिन बीतता जाता था—और इन दोनों बालक-बालिकाओं के आनन्द की सीमा नहीं थी। सारे दिन वे इधर-उधर घूमा करते थे, संध्या के समय लौटने पर डांट-डपट के अतिरिक्त मार-पीट भी खूब पड़ती थी। फिर सुबह होते ही घर से निकल भागते थे और रात को आने पर मारपीठ और घुड़की सहते थे। रात में सुख की नींद सोते; फिर सवेरा होते ही भागकर खेल-कूद में जा लगते। इसका दूसरा कोई संगी-साथी न था, जरूरत भी नहीं थी। गांव में उपद्रव और अत्याचार करने के लिए यही दोनों काफी थे। उस दिन आंखें लाल किये सारे तालाब को मथकर पन्द्रह मछलियां पकड़ीं और योग्यतानुसार आपस में हिस्सा लगाकर घर लौटे। पार्वती की माता ने कन्या को मार-पीठकर घर में बंद कर दिया। देवदास के विषय में ठीक नहीं जानता; क्योंकि वह इन सब बातों को किसी प्रकार प्रकट नहीं करता। जब पार्वती रो रही थी, उस समय दो या ढाई बजे थे। देवदास ने आकर एक बार खिड़की के नीचे से बहुत मीठे स्वर से बुलाया—'पत्तो, ओ पत्तो!' पार्वती ने सम्भवत: सुना, किन्तु क्रोधवश उत्तर नहीं दिया। तब उसने एक निकटवर्ती चम्पा के पेड़ पर बैठकर सारा दिन बीता दिया। संध्या के समय धर्मदास समझा-बुझाकर बड़े परिश्रम से उसे उतारकर घर पर लाया।

यह केवल उसी दिन हुआ। दूसरे दिन पार्वती भोर से ही देव दादा के लिए बेचैन हो रही थी, लेकिन देवदास नहीं आया। वह पिता के साथ पास के गांव में निमन्त्रण में गया हुआ था। देवदास जब नहीं आया तो पार्वती उदासीन मन से घर से बाहर निकली। कल ताल में उतरने के समय देवदास ने पार्वती को तीन रूपये रखने के लिए दिये थे कि कहीं खो न जायें। उन तीनों रूपयों को उसने आंचल की छोर में बांध लिया था। उसने आंचल को हिरा-फिराकर और स्वयं इधर-उधर घूमकर कई क्षण बिताये। कोई संगी-साथी नहीं मिला, क्योंकि उस समय प्रात:काल की पाठशाला थी। पार्वती तब दूसरे गांव में गयी। वहां मनोरमा का मकान था। मनोरमा पाठशाला में पढ़ती थी, उसकी उम्र कुछ बड़ी थी। परन्तु वह पार्वती की सखी थी। बहुत दिनों से आपस में भेंट नहीं हुई थी। आज पार्वती ने अवकाश पा उसके घर पर जाकर पुकारा—'मनो घर में है?'

'पत्तो?'

'हां—मनो कहां है बुआ?'

'वह पाठशाला गयी है—तुम नहीं जाती?'

'मैं पाठशाला नहीं जाती, देव दादा भी नहीं जाते।'

मनोरमा की बुआ ने हंसकर कहा—'तब तो अच्छा है, तुम भी पाठशाला नहीं जाती और देव दादा भी नही।'

'नहीं, हम लोग कोई नही जाते।'

'अच्छी बात है, पर मनो पाठशाला गयी है।'

बुआ ने बैठने को कहा, पर वह बैठी नहीं, लौट आयी। रास्ते में रसिकपाल की दुकान के पास तीन वैष्णवी तिलक-मुद्रा लगाये, हाथ में खंजड़ी लिये भिक्षा मांग रही थीं। पार्वती ने उन्हें बुलाकर कहा—'ओ वेष्णवी तुम लोग गाना जानती हो?'

एक ने फिरकर देखा और कहा—'जानती हूं, क्या है बेटी?'

'तब गाओ !' तीनों खड़ी हो गयीं। एक ने कहा—'ऐसे कैसे गाना होगा, भिक्षा देनी होगी। चलो तुम्हारे घर पर चलकर गायेंगे।'

'नहीं, यहीं गाओ।'

'पैसा देना होगा !'

पार्वती ने अपना आँचल दिखाकर कही—'पैसा नहीं, रूपया है।'

आँचल में बंधा रूपया देखकर वे लोग दुकान से कुछ दूर पर जाकर बैठी। फिर खंजड़ी बजाकर, गले से गला मिलाकर तीनों ने गाना गाया। क्या गाया, उसका अर्थ था, यह सब पार्वती ने कुछ भी नहीं समझा। इच्छा करने पर भी वह नहीं समझ सकती थी। लेकिन उसी क्षण उसका मन देव दादा के पास खिंच गया।

गाना समाप्त करके एक वैष्णवी ने कहा—'क्या अब भिक्षा दोगी, बेटी?'

पार्वती ने आंचल की गांठ खोलकर उन लोगों को तीनों रूपये दे दिये। तीनों अवाक् होकर उसके मुख की ओर कुछ क्षण देखती रहीं।

एक ने कहा—'किसका रूपया है, बेटी ?'

'देव दादा का।'

'वे तुम्हें मारेंगे नहीं ?'

पार्वती ने थोड़ा सोचकर कहा—'नहीं।'

एक ने कहा—'जीती रहो।'

पार्वती ने हंसकर कहा—'तुम तीनों जने का ठीक-ठीक हिस्सा लग गया न ?'

तीनों ने सिर हिलाकर कहा—'हां, मिल गया। राधारानी तुम्हारा भला करें।' यह कहकर उन लोगों ने आन्तरिक कामना की कि इस दानशीलता छोटी कन्या को कोई दंड-भोग न करना पड़े। पार्वती उस दिन जल्दी ही मका[illegible] दिन प्रातःकाल देवदास से उसकी भेंट हुई। उसके हाथ में एक परेता [illegible]ड़ी नहीं थी, [illegible] खरीदनी होगी। पार्वती से कहा—'पत्तो रूपया दो !'



पार्वती ने सिर झुकाकर कहा—'रूपया नहीं [illegible]'

'क्या हुआ ?'

'वैष्णवी को दे दिया, उन लोगों ने गाना गा[illegible]।'

'सब दे दिया?'

'हां। सब तीन ही रूपये तो थे !'

'दुर पगली, क्या सब दे देना था ?'

'वाह ! वे लोग जो तीन जनी थी, तीन रूपये न देती तो तीनों का कैसे ठीक हिस्सा लगता?'

देवदास ने गम्भीर होकर कहा—'मैं होता तो दो [illegible]ता।' यह

कहकर उसने परेता की मुठिया से मिट्टी के ऊपर चिन्हाटी खींचते-खींचते कहा—'ऐसा होने से उनमें प्रत्येक को दस आना, तेरह गंडा एक कौड़ी का हिस्सा पड़ता।'

पार्वती ने सोचकर कहा—'वे लोग क्या तुम्हारी तरह हिसाब जानती हैं?'

देवदास ने इबारती तक सवाल सीखे हैं। पार्वती की इस बात से प्रसन्न होकर कहा—'यह ठीक है।'

पार्वती ने देवदास का हाथ पकड़कर कहा—मैंने सोचा था कि तुम मुझे मारोगे देव दादा !'

देवदास ने विस्मित होकर कहा—'मारूंगा क्यों?'

'वैष्णवी लोगों ने कहा था कि तुम मारोगे।'

यह बात सुनकर देवदास ने खूब प्रसन्न हो पार्वती के कन्धे पर भार देकर कहा—'दुर ! कभी अपराध करने से क्या मैं मारता हूं?'

देवदास ने सम्भवत: मन में सोचा था कि पार्वती का यह काम उसके पीनल-कोड के अन्तर्गत नहीं है, क्योंकि तीन रूपये तीन आदमियों के बीच ठीक-ठीक तकसीम कर दिये। विशेषत: जिन वैष्णवी लोगों ने पाठशाला में इबारती सवाल नहीं पढ़ा है, उन्हें तीन रूपये के बदले दो रूपये देना उनके प्रति भारी अत्याचार करना था। फिर वह पार्वती का हाथ पकड़ कर छोटे बाजार की ओर गुड्डी खरीदने के लिए चला गया। परेता को वहीं एक झाडी में छिपा दिया।

4

इसी तरह एक वर्ष कट गया, किन्तु अब और नहीं कटना चाहता। देवदास की माता ने शोर-गुल मचाया। स्वामी को बुलाकर कहा 'कि देवा तो एकदम मूर्ख हरवाहा हो गया, इसका कोई बहुत जल्द उपाय करो।'

उन्होंने सोचकर कहा—'देवा को कलकत्ता जाने दो। नगेन्द्र के घर रहकर वह खूब अच्छी तरह लिख-पढ़ सकेगा।'

नगेन्द्र बाबू सम्बन्ध में देवटास के मामा हैं। यह बात सबने सुनी। पार्वती यह सुनकर बहुत चिन्तित हुई। देवदास को अकेले में पाकर उसका हाथ पकड़कर हिलाते-हिलाते पूछा—'देव दादा, क्या अब तुम कलकत्ता जाओगे?'

'किसने कहा ?'

'बड़े चाचा कहते थे।'

'नहीं, मैं किसी तरह नहीं जाऊंगा।'

'और अगर जबरदस्ती भेजेंगे ?'

'जबरदस्ती !'

इस समय देवदास ने अपने मुख का ऐसा भाव बनाया, जिससे पार्वती अच्छी तरह समझ गयी कि उससे इस पृथ्वी-भर में कोई जबरदस्ती से काम नहीं करा सकता। यही तो वह चाहती भी थी। अस्तु, बड़े आनन्द के साथ एक बार और उसका हाथ पकड़कर इधर-उधर हिलाया और उसके मुंह की ओर देखकर कहा—'देखो कभी मत जाना, देव दादा !'

'कभी नहीं।'

किन्तु उसकी यह प्रतिज्ञा नहीं रही। उसके माता-पिता ने उसे डांट-डपटकर और मार-पीटकर धर्मदास के साथ कलकत्ता भेज दिया। जाने के दिन देवदास के हृदय में बड़ा दुख हुआ। नये स्थान में जाने के लिए उसे कुछ भी कौतूहल और आनन्द नहीं हुआ। पार्वती उस दिन उसे किसी तरह छोड़ना नहीं चाहती थी। कितना ही रोई, परन्तु इसे कौन सुनता है। पहले अभिमान में कुछ देर तक देवदास से बातचीत नहीं की; लेकिन अन्त में जब देवदास ने बुलाकर उससे कहा—'पत्तो, मैं जल्दी ही लौट आऊंगा; अगर न आने देंगे तो भाग आऊंगा।' तब पार्वती ने संभलकर अपने हृदय की अनेक आंतरिक बातें देवदास को कह सुनायीं। इसके बाद घोड़ा-गाड़ी पर चढ़कर, पोर्टमॉन्टो लेकर, माता का आशीर्वाद और आंखों का जलबिन्दु कपाल पर टीके की भांति लगाकर वह चला गया। उस समय पार्वती को बहुत कष्ट हुआ; आंखों से कितनी ही जल की धाराएं गालों पर बहकर नीचे गिरी। उसका हृदय अभिमान से फटने लगा। पहले कितने ही दिन उसके ऐसे कटे। इसके बाद एक दिन प्रातःकाल उठकर उसने सोचा कि सारे दिन उसके पास कोई काम करने को नहीं है, इसके पहले पाठशाला छोड़ने के बाद प्रातःकाल से संध्या तक झूठ-मूठ ही खेल-कूद में कट जाता था; कितने ही काम उसे करने को रहते थे, किन्तु समय नहीं मिलता था। पर अब सारे दिन यों ही पड़ी रहती है, एक काम भी खोजने पर नहीं मिलता। प्रातःकाल उठकर किसी दिन चिट्ठी लिखने बैठी-दस बज गये। माता झुंझला उठी, पितामही ने सुनकर कहा—'उसे लिखने दो। सुबह इधर-उधर न दौड़कर लिखते-पढ़ते रहना अच्छा है।'

जिस दिन देवदास का पत्र आता है, वह पार्वती के लिए बड़े सुख का दिन होता है। सीढ़ी की देहली ऊपर बैठकर वही कागज हाथ में लेकर सारे दिन पढ़ती रहती है। इसी भांति दो महीने बीत गये। पत्र लिखना अथवा पाना अब उतना जल्दी-जल्दी नहीं होता, उत्साह भी कुछ कम हो गया।

एक दिन प्रातःकाल पार्वती ने माता से कहा—'मां, मैं फिर पाठशाला जाऊंगी।'

'क्यों ?'

पार्वती पहले कुछ विस्मित हुई, फिर सिर हिलाकर बोली—'मैं जरूर जाऊंगी।'

'तो जा, पाठशाला जाने से मैंने कभी तुझे रोका तो नहीं है।'

उसी दिन दोपहर में पार्वती ने दासी का हाथ पकड़कर, बहुत दिन से छोड़ी हुई स्लेट और पेंसिल को ढूंढकर बाहर निकाला और उसी पुराने स्थान पर शान्त एवं गम्भीर भाव से जा बैठी।

दासी ने कहा—'गुरूजी, पत्तो को अब मारना नहीं, यह अपनी इच्छा से पढ़ने आयी है, जब तक इसकी इच्छा होगी पढ़ेगी और जब इच्छा न होगी, घर चली जायेगी।'

गुरूजी ने मन-ही-मन कहा, तथास्तु ! प्रकट में कहा—'यही होगा।'

एक बार ऐसी इच्छा हुई कि पूछें कि पार्वती कलकत्ता क्यों नहीं भेजी गयी ? किन्तु यह बात नहीं पूछी। पार्वती ने देखा कि उसी स्थान पर और उसी बेंच पर छात्र-सरदार भूलो बैठा है। उसे देखकर पहले एक बार हंसी आयी, लेकिन दूसरे ही क्षण आंखों में आंसू डबडबा आये। फिर उसे भूलो के ऊपर क्रोध आया। मन में सोचा कि केवल उसी

ने देवदास को घर से बाहर किया । इस तरह से बहुत दिन बीत गये ।

बहुत दिन के बाद देवदास मकान पर लौटा । जल्दी से पार्वती के पास आया, नाना प्रकार ही बातचीत हुईं । उसे अधिक बातचीत नहीं करनी थी—थी भी तो वह कर नहीं सकी । परन्तु देवदास ने बहुत-सी बातें कहीं । प्राय: सभी कलकत्ता की बाते थीं । गरमी की छुट्टी बीत गयी, देवदास फिर कलकत्ता गया । इस बार भी रोना-धोना हुआ, परन्तु पिछली बार-सी उसमें वह गम्भीरता नहीं थी । इस तरह चार वर्ष बीत गये । इन कई वर्षों में देवदास के स्वाभाव में इतना परिवर्तन हुआ, जिसे देखकर पार्वती ने कई बार छिपे-छिपे आंसू गिराये । इसके पहले देवदास में जो ग्रामीण-दोष थे, वे शहर में रहने से एकबारगी दूर हो गये । अब उसे डासन शू (जूता), अच्छा-सा कोट, पैन्ट, टाई, छड़ी, सोने की चेन और घड़ी, गोल्डन फ्रेम का चश्मा आदि के न होने से बड़ी लज्जा लगती है । गांव की नदी के तीर पर घूमना अब उसे अच्छा नहीं लगता और बदले में हाथ में बन्दूक लेकर शिकार खेलने में विशेष आनन्द मिलता है । छोटी मछली के पकड़ने के बजाय बड़ी मछलियों के फंसाने की इच्छा है । यही क्यों—सामाजिक बात, राजनीतिक चर्चा, सभा-समिति, क्रिकेट-फुटबाल आदि की आलोचनाएं होती है । हाय रे ! कहां वह पार्वती वह उन लोगों का ताल—सोनापुर गांव ! बाल्यकाल की दो-एक सुख की बातों का भी स्मरण न आता हा—ऐसा नही; किन्तु अनेक प्रकार के कार्य-भार के कारण वे बातें बहुत देर तक हृदय में जगह नही पाती । फिर गर्मी की छुट्टी हुई । पिछले वर्ष की गर्मी की छुट्टी में देवदास विदेश घूमने के लिए चला गया था, घर नहीं गया था । इस बार माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर और अनेकों पत्र लिखने पर अपनी इच्छा न रहते हुए भी देवदास बिस्तर बांधकर सोनापुर गांव के लिए हावड़ा स्टेशन पर आया । जिस दिन वह घर आया, उस दिन उसका शरीर कुछ अस्वस्थ था, तभी से बाहर नहीं निकला । दूसरे दिन प्रार्वती के घर पर आकर बुलाया—'चाची !'

पार्वती की माता ने आदर के साथ कहा—'आओ बेटा, यहां आकर बैठो ।'

चाची के साथ कुछ क्षण बातचीत करने पर पूछा—'पत्तो कहां है, चाची ?'

'वही ऊपर वाली कोठरी में है ।'

देवदास ने ऊपर जाकर देखा कि पार्वती संझाबती दे रही है । बुलाया—'पत्तो !'

पहले पार्वती चमत्कृत हो उठी, फिर प्रणाम करके बगल में हटाकर खड़ी हो गयी ।

'यह क्या होता है, पत्तो ?'

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं थी, इसी से पार्वती चुप रही । फिर देवदास ने लजाकर कहा—'जाता हूं, संध्या हो गयी, शरीर अच्छा नहीं है ।'

देवदास चला गया ।

5

पार्वती ने इस साल तेरहवें वर्ष मे पांव रखा है—दादी यह कहती है । इसी उम्र में शारीरिक सौन्दर्य अकस्मात मानों कहीं से आकर किशोरी से सर्वांग को छा लेता है । आत्मीय स्वजन सहसा एक दिन चमत्कृत होकर देखते है कि उनकी छोटी कन्या अब बड़ी हो गयी है । उसके विवाह की तब छटपटी पड़ती है । चक्रवर्ती महाशय के घर में

आज कई दिनों से इन्हीं सब बातों की चर्चा हो रही है। माता इसके लिए बड़ी चिन्तित हो रही थीं, बात-बात में वह पति को सुनाकर कहतीं कि अब पत्तो को अधिक दिन तक अविवाहित रखना उचित नहीं है। वे लोग बड़े आदमी नहीं है; उन लोगों को एकमात्र यही भरोसा है कि कन्या अनुपम सुन्दरी है। संसार में यदि रूप की प्रतिष्ठा है तो पार्वती के लिए अधिक चिन्ता न करनी पड़ेगी। और भी एक बात है, जिसे यहीं पर कह देना उचित है। चक्रवर्ती परिवार को कन्या के विवाह के लिए आज तक कोई विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी है; हां पुत्र के विवाह के लिए अवश्य करनी पड़ती है। कन्या के विवाह में दहेज ग्रहण करते थे, पुत्र के विवाह में दहेज देकर कन्या घर ले आते थे। किन्तु नीलकंठ स्वयं इस प्रथा को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनकी यह तनिक भी इच्छा नहीं थीं कि कन्या को बेचकर धनोपार्जन करें। पार्वती की मां इस बात को जानती थी; इसी से कन्या के विवाह के लिए पति को समय-समय पर चेताया करती थी। आरम्भ से ही पार्वती की माता के हृदय में यह अभिलाषा लग रही थी कि किसी तरह देवदास के साथ मेरी कन्या का विवाह हो। उसे यह स्वप्न में भी विश्वास नहीं होता था कि मेरी यह आशा दुराशा-मात्र है। वह सोचती थी कि देवदास से अनुरोध करने पर कोई रास्ता निकल आयेगा। सम्भवतः यही सोचकर नीलकंठ की माता ने देवदास की मां से इस प्रकार यह चर्चा छेड़ी—'आहा ! बहू, देवदास और मेरी पत्तो में जैसा स्नेह है, वह ढूंढ़े से भी कहीं नहीं मिल सकता।'

देवदास की मां ने कहा—'भला ऐसा क्यों न होगा चाची, वे दोनों भाई-बहिन की तरह पलकर इतने बड़े हुए हैं।'

'हां बहू, यह मैं भी समझती हूं। देखो न, जब देवदास कलकत्ता गया था तो पत्तो सिर्फ आठ बरस की थी, पर उसी अवस्था में वह उसकी चिंता करते-करते सूखकर कांटा हो गयी। देवदास की यदि कभी एक भी चिट्ठी आती थी, तो वह उसे बड़े चाव से दिन-रात बारम्बार पढ़ा करती थी। यह हम लोग अच्छी तरह जानती है।'

देवदास की मां ने मन-ही-मन सब-कुछ समझ लिया था। थोड़ी मुस्कायी। उस मुस्कराहट में कितने छुपे हुए भाव गुंथे थे, वह मैं नहीं कह सकता, किन्तु वेदना बहुत थी। वे सभी बातें जानती थीं, साथ ही पार्वती को प्यार भी करती थीं। किन्तु वह कन्याओं के बेचने और खरीदने वाले घर की लड़की थी, फिर घर के पास ही कुटुम्ब था। अतएव ऐसे के साथ विवाह-सम्बन्ध होना ठीक नहीं था। उसने कहा—'चाची, वे (पति) इतनी छोटी उम्र में लड़के का ब्याह नहीं करेंगे; खासकर पढ़ने-लिखने के दिनों में । इसी से वे मुझसे कहते थे कि बड़े लड़के द्विजदास का बचपन में ब्याह कर देने से बड़ी हानि हुई। लिखना-पढ़ना एकबारगी छूट गया।'

पार्वती की दादी का मुख यह सुनकर बिलकुल उतर गया। लेकिन फिर भी कहा—'यह तो मैं भी जानती हूं बहू, लेकिन क्या तुम यह नहीं जानती कि पत्तो अब बड़ी हुई ! उसके देह की गठन भी लम्बी है, इसी से यदि नारायण इस बात को...।'

देवदास की मां ने बात काटकर कहा—'नहीं चाची, मैं यह बात उनसे नहीं कह सकूंगी। तुम्हीं कहो मैं किस मुंह से इस वक्त उनसे यह बात कहूं?'

यह बात यहीं समाप्त हो गयी। परन्तु स्त्रियों के पेट में भला कभी बात पचती है !

जब स्वामी भोजन करने के लिए बैठे, तो देवदास की मां ने कहा—'पार्वती की दादी उसके ब्याह की बातचीत करती थी।'

स्वामी ने मुंह ऊपर उठाकर कहा—'हां, अब पार्वती भी इस योग्य हो गयी है, अब उसका विवाह कर देना ही उचित है।'

'यही तो आज वह कह रही थी कि अगर देवदास ने साथ उसका... ।'

स्वामी ने भौं चढ़ाकर कहा—'तो तुमने क्या कहा?'

'मैं क्या कहती? दोनों में बड़ा स्नेह है; पर इसी से क्या कन्या के बेचने-खरीदने वाले चक्रवर्ती घराने की लड़की लाऊंगी? फिर घर के पास ही घर ठहरा। छिः ! छिः !

स्वामी ने सन्तुष्ट होकर कहा—'ठीक है, क्या घराने का नाम हंसाऊंगा ? इन सब बातों पर कान नहीं देना।'

गृहिणी ने एक सूखी हंसी हंसकर कहा—'नहीं, मैं इन सब बातों पर कान नहीं देती। पर तुम भी यह मत भूल जाना।'

स्वामी ने गम्भीर मुख से बात का कौर उठाते हुए कहा—'ऐसा होता तो इतनी बड़ी जमींदारी कभी की फुंक गयी होती।'

जब वैवाहिक प्रस्ताव के अस्वीकृति की बात नीलकंठ के कानों में पहुंची, तो उन्होंने मां को बुलाकर बड़े तिरस्कार के साथ कहा—'मां, तुम क्यों ऐसी बात कहने गयीं?'

मां चुप रही। नीलकंठ ने कहा—'कन्या के ब्याह के लिए हम लोग किसी के पांव नहीं पड़ते, बल्कि कितने ही लोग हम लोगों के पांव पड़ते है। मेरी लड़की कुरूपा नहीं है ! देखो, तुम लोगों से कहे देता हूं कि एक हफ्ते के भीतर ही सम्बन्ध ठीक कर लूंगा। ब्याह के लिए क्या सोच करना !'

किन्तु जिसके लिए पिता ने इतनी बड़ी बात कही थी; उससे उसके सिर पर बिजली-सी गिरी। लड़कपन ही से यही धारणा थी कि देवदास पर एकमात्र उसी का अधिकार है। अधिकार किसी ने उसके हाथ में सौंपा हो, यह बात नहीं थी। पहले स्वयं भी इसे अच्छी तरह समझ नहीं सकी, अनजाने में ही उसके अधीर मन से दिनों-दिन इस अधिकार को अति नीरवता एवं दृढ़ता के साथ अपनाकर प्रतिष्ठित किया था। अब तक यद्यपि उसका बाहरी रूप आंखों से वह नहीं देख सकी, तथापि आज उसको बेहाथ होते देखकर उसके सारे हृदय में एक भारी तूफान-सा उठने लगा।

किन्तु देवरदास के सम्बन्ध में यह बात कहना ठीक नहीं। लड़कपन में पार्वती के ऊपर जो दखल पाया था, उसका उसने पूर्ण रूप से उपभोग किया। परन्तु कलकत्ता जाकर काम-काज की भीड़ और अन्यान्य आमोद-प्रमोद में फंसकर वह पार्वती को बहुत-कुछ भूल गया। लेकिन वह यह नहीं जानता कि पार्वती अपने उसी अपरिवर्तित ग्राम्य-जीवन में निश-दिन केवल उसी का ध्यान किया करती है। केवल इतना ही नहीं, उसने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बाल्य-काल से जिसे हर तरह मे अपना जाना, एवं सब सुख-दुख में जिसका बराबर साथ दिया, यौवन की पहली सीढ़ी पर पांव रखते ही उसे इस तरह फिसलना पड़ेगा। किन्तु उस समय विवाह की बात कौन सोचता था? कौन जानता था कि किशोर-बन्धन विवाह-बन्धन के बिना किसी तरह चिर-स्थायी नहीं रह सकता। 'इसीलिए विवाह नहीं हो सकता' यह सम्वाद उसकी सारी आशा-पिपासा को छिन्न-भिन्न

करने के लिए उसके हृदय से खींचातानी करने लगा। देवदास का प्रातःकाल का समय पढ़ने-लिखने में बीतता है। दोपहर में बड़ी गरमी पड़ती है, घर से बाहर निकलना कठिन है, केवल सायंकाल में यदि इच्छा होती तो वह बाहर हवा खाने के लिए जाया करता है। इस समय किसी दिन वह धोती-कुरता और एक अच्छा-सा जूता पहनकर, हाथ में छड़ी लेकर टहलने के लिए निकलता। जाते समय वह चक्रवर्ती के मकान के नीचे से होकर जाता था। पार्वती ऊपर बंगले से आंसू पोंछती हुई उसे देखती थी। कितनी ही बातें उसके मन-में उठती थीं। मन में उठता था कि दोनों बड़े हुए। बहुत दिन परदेस में रहने के कारण दोनों एक-दूसरे से बड़ी लज्जा करते हैं। देवदास उस दिन इसी तरह चला गया, लज्जा के कारण इच्छा रहते हुए भी वह कोई बात नहीं कर सका। यह बात पार्वती भी समझने से नहीं चूकी।

देवदास भी प्रायः इसी भांति सोचता था। बीच-बीच में उसके साथ बातचीत करने और देखने के लिए इच्छा भी होती थी, किन्तु साथ ही यह भी ख्याल होता था कि क्या यह अच्छा दीखेगा?

यहां कलकत्ता का वह कोलाहल नहीं है, वह आमोद-प्रमोद, थियेटर और गाना-बजाना नहीं है। इसीलिए उसे केवल उसके बचपन की बातें याद आती हैं। मन में प्रश्न उठता था कि क्या यह पार्वती वही पार्वती है? पार्वती मन में सोचती कि क्या यह देवदास बाबू वही देवदास है? देवदास अब प्रायः चक्रवर्ती के मकान की ओर नहीं जाता। किसी दिन वह आंगन में खड़ा होकर बुलाता—'छोटी चाची, क्या करती हो?'

छोटी चाची कहती—'यहां आकर बैठो।'

देवदास कहता—'नहीं, रहने दो चाची, मैं थोड़ा घूमने जा रहा हूं।'

पार्वती किसी दिन ऊपर रहती और किसी दिन देवदास के सामने पड़ जाती थी। वह जब छोटी चाची के साथ बातचीत करने लगता, तो पार्वती धीरे से खिसक जाती थी। सायंकाल के बाद देवदास के घर में दीया जलता था। ग्रीष्म काल की खुली हुई खिड़की से पार्वती बहुत देर तक उसी ओर देखा करती थी, किन्तु सिवा उस दीप-प्रकाश के और कुछ नहीं देख पाती थी। पार्वती सदा से आत्माभिमानी है। वह जो यन्त्रणा सहन कर रही है, उसके तिल-मात्र की भी किसी को थाह न देने की उसकी आन्तरिक चेष्टा रहती है। और फिर किसी से कहने-सुनने में लाभ ही क्या? सहानुभूति सहन नहीं हो सकती; और तिरस्कार लांछना ! इससे तो मर जाना ही अच्छा है। पिछले वर्ष मनारेमा का विवाह हुआ, किन्तु वह ससुराल नहीं गयी। इसी से बीच-बीच में वह पार्वती से मिलने आ जाया करती थी । पहले दोनों सखियों में ये सभी बातें घुल-घुलकर होती थीं, पर अब वह बात नहीं है। पार्वती उसका साथ नहीं देती। वह या तो ऐसी बातों के छिड़ने पर चुप ही रहती है या टालमटोम कर जाती है।

पार्वती के पिता कल रात घर लौटे। इधर कई दिनों से वह वर ढूंढ़ने गये थे। अब विवाह की सब बातचीत पक्की करके घर लौटे हैं। प्रायः बीस-पच्चीस कोस की दूरी पर, बर्दवान जिला के हाथीपोता गांव के जमीदार के साथ विवाह का होना स्थिर कर आये हैं। उसकी आर्थिक दशा अच्छी है, उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम ही है। गत वर्ष पहली स्त्री का स्वर्गवास हुआ है, इसीलिए दूसरा विवाह कर रहे हैं। इस समाचार से कुटुम्बियों में किसी को आनन्द नहीं हुआ, वरन दुख ही पहुंचा । फिर भी भुवन चौधरी से सब

मिलाकर दो-तीन हजार रूपये की प्राप्ति थी, इसी से सब स्त्रियां चुप हो रहीं।

एक दिन दोपहर के समय जब देवदास चौके में भोजन करने को बैठा, तो मां ने पास बैठकर कहा—'पत्तो का विवाह है।'

देवदास ने मुंह उठाकर पूछा—'कब ?

'इसी महीने में । कल वर खुद आकर कन्या को देख गया है।'

देवदास ने कुछ विस्मित होकर कहा—'क्या, मैं तो कुछ नहीं जानता मां !'

'तुम कैसे जानोगे ? वर दुहेजू है—अवस्था कुछ अधिक है, पर घर का धनी है। पत्तो खाने-पीने से सुखी रहेगी।'

देवदास गर्दन नीची कर भोजन करने लगा। उसकी मां ने फिर कहना आरम्भ किया—'उन लोगों की इच्छा थी कि इसी घर में ब्याह हो।'

देवदास ने मुंह उठाकर कहा—'फिर ?' मां ने कहा—'छिः ! ऐसा कभी हो सकता है ? एक तो वे लोग कन्या बेचने-खरीदने वाले, दूसरे, घर के पड़ोस में; फिर ऐसे छोटे घराने में ! छिः छिः !' यह कहकर मां ने ओंठ सिकोड़ा । देवदास ने भी इसे देखा।

कुछ देर चुप रहने के बाद मां ने फिर कहा—'तुम्हारे बाबूजी से भी मैंने कहा था।'

देवदास ने पूछा—'बाबूजी ने क्या कहा ?'

'और क्या कहेंगें ? यही कहा कि क्या इतने बड़े वंश का सिर नीचा करेंगे।'

देवदास ने फिर कोई बात नहीं पूछी। इसी दिन दोपहर में मनोरमा और पार्वती की बातचीत हुई। पार्वती की आंखों में जल देखकर मनोरमा की आंखें भी डबडबा आयीं। उसने उन्हें पोंछकर पूछा—'तब कौन-सा उपाय है बहिन ?'

पार्वती ने आंखें पोंछकर कहा—'क्या तुमने अपने वर को पसन्द करके विवाह किया था ?'

'मेरी बात दूसरी है। मुझे पसन्द भी नहीं था और नापसन्द भी नहीं है, इसी से मुझे कोई कष्ट भी नहीं है। पर तुम अपने पांव में आप कुठार मारती हो, बहिन !'

पार्वती ने जवाब नहीं दिया, वह मन-ही-मन कुछ सोचने लगी।

मनोरमा कुछ सोचकर हंसी। पूछा—'पत्तो, वर की उम्र क्या है ?'

'किसके वर ही ?'

'तुम्हारे !'

पार्वती ने हंसकर कहा—'सम्भवतः उन्नीस।'

मनोरमा ने विस्मित होकर कहा—'यह क्या मैंने तो सुना है कि चालीस ?'

इस बार भी पार्वती ने हंसकर कहा—'मनो बहिन, कितने आदमियों की उम्र उन्नीस-बीस वर्ष की है, मैं क्या सबका हिसाब रखती हूँ ? मेरे वर ही उम्र उन्नीस-बीस वर्ष की है—यह मैं जानती हूं।'

उसके मुंह की ओर देखकर मनोरमा ने फिर पूछा—'क्या नाम है ?'

'सो तो तुम जानती ही हो।'

'मैं कैसे जानूंगी ?'

'तुम नहीं जानती ? अच्छा लो, मैं कह देती हूं।' जरा हंसकर गम्भीरता के साथ पार्वती ने उसके कान के पास अपना मुंह लगाकर कहा—'नहीं जानती-श्री देवदास !'

मनोरमा पहले तो चमक उठी। फिर थोड़ा धक्का देकर कहा—'इस ठट्ठे से काम नहीं चलेगा। यह कहो कि नाम क्या है? अगर नहीं कह सकती हो तो... ।

'वही तो मैंने कहा।'

मनोरमा ने पूछा—'यदि देवदास नाम है तो फिर इतना रोती क्यों हो?'

पार्वती का चेहरा सहसा उतर गया। कुछ सोचने के बाद उसने कहा—'यह ठीक है; अब मैं नहीं रोऊंगी।'

'पत्तो !'

'क्यों ?'

'सब बातें खोलकर क्यों नहीं कहती बहिन, मैं कुछ भी नहीं समझ पाती हूं।'

पार्वती ने कहा—'जो कुछ कहना था, सभी तो मैंने कह दिया।'

'परन्तु कुछ भी तो समझ में नहीं आता।'

'न आता होगा।' यह कहकर पार्वती दूसरी ओर देखने लगी।

मनोरमा ने सोचा कि पार्वती बात छिपाती है, उसकी कुछ कहने की इच्छा नहीं है। उसे बड़ा गुस्सा आया, दुखित होकर उसने कहा—'पत्तो, जिसमें तुम्हें दुख है, उसमें मुझे भी दुख है। तुम सुखी रहो—यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना रहती है। यदि तुम किसी से कोई बात न कहना चाहती हो तो मत कहो, किन्तु इस तरह ठढा करना ठीक नहीं है।'

पार्वती ने दुखित होकर कहा—'ठट्टा नहीं करती हूं बहिन, जितना मैं जानती हूं उतना तुम्हें बता दिया है। मैं यही जानती हूं कि मेरे स्वामी का नाम श्री देवदास है। उम्र उन्नीस या बीस वर्ष है, यही बात तुमसे भी कही है।'

'किन्तु मैंने तो सुना है कि तुम्हारा सम्बन्ध दूसरे से स्थिर हुआ है?'

'स्थिर और क्या होगा? दादा का तो अब किसी के साथ ब्याह होगा नहीं होगा तो मेरे साथ न, मैंने तो ऐसी कोई खबर नहीं सुनी है।'

मनोरमा ने जो कुछ सुना था, वह कहने लगी।' पार्वती ने बाधा देकर कहा—'यह सब मैंने भी सुना है।'

'तब क्या देवदास तुमको... ?'

'क्या मुझको ?'

मनोरमा ने हंसी दबाकर कहा—'तब जान पड़ता है, स्वयंबर हुआ है! छिपे-छिपे सब बातचीत पक्की हो गयी है !'

'कच्ची-पक्की यहां कुछ नहीं हुई है।'

मनोरमा ने व्यथित स्वर में कहा—'तू क्या कहती है, पत्तो कुछ भी समझ में नहीं आता।'

पार्वती ने कहा—'तब देवदास से पूछकर मैं तुमको समझा दूंगी।'

'क्या पूछोगी ? वह तुमसे ब्याह करेंगे कि नहीं?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'हां, यही।'

मनोरमा ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—'क्या कहती हो पत्तो, क्या तुम स्वयं पूछोगी?'

'इसमें क्या दोष है, बहिन?'

मनोरमा अवाक् हो गयी, बोली—'क्या कहती हो ? स्वयं ?'

'हां, स्वयं नहीं तो और मेरी ओर से कौन पूछेगा ?'

'लाज नहीं लगेगी ?'

'लाज क्यों लगेगी ? तुमसे कहने में क्या मैंने लज्जा की है ?'

'मैं स्त्री हूं—तुम्हारी सखी हूं—किन्तु वे तो पुरूष है, पत्तो !'

इस पर पर्वती हंस पड़ी; कहा—'तुम सखी हो, तुम अपनी हो, किन्तु वे क्या दूसरे हैं ? जो बात तुमसे कह सकती हूं, क्या वही बात उनसे नहीं कह सकती ?'

मनोरमा अवाक् होकर उसके मुंह की ओर देखने लगी।

पार्वती ने हंसकर कहा—'मनो बहिन, तुम झूठ ही माथे में सिन्दूर पहनती हो। यह भी नहीं जानती कि किसको स्वामी कहते हैं। वे मेरे स्वामी न होने पर भी मेरी लज्जा के स्वामी है। उनसे ऐसा करने के पहले ही मैं मर न जाऊंगी ! इसे छोड़, जो मनुष्य मरने पर उतारू है, क्या वह यह देखता है कि विष कड़वा है या मीठा। उनसे मेरा कोई भी परदा नही है।'

मनोरमा उसके मुंह की ओर देखती रही। कुछ देर बाद पूछा—'उनसे क्या कहोगी ? यह कहोगी कि मुझे अपने चरणों में स्थान दो ?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'ठीक यही कहूंगी, बहिन ?'

'और यदि वे स्थान न दें ?'

इस बाद पार्वती कुछ देर तक चुप रही, फिर कहा—'उस समय की बात नहीं जानती।'

घर लौटते समय मनोरमा ने मन-ही-मन सोचा, धन्य साहस, धन्य हृदय-बल ! यदि मैं मर भी जाऊं तो भी यह बात मुंह से कभी निकाल नहीं सकती।

बात सत्य है। इसी से तो पार्वती ने कहा था कि यह माथे में सिन्दूर और हाथ में चूड़ी पहनना व्यर्थ है।

6

लगभग एक बजे रात का समय है, तब भी मलिन ज्योत्स्ना आकाश के अंग से लिपटी हुई है। पार्वती चादर से सिर से पैर तक अपने अंग को ढंककर दबे पाँच सीढ़ी से नीचे उतर आयी। चारों ओर आंख खोलकर देखा—कोई जाग तो नहीं रहा है। फिर दरवाजा खोलकर नीरव-पथ में आकर खड़ी हुई। गांव का मार्ग एकदम निस्तब्ध, एकदम निर्जन था—किसी से भेंट होने की आशंका नहीं थी। वह बिना किसी रूकावट के जमींदार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई। ड्योढ़ी पर वृद्ध दरबान कृष्णसिह खाट बिछा, तुलसीकृत रामायण पड़ रहे थे। पार्वती को प्रवेश करते देखकर उसने नेत्र नीचे किये ही पूछा—'कौन है ?'

पार्वती ने कहा—'मैं।'

दरबानजी ने समझा कि कोई स्त्री है। दासी समझकर फिर कोई प्रश्न नहीं किया और गा-गाकर रामायण पढ़ने में निमग्न हो गये। पार्वती चली गयी। गरमी के कारण बाहरी आंगन में कई नौकर सो रहे थे; उनमें से कितने ही पूर्ण-निद्रित और कितने ही अर्द्ध-जाग्रत थे। नींद की झोंक में एकाध ने पार्वती को जाते देखा, लेकिन दासी समझकर

किसी ने कुछ रोक-टोक नहीं की। पार्वती निर्विघ्न सीढ़ी से होकर ऊपर कोठे पर चली गयी। इस घर का एक-एक कमरा और एक-एक कोना उसका जाना हुआ था। देवदास के कमरे को पहचानने में उसे जरा भी देर नहीं लगी। किवाड़ खुला हुआ था और भीतर एक दीपक जल रहा था। पार्वती ने भीतर आकर देखा, देवदास पलंग पर सो रहे हैं। सिर के पास उस समय भी एक पुस्तक खुली पड़ी थी, इससे जान पड़ता है कि वह अभी ही सोये हैं। दिये की टेम को तेज कर चुपचाप देवदास के पांव के पास आकर बैठ गयी। केवल दीवाल पर टंगी हुई घड़ी 'टन-टन' शब्द करती है; इसे छोड़कर सभी सो रहे है, सभी जगह सन्नाटा छाया हुआ है। पांव के ऊपर हाथ रखकर पार्वती ने धीरे से कहा—'देव दादा... !'

देवदास ने नींद की झोंक में सुना कि कोई उसे बुला रहा ह। उसने उसी तरह लेटे हुए बिना आंख खोले कहा—'हूं !'

'देव दादा !'

इस बार देवदास आंख मीचते हुए उठ बैठे। पार्वती के मुंह पर घूंघट नहीं था, घर में दीपक तीव्र ज्योति से जल रहा था, देवदास ने सहज ही पहचान लिया। किन्तु फिर भी उसे पहले विश्वास नहीं हुआ। पूछा—'यह क्या, पत्तो ?'

देवदास ने घड़ी की ओर देखा। विस्मय पर विस्मय बढ़ता गया—'इतनी रात में !'

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मुंह नीचे किये बैठे रही। देवदास ने फिर पूछा—'इतनी रात में क्या घर से अकेली आयी हो ?'

पार्वती ने कहा—'हां।'

देवदास ने उद्विग्न, आशंकित और कलंकित होकर पूछा—'कहो, क्या रास्ते में डर भी नहीं मालूम हुआ?'

पार्वती ने मीठी हंसी हंसकर कहा—'मुझे भूत का भय नहीं लगता।'

'भूत का भय नहीं करती, तो आदमी का भय तो करती हो; क्यों आयीं ?'

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु मन-ही-मन कहा कि इस समय मुझे उसका भी डर नहीं है।

'मकान में कैसे आयी ? क्या किसी ने देखा नहीं ?'

'दरबान ने देखा है।'

देवदास ने आंख फाड़कर देखा कहा—'दरबान ने देखा ? और किसी ने ?'

'आंगन में नौकर लोग सो रहे थे, शायद उनमें से किसी ने देखा हो।'

देवदास ने बिछौना से कूदकर किवाड़ बन्द कर दिये—'किसी ने पहचाना भी ?' पार्वती ने कोई भी उत्कंठा प्रकट न की। सहज भाव से उत्तर दिया—'वे सभी लोग मुझे जानते है, शायद किसी ने पहचाना हो।'

'क्या कहती हो ?ऐसा काम क्यों किया, पत्तो ?'

पार्वती ने मन-ही-मन कहा कि यह तुम किसी तरह समझ सकते हो ? किन्तु प्रकट में कुछ नहीं कहा—'माथा नबाये बैठी रही।

'इतनी रात में—छिः ! छि ! कल तुम कौन-सा मुंह दिखाओगी ?'

पार्वती ने मुंह नीचे किये हुए ही कहा—'वह साहस मुझमें है।'

देवदास ने क्रोध नहीं किया, किन्तु बड़ी उत्कंठा से कहा—'छि: ! छि: ! अब भी क्या तुम लड़की हो ? यहां पर इस तरह आते हुए क्या तुम्हें कुछ भी लज्जा मालूम नहीं हुई ।'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा—'कुछ भी नहीं !'

'क्या कल लज्जा से तुम्हारा सिर नीचा न होगा ?'

यह प्रश्न सुनकर पार्वती ने तीव्र, किन्तु करूण-दृष्टि से देवदास के मुख की ओर कुछ क्षण देखकर निस्सकोच होकर कहा—'सिर तो तब नीचा होता, अगर मै यह अच्छी तरह से न जानती होती कि तुम मेरी सारी लज्जा को ढंक दोगे ।'

देवदास ने विस्मित एवं हतबुद्धि होकर कहा—'मैं ! किन्तु मैं कैसे मुंह दिखा सकूंगा ?'

पार्वती ने उसी भांति अविचलित कंठ से कहा—'तुम ? किन्तु तुम्हारा क्या हो सकता है, देव दादा ?' थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहा—'तुम पुरूष हो ! आज नही तो कल तुम्हारे कलंक की बात सब अवश्य ही भूल जायेंगे । दो दिन के बाद किसी से इसका ध्यान भी नहीं रहेगा कि कब, किस रात मे हतभागिनी पार्वती सब-कुछ तुच्छ समझकर तुम्हारे पद-रज मे लीन होने आई थी ।'

'यह क्या पत्तो ?'

'और मैं ?'

'मन्त्र-मुग्ध की भांति देवदास ने कहा—'और तुम ?'

'मेरे कलक की बात कहते हो ? नहीं, मुझे कलंक नही लगेगा । तुम्हारे पास मैं छिपे-छिपे आयी, यदि यह कहकर मेरी निन्दा होगी तो वह निन्दा मुझे नहीं लग सकती ।'

'यह क्या पत्तो, रोती हो ?'

'देव दादा, नदी मे इतना जल भरा हुआ है । क्या इतने जल में भी मेरा कलंक नहीं धुल सकता ?'

'सहसा देवदास ने पार्वती के दोनो हाथ पकड़ लिये और कहा—'पार्वती !'

पार्वती ने देवदास के पांव के ऊपर सिर रखकर अवरूद्ध कंठ से कहा—'यही पर थोड़ा-सा स्थान दो, देव दादा !'

इसके बाद दोनों ही चुप रहे। देवदास के पांव पर से बहकर अनेकों अश्रुकण शुभ्र-शैया को भिगोने लगे।

बहुत देर के बाद देवदास ने पार्वती के मुख को ऊपर उठाकर कहा—'पत्तो, क्या मुझे छोड़कर तुम्हें और कोई उपाय नहीं है ?'

पार्वती ने कुछ नहीं कहा। उसी भांति पांव पर सिर रखे हुए पड़ी रही। निस्तब्धता के भीतर एकमात्र वही लम्बी-लम्बी उसासें भर रही थी। टन-टन करके घड़ी में दो बज गये। देवदास ने कहा—'पत्तो !'

पार्वती ने रूद्ध कंठ से कहा—'क्या ?'

'पिता-माता बिलकुल सहमत नही है—यह सुना है ?' पार्वती ने सिर हिलाकर जवाब दिया—'सुना है ।' फिर दोनों चुप रहे। बहुत देर बाद देवदास ने दीर्घ नि:श्वास फेंककर कहा—'तब फिर ?'

पानी मे डूबने से मनुष्य जिस प्रकार जमीन को पकड़ लेता है और फिर किसी भांति

छोड़ना नहीं चाहता, ठीक उसी भांति पार्वती ने अज्ञानवत देवदास के दोनों पांवों को पकड़ रखा था। उसके मुख की ओर देखकर पार्वती ने कहा—'मैं कुछ नहीं जानना चाहती हूँ, देव दादा !'

'पत्तो, माता-पिता की अवज्ञा करें ?'

'दोष क्या है ?'

'तब तुम कहां रहोगी।'

पार्वती ने रोते-रोते कहा—'तुम्हारे चरणों में।'

फिर दोनों व्यक्ति स्तब्ध बैठे रहे। घड़ी में चार बजे गये। ग्रीष्मकाल की रात थी; थोड़ी ही देर में भोर होता हुआ जानकर देवदास ने पर्वती का हाथ पकड़ कर कहा—'चलो, तुम्हें घर पहुंचा आवें।'

'मेरे साथ चलोगे ?'

'हानि क्या है ? यदि बदनामी होगी तो कुछ उपाय भी निकल आयेगा।'

'तब चलो।'

दोनों धीरे-धीरे बाहर चले गये।

7

दूसरे दिन पिता के साथ देवदास की थोड़ी देर के लिए कुछ बातचीत हुई। पिता ने उससे कहा—'तुम सदा से मुझे जलाते आ रहे हो जितने दिन इस संसार में जीवित् रहूंगा उतने दिन यों ही जलाते रहोगें। तुम्हारे मुंह से ऐसी बात का निकलना कोई आश्चर्य नहीं है।'

देवदास चुपचाप मुंह नीचे किए बैठे रहे।

पिता ने कहा—'मुझे इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, जो इच्छा हो, तुम अपनी मां से मिलकर करो।'

देवदास की मां ने इस बात को सुनकर कहा—'अरे, क्या यह भी नौबत मुझे देखनी बदी थी ?'

उसी दिन देवदास माल-असबाब बांधकर कलकत्ता चले गये। पार्वती उदासीन भाव से कुछ सूखी हंसी हंसकर चुप रही। पिछली रात की बात को उसने किसी से नहीं जताया। दिन चढ़ने पर मनोरमा आकर बैठी और कहा—'पत्तो, सुना है कि देवदास चले गये ?'

'हां।'

'तब तुमने क्या सोचा है ?' उपाय की बात वह स्वयं नहीं जानती थी, फिर दूसरे से क्या कहेगी ? आज कई दिनों से वह बराबर इसी बात को सोचती रहती है, किन्तु किसी प्रकार यह स्थिर नहीं कर सकी कि उसकी आशा कितनी और निराशा कितनी है। जब मनुष्य ऐसे दुख के समय मे आशा-निराशा का किनारा नहीं देखता, तो उसके दुर्बल हृदय बड़े भय से आशा का पल्ला पकड़ता है। जिसमें उसका मंगल रहता है, उसी बात की आशा करता है। इच्छा व अनिच्छा से उसी ओर नितान्त उत्सुक नयन से देखता है। पार्वती को अपनी इस दशा में यह पूरी आशा थी कि कल रात को व्यापार के कारण वह

निश्चय ही विफल-मनोरथ न होगी। विफल होने पर उसकी अवस्था क्या होगी, यह उसके ध्यान के बाहर की बात है। इसी से सोचती थी देवदास फिर आयेंगे। फिर मुझे बुलाकर कहेंगे—पत्तो, तुम्हें मैं शक्ति रहते किसी तरह दूसरे के हाथ न जाने दूंगा। किन्तु दो दिन बाद पार्वती ने निम्नलिखित पत्र आया—

'पार्वती, आज दो दिन से बराबर तुम्हारी बातें सोच रहा हूं। माता-पिता की भी यह इच्छा नहीं है कि हमारी तुम्हारे साथ विवाह हो। तुमको सुखी करने में उन लोगों को ऐसी कठिन वेदना पहुंचानी होगी, जो मुझसे नहीं हो सकती। अतएव उनके विरूद्ध यह काम कर कैसे सकता हूं? तुम्हें सम्भवतः अब आगे पत्र न लिख सकूंगा, इसलिए इस पत्र में सब बातें खोलकर लिखता हूं। तुम्हारा घराना नीच है। कन्या बेचने और खरीदने वाले घर की लड़की मां किसी भी घर में नहीं ला सकतीं। फिर घर के पास ही तुम्हारा कुटुम्ब ठहरा, यह भी उनके मत से ठीक नहीं है। रही बाबू जी की बात, वह तो तुम सभी जानती हो। उस रात की बात सोचकर मुझे बहुत ही दुख होता है। तुम्हारी, जैसी अभिमानिनी लड़की ने वह काम कितनी बड़ी व्यथा पाने पर किया होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं।

'और भी एक बात है। तुमको मैंने कभी प्यार किया हो, यह बात मेरे मन में नहीं उठती। आज भी तुम्हारे लिए मेरे हृदय में कुछ अत्यधिक क्लेश नहीं है। केवल इसी का मुझे दुख है कि तुम मेरे लिए कष्ट पा रही हो। मुझे भूल जाने की चेष्टा करो। यही मेरा आन्तरिक आशीर्वाद है कि तुम इसमे सफल हो।

—देवदास'

जब तक देवदास ने पत्र डाक-घर में नहीं छोड़ा था, तब तक केवल एक बात सोचते रहे; किन्तु पत्र रवाना करने के बाद ही दूसरी बात सोचने लगे। हाथ का ढेला फेंककर वे एकटक उसी ओर देखते रहे। किसी अनिष्ट की आंशका उनके मन में धीरे-धीरे उठने लगी। वे सोचते थे कि यह ढेला उसके सिर पर जाकर कैसा लगेगा? क्या जोर से लगेगा? जिन्दा तो बचेगी? उस रात मेरे पांव पर अपना सिर रखकर वह कितनी रोती थी। पोस्ट-ऑफिस से मैस लौटते समय रास्ते में पद-पद पर देवदास के मन में यही भाव उठने लगा। यह काम क्या अच्छा नहीं हुआ? और सबसे बड़ी बात देवदास यह सोचते थे कि पार्वती में जब कोई दोष नहीं है, तो फिर माता-पिता क्यों निषेध करते हैं? उम्र बढ़ने के साथ और कलकत्ता-निवास से उन्होंने एक बात यह सीखी थी कि केवल लोगों को दिखाने के लिए कुल-मर्यादा और एक क्षुद्र विचार के ऊपर होकर निरर्थक एक प्राण का नाश करना ठीक नहीं। यदि पार्वती हृदय की ज्वाला को शांत करने के लिए जल में डूब मरे, तो क्या विश्व-पिता के पांव में इस महापातक का एक काला धब्बा नहीं पड़ेगा?

मैस में आकर देवदास अपनी चारपाई पर पड़ रहे। आजकल वे एक मैस में रहते थे। कई दिन हुए, मामा का घर छोड़ दिया—वहां उन्हें कुछ असुविधाएं होती थीं। जिस कमरे में देवदास रहते हैं, उसी के बगल वाले कमरे में चुन्नीलाल नामक एक युवक आज नौ बरस से निवास करते हैं। उनका यह दीर्घ कलकत्ता-निवास बी० ए० पास करने के लिए हुआ था, किन्तु आज तक सफल मनोरथ नही हो सके। यही कहकर वे अब यहां पर रहते हैं। चुन्नीलाल अपने दैनिक-कर्म—संध्या-भ्रमण के लिए बाहर निकले हैं। लगभग भोर होने के समय फिर लौटेंगे। बासा के और लोग भी अभी नहीं आये। नौकर दीपक जलाकर चला गया, देवदास किवाड़ लगाकर सो रहे।

धीरे-धीरे एक-एक करके सब लोग लौट आए। खाने के समय देवदास को बुलाया गया, किन्तु वे उठे नहीं। चुन्नीलाल किसी दिन भी रात के लौटकर बासा में नहीं आए थे, आज भी नहीं लौटे।

रात को एक बजे का समय हो गया। बासा में देवदास को छोड़ कोई भी नहीं जागता है। चुन्नीलाल ने बासा में लौटकर देवदास के कमरे के सामने खड़े होकर देखा, किवाड़ लगा है, किन्तु चिराग जल रहा है, बुलाया—'देवदास,क्या अभी जागते हो?'

देवदास ने भीतर से कहा—'जागता हूं। तुम आज इसी समय कैस लौट आये?'

चुन्नीलाल ने थोड़ा हंसकर कहा—'हां, आज तबीयत अच्छी नहीं है।' यह कहकर चले गये। कुछ देर बाद फिर लौटकर कहा—'देवदास, क्या एक बार किवाड़ खोल सकते हो?'

'क्यों नहीं।'

'तुम्हारे यहां तमाखू का प्रबन्ध है?'

'हां, है।'—कहकर देवदास ने किवाड़ खोल दिये। चुन्नीलाल ने तमाखू भरते-भरते कहा—'देवदास, अभी तक क्यों जागते हो?'

'क्या रोज-रोज नींद आती है?'

'नहीं आती?' कुछ उपहास करके कहा—'आज तक मैं यही समझता था कि तुम्हारे जैसे भले लड़के ने आधी रात का कभी मुख न देखा होगा, किन्तु आज मुझे एक नयी शिक्षा मिली।'

देवदास ने कुछ नहीं कहा। चुन्नीलाल ने तमाखू पीते-पीते कहा—'तुम इस बार जब से अपने घर से यहां आये हो, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं रहती; तुम्हे कौन-सा क्लेश है?'

देवदास अनमने से हो रहे थे। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया।

'तबीयत अच्छी नहीं है?'

देवदास सहसा बिछौना से उठ बैठे। व्यग्र भाव से उनके मुख की ओर देखकर पूछा—'अच्छा चुन्नी बाबू, तुम्हारे हृदय में किसी बात का क्लेश नहीं है?'

चुन्नीलाल ने हंसकर कहा—'कुछ नही।'

'जीवन-पर्यन्त कभी क्लेश नहीं हुआ ?'

'यह क्यों पूछते हो?'

'मुझे सुनने की बड़ी इच्छा है।'

'ऐसी बात है तो किसी दूसरे दिन सुनना।'

देवदास ने पूछा—'अच्छा चुन्नी, तुम सारी रात कहां रहते हो?'

चुन्नीलाल ने एक मीठी हंसी हंसकर कहा—'यह क्या तुम नही जानते?'

'जानता हूं, लेकिन अच्छी तरह नहीं।'

चुन्नीलाल का मुंह उत्साह से उज्जवल हो उठा। इन सब आलोचनाओं में और कुछ रह या न रहे, किन्तु एक आंख की ओट की लज्जा रहती है। दीर्घ अभ्यास के दोष से वह चली गई। कौतुक से आंख मूंदकर पूछा—'देवदास, यदि अच्छी तरह से जानना चाहते हो तो ठीक मेरी तरह बनना पड़ेगा। कल मेरे साथ चलोगे?'

देवदास ने कुछ देर सोचकर कहा—'सुनता हूँ, वहां पर बड़ा मनोरंजन होता है। क्या यह सच है ?'

'बिलकुल सच है।'

'यदि ऐसी बात है तो मुझे एक बार ले चलो, मैं भी चलूंगा।'

दूसरे दिन सन्ध्या के समय चुन्नीलाल ने देवदास के कमरे में आकर देखा कि वे व्यस्त भाव से अपना सब माल-असबाब बांध-छान रहे हैं। विस्मित होकर पूछा—'क्या नहीं जाओगे ?'

देवदास ने किसी ओर न देखकर कहा—'हां, जाऊंगा।'

'तब यह सब क्या करते हो ?'

'जाने की तैयारी कर रहा हूँ।'

चुन्नीलाल ने कुछ हंसकर सोचा, अच्छी तैयारी है ! कहा—'क्या तुम सब घर-द्वार वहां पर उठा ले चलोगे ?'

'तब किसके पास छोड़ जाऊंगा ?'

चुन्नीलाल समझ नहीं सके, कहा—'मैं अपनी चीज-वस्तु किसी पर छोड़ जाता हूँ ? सभी तो बासे में पड़ी रहती हैं।'

देवदास ने सहसा सचेत होकर आंखें ऊपर को उठायी, लज्जित होकर कहा—चुन्नी बाबू, आज मैं घर जा रहा हूँ।

'यह क्यों, कब आओगे ?'

देवदास ने सिर हिलाकर कहा—'अब मैं फिर नहीं आंऊगा।'

विस्मित होकर चुन्नीलाल उनके मुंह की ओर देखने लगे। देवदास ने कहा—'यह रूपये लो; मुझ पर जो कुछ उधार हो उसे इससे चुकती कर देना। यदि कुछ बचे तो दास-दासियों में बांट देना। अब मैं फिर कभी कलकत्ता नहीं लौटूंगा।'

देवदास मन-ही-मन कहने लगे—कलकत्ता आने से मेरा बड़ा खर्च पड़ा।

आज यौवन के कुहिराच्छन्न अंधेरे का उनकी दृष्टि भेद कर गई। वही उस दुर्दान्त, दुर्विनीत कैशोर-कालीन अयाचित पद-दलित रत्न समस्त कलकत्ता की तुलना में बहुत बड़ा, बहुत मूल्यवान जंचने लगा। चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर कहा—'चुन्नी ! शिक्षा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, उन्नति आदि जो कुछ है,सब सुख के लिए ही है। जिस तरह से चाहो, देखो; इन सबका अपने सुख के बढ़ाने को छोड़ और कोई प्रयोजन नहीं है।'

चुन्नीलाल ने बीच में ही बात काटकर कहा—'तब क्या अब तुम लिखना-पढ़ना छोड़ दोगे ?'

'हां, लिखने-पढ़ने से मेरा बड़ा नुकसान हुआ। अगर मैं पहले यह जानता कि इतने दिन में इतना रूपया खर्च करके इतना ही सीख सकूंगा, तो मैं कभी कलकत्ता का मुंह न देखता।'

'देवदास, तुम्हें क्या हो गया है ?'

देवदास बैठकर सोचने लगे। कुछ देर बाद कहा—'अगर फिर कभी भेंट हुई तो सब बातें कहूंगा।'

उस समय प्रात: नौ बजे रात का समय था। बासे के सब लोगों तथा चुन्नीलाल ने

अत्यन्त विस्मय के साथ देखा कि देवदास गाड़ी पर माल-असबाब लादकर मानों सर्वदा के लिए बासा छोड़कर घर चले गये। उनके चले जाने पर चुन्नीलाल ने क्रोध से बासे के अन्य लोगों से कहा—'ऐसे रंगे सियार के समान आदमी किसी भी तरह नहीं पहचाने जा सकते ।'

8

बुद्धिमान तथा दूरदर्शी मनुष्यों की यह रीति होती है कि तत्काल ही किसी विषय पर अपनी दृढ़ सम्मति प्रकट नहीं करते—एक ही पक्ष को लेकर विचार नहीं करते, एक ही पक्ष को लेकर अपनी धारणा स्थिर नहीं करते, वरन् दोनों पक्षों को लेकर तुलनात्मक दृष्टि से परीक्षा करते है और तब कोई अपना गम्भीर मत प्रकट करते हैं। ठीक इसके विपरीत एक श्रेणी के और मनुष्य होते है, जिनमें किसी विषय पर विशेष विचार करेन का धैर्य नहीं रहता। ये एकाएक अपनी भली-बुरी सम्मति स्थिर कर लेते हैं। किसी विषय में डूबकर विचार करने का श्रम ये लोग स्वीकार नहीं करते, केवल विश्वास के बल चलते है। ये लोग संसार में किसी कार्य को न कर सकते हों, यह बात नहीं है, वरन् काम पड़ने पर समय-समय पर ये लोग औरों की अपेक्षा अधिक कार्य करते है। ईश्वर की कृपा होने से ये लोग उन्नति के सर्वोच्च्व शिखर पर प्राय: देखे जाते हैं और न होने से अवनति की गम्भीर कन्दरा में आजन्म के लिए पड़े रहते हैं; न उठ सकते हैं, न बैठ सकते हैं, और न प्रकाश की ओर देख सकते हैं; निश्चल, मृत, जलपिंड की भांति पड़े रहते हैं। देवदास भी इस श्रेणी के मनुष्य थे। दूसरे दिन प्रातःकाल वे घर पहुंचे। माता ने आश्चंर्य से पूछा—'देवा, क्या कॉलेज की छुट्टी हो गई?'

देवदास 'हां' कहकर अन्यमनस्क भाव से चले गये। पिता के पूछने पर भी कुछ इसी तरह का अट्ट-सट्ट जवाब देकर गला छुड़ाया। उन्होंने अच्छी तरह न समझकर गृहिणी से पूछा। गृहिणी ने अपनी बुद्धि लड़ाकर कहा—'गरमी अभी घटी नहीं, इसीलिए फिर छुट्टी हो गयी।'

दो दिन देवदास ने बड़ी चुस्ती के साथ बिताये। उसकी जो अभिलाषा थी वह पूरी नहीं हो रही थी—पार्वती से किसी निर्जन स्थान पर भेंट नहीं होती। दो दिन बाद पार्वती की भी मां ने देवदास को सामने देखकर कहा—'अगर इधर आ गये हो, तो पार्वती के विवाह तक ठहर जाओ।'

देवदास ने कहा—'अच्छा।'

दोपहर के समय पार्वती नित्य बांध से जल लाने के लिए जाती थी। बगल में पीतल की कलसी लेकर आज भी वह घाट पर आयी; देखा, निकट ही एक बेर के पेड़ की आड़ में देवदास जल में बंसी फेंककर बैठे हैं। एक बार उसके मन में आया कि लौट चले, एक बार मन में आया कि चुपके से जल भरकर ले चले। किन्तु जल्दी में वह कुछ भी स्थिर न कर सकी। कलसी को घाट पर रखते समय सम्भवत: कुछ शब्द हुआ, इसी से देवदास की दृष्टि से उस ओर खिंच गयी। उसने पार्वती को देख, हाथ के इशारे से बुलाकर कहा—'पत्तो, सुन जाओ !'

पार्वती धीरे-धीरे पास जाकर खड़ी हुई। देवदास ने एक बार मुख उठाया, फिर बहुत देर तक शून्य दृष्टि से जल की ओर देखते रहे। पार्वती ने कहा—'देव दादा, मुझे कुछ कहते हो ?'

देवदास ने किसी ओर देखकर कहा—'हूं, बैठो।'

पार्वती बैठी नहीं, सिर नीचा किये खड़ी रही। किन्तु जब कुछ देर तक कोई बातचीत नहीं हुई, तो पार्वती ने धीरे-धीरे एक-एक पांव घाट की ओर बढ़ाना आरम्भ किया। देवदास ने एक बार सिर उठाकर उसकी ओर देखा फिर जल की ओर देखकर कहा—'सुनो !'

पार्वती लौट आयी, किन्तु फिर भी देवदास ने कोई बात नहीं कहीं, यह देख वह लौट गयी। देवदास निस्तब्ध बैठे रहे, थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर देखा, पार्वती जल लेकर जाने की तैयारी कर रहीं है। यह देख वह हंसी हटाकर घाट के ऊपर आ खड़े हुए; कहा—'मैं आया हूं।' पार्वती ने केवल घड़ा रख दिया, कुछ बोली नहीं।

पार्वती कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, अन्त में अत्यन्त मीठे स्वर से पूछा—'क्यों ?'

'तुमने लिखा नहीं था ?'

'नहीं।'

'यह क्या पत्तो ! उस रात की बात भूल गयी ?'

'नहीं; किन्तु उस बात से अब काम ही क्या ?'

उसका कंठ-स्वर स्थिर, किन्तु रूखा था। देवदास उसका मर्म नहीं जान सके, कहा—'मुझे क्षमा करो, मैं तब इतना नहीं समझ सका था।'

'चुप रहो, ये सब बातें मुझे नहीं सुहाती।'

'मैं जिस तरह से होगा, मां-बाप को राजी करूंगा। सिर्फ तुम... !'

पार्वती ने देवदास के मुंह की ओर एक बार तीखी नजर से देखकर कहा—'तुम्हारे ही मां-बाप है, मेरे नहीं ? क्या उनकी इच्छा-अनिच्छा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है ?'

देवदास ने लज्जित होकर कहा—'क्यों नहीं है पत्तो, पर वे लोग तो राजी है, सिर्फ तुम... !'

'तुम कैसे जानते हो कि वे लोग राजी है, वे बिल्कुल राजी नहीं है।'

देवदास ने हंसने की व्यर्थ की चेष्टा करके कहा—'अरे नहीं, वे लोग राजी है; यह मैं अच्छी तरह से जानता हूं। सिर्फ तुम... !'

पार्वती ने बीच में ही बात काटकर तीव्र कंठ से कहा—'सिर्फ मैं तुम्हारे साथ ? छिः !... !'पलक मारते देवदास की दोनों आंखें अग्नि की तरह जल उठीं। उसने अवरूद्ध कंठ से कहा—'पार्वती, क्या मुझे भूल गयी ?'

पहले पार्वती भी कुछ चंचल हो उठी, किन्तु दूसरे ही क्षण आत्म-संवरण कर शांत और कठिन स्वर से उत्तर दिया—'नहीं, भूलूगी क्यों ? लड़कपन से ही तुम को देखती आयी हूं। होंश संभाला तभी तुमसे डरती हूं—क्या उसी डर को तुम दिखाने आये हो ? पर क्या मुझे भी तुम नहीं पहचानते ?' यह कहकर वह निर्भीक दोनों आंखों को ऊपर उठाकर खड़ी हो रही।

पहले देवदास के मुंह से कोई बात नहीं निकली, फिर कहा—'सर्वदा से मुझसे तुम

डरती ही आयी हो और कुछ नहीं ?'

पार्वती ने दृढ़ स्वर से कहा—'नहीं और कुछ नहीं ।'

'सच कहती हो ?'

'हां, सच कहती हूं । तुम पर मेरी कुछ भी श्रद्धा नहीं है । मैं जिसके यहां जा रही हूं, वे धनवान, बुद्धिमान, शांत और स्थिर हैं । वे धार्मिक हैं । मेरे बाप मेरा भला सोचते है, इसी से वे तुम्हारे जैस अज्ञान, अव्यवस्थित चित्त, दुर्दान्त मनुष्य ने हाथ मुझे किसी तरह नहीं देना चाहते । तुम रास्ता छोड़ दो ।'

एक बार देवदास ने कुछ इधर-उधर किया । एक बार रास्ता छोड़ने के लिए भी तैयार हुए; परन्तु फिर दृढ़ता के साथ मुंह उठाकर कहा—'इतना अहंकार ?'

पार्वती ने कहा—'क्यों नहीं ? तुम कर सकते हो और मैं नही ? तुम में रूप है, गुण नहीं; मुझ में रूप भी है, गुण भी है_तुम बड़े आदमी हो, लेकिन मेरे पिता भी भिक्षुक नहीं हैं । इसे छोड़ में स्वंयं भी तुम लोगों से किसी अंश में हीन नहीं रहूंगी !'

देवदास अवाक् रह गये । पार्वती ने फिर कहना आरम्भ किया—'तुम क्या सोचते हो कि तुम मुझे हानि पहुंचाओगे ? हां, अधिक नहीं, तो कुछ हानि अवश्य पहुंचा सकते हो, यह मैं जानती हूँ । अच्छा वही करो । मुझे सिर्फ रास्ता दो ।'

देवदास ने हतबुद्धि होकर कहा—'हानि किस तरह पहुंचा सकता हूं ?'

पार्वती ने तत्क्षण उत्तर दिया—'अपवाद लगाकर वह बात तुम कहोगें ।'

यह बात सुनकर देवदास वज्रहत की तरह देखते रहे । उनके मुख से केवल यही बात निकली—'अपवाद लगाऊंगा, मैं ?'

पार्वती ने विषैली हंसी हंसकर कहा—'जाओ, बचे हुए समय में मेरे नाम में कलंक लगाओ । उस रात में मैं तुम्हारे पास अकेली गयी थी, इसी बात को लेकर लोगों ने चारों और फैलाओ । इससे मन को बड़ी सांत्वना मिलेगी ।' यह कहते-कहते पार्वती के दर्पित क्रुद्ध होंठ कांपते-कांपते स्थिर हो गये ।

किन्तु देवदास के हृदय में क्रोध और अपमान से ज्वालामुखी पर्वत की भांति भीषण अग्नि सुलग रही थी । उन्होंने अव्यक्त स्वर से कहा—'तो क्या झूठी बदनामी उठाकर मैं सांत्वना पाऊंगा ?'—और उसी समय बंसी के मुठिये को घुमाकर, पकड़कर भीषण कंठ से कहा—'सुनो पार्वती, इतना रूपवान होना ठीक नहीं, अहंकार बहुत बढ़ जाता है ।' यह कहकर तनिक धीमे स्वर से कहा—'देखती नहीं हो, चन्द्रमा इतना सुन्दर है, इसी से उसमें कलंक का काला धब्बा लगा है । कमल कितना श्वेत है, इसीलिए उसमें काले भौंरे बैठते हैं । आओ, तुम्हारे मुंह में भी कुछ कलंक का चिन्ह दे दूं ।'

देवदास के सह्य की सीमा जाती रही । उन्होंने दृढ़ मुट्ठी से बंसी के मुठिये को पकड़कर इतने जोर से पार्वती के सिर में मारा कि लगने के साथ ही सिर बायीं भौं के नीचे तक फूट गया । पल भर में सारा मुख खून से सराबोर हो गया ।

पार्वती पृथ्वी पर गिर पड़ी । कहा—'देव दादा, क्या किया ?'

देवदास ने बंसी टुकड़े-टुकड़े कर, पानी में फेंक, उत्तर दिया—'अधिक कुछ नहीं जरा-सा कट गया है ।'

पार्वती आकुल कंठ से रो उठी—'बाप रे बाप, देव दादा !'

देवदास ने अपने बारीक कुरते को फाड़कर पानी में भिगोकर बांधते हुए कहा—'घबराओ नहीं पत्तो, यह हल्की-सी चोट जल्दी ही अच्छी हो जायेगी, सिर्फ दाग रह जायेगा। यदि कोई इसके विषय में पूछे तो झूठी बात कहना, नहीं तो अपने कलंक की बात प्रकट करना।'

'अरे बाप रे बाप !'

'छि: ! ऐसा न कहो पत्तो ! विदाई के अन्तिम दिनों में सिर्फ एक निशान बनाये रखने के लिए यह चिंन्ह दे दिया है। इस सोने से मुख को तुम आरसी में कभी-कभी देखोगी तो ?' यह कहकर उत्तर पाने की कोई अपेक्षा न कर देवदास चलने के लिए तैयार हुए।

पार्वती ने व्याकुल होकर रोते-रोते कहा—'उफ ! देव दादा !'

देवदास लौट आये। आंख के कोने में एक बिन्दु जल था। बहुत स्नेह-भरे कंठ से कहा—'क्यों, पत्तो ?'

'किसी से कहना मत।'

देवदास ने क्षण-भर में ही खड़े होकर झुककर पार्वती के केशों के ऊपर उठाकर अधर स्पर्श कर कहा—'छि: ! तुम क्या कोई दूसरी हो ? शायद तुम्हें याद न हो, बचपन में मैंने शरारत से कई बार तुम्हारे कान मल दिये हैं।'

'देव दादा, मुझे क्षमा करो।'

'यह तुम्हें नहीं कहना होगा भाई, क्या सचमुच ही मुझे भूल गयी पत्तो ? मैंने कब तुमको क्षमा नहीं किया है ?

'देव दादा... !'

'पार्वती, तुम तो जानती ही हो, मैं अधिक बातें नहीं कर सकता। बहुत सोच-विचार कर कोई काम मुझसे नहीं हो सकता, जो मन में आता है वही कर बैठता हूं।' यह कहकर देवदास ने पार्वती के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'तुमने अच्छा ही किया। मेरे यहां रहकर सम्भवत: तुम सुख नहीं पातीं, किन्तु तुम्हारे इस देव दादा को अक्षय स्वर्ग-सुख मिलता।'

इसी समय बांध की दूसरी ओर से आदमी आ रहे थे। पार्वती धीरे-धीरे जल लेने के लिए उतरी थी। देवदास चले गये। पार्वती जब घर लौटकर आयी, तो दिन ढल गया था। दादी ने उसे देखकर कहा—'पत्तो, क्या पोखर खन के पानी लाती है ?'

किन्तु उसके मुंह की बात मुंह में ही रह गयी। पार्वती के मुंह की ओर देखते ही चिल्ला उठीं—'बाप रे बाप, यह क्या हुआ ?'

घाव से अब भी खून बह रहा था। कपड़े का टुकड़ा प्राय: सब खून से तर हो गया था। रोते-रोते कहा—'बाप रे बाप, तेरा ब्याह है पत्तो !'

पार्वती ने स्थिर भाव से कलसी उतारकर नीचे रख दी। मां ने आकर रोते-रोते पूछा—'यह चोट कैसे लगी ?'

पत्तो ने सहज भाव से उत्तर दिया—'घाट पर पांव फिसल जाने से सिर के बल ईंटों पर गिर पड़ी थी, जिससे कुछ चोट आ गयी।'

इसके बाद सब मिलकर शुश्रूषा करने लगे। देवदास ने सच कहा था—'आघात अधिक नहीं है।' चार-पांच दिनों में ही वह सूख गया। इसी भांति आठ-दस दिन बीत

गयी। फिर एक दिन रात के समय हाथीपोता गांव के जमींदार भुवनमोहन चौधरी वर बनकर विवाह करने के लिए आये। उत्सव बहुत तड़क-भड़क के साथ नहीं मनाया गया। भुवन बाबू नासमझ आदमी नहीं थे—इस प्रौढ़ावस्था में दूसरा विवाह करने के समय छोकरा बनकर आना ठीक नहीं।

वर की उम्र चालीस वर्ष नहीं, कुछ ऊपर ही है, गौरवर्ण और मोटा-सा थुलथुल शरीर है। कच्ची-पक्की मूंछें मिलकर खिचड़ी हो रही थी और सिर का अगला भाग सफाचट हो रहा था। वर को देखकर कोई हंसा और कोई चुप हो रहा। भुवन बाबू शान्त गम्भीर मुख से किसी अपराधी की भांति विवाह-मंडप में आकर खड़े हुए। कोहबर में स्त्रियों ने उनके साथ हंसी-मजाक नहीं किया। कारण, ऐसे विज्ञ, गम्भीर मनुष्य के साथ हंसी करने का किसी को साहस नहीं हुआ। शुभ-दृष्टि के समय पार्वती किचकिचा-किचकिचाकर देखती रही। होठ कोण मे थोड़ी हंसी की रेखा भी थी। भुवन बाबू ने छोटे बच्चो की तरह दृष्टि नीची कर ली। गांव की स्त्रियां खिलखिलाकर हंस रही थी। चक्रवर्ती महाशय इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। प्रवीण जमाता को पाकर वे कुछ व्यस्त-से हो उठे। जमीदार नारायण मुखोपाध्याय आज कन्या-पक्ष के सब कर्ता-धर्ता थे। वे पक्के प्रबन्धकर्ता थे। किसी भी तरह की त्रुटि नही होने पायी। शुभ कर्म भली-भांति समाप्त हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल चौधरी महाशय ने एक बॉक्स गहना बाहर निकालकर रख दिया। ये सब गहने पार्वती के शरीर मे जगमग उठे। माता ने उसे देख आंचल से आंख का आंसू पोछा। पास ही जमीदारिन खडी थी, उन्होने सस्नेह तिरस्कार करके कहा—'आज आंख का आंसू बहाकर अशुभ न करो!'

सन्ध्या के कुछ पहले मनोरमा ने पार्वती को एक निर्जन घर में ले जाकर आशीर्वाद दिया। कहा—'जो हुआ, अच्छा ही हुआ, अब देखोगी कि तुम पहले से कितने सुखी हो।'

पार्वती ने थोड़ा हंसकर कहा—'हां होऊंगी। जम के साथ-साथ कल थोडा परिचय हुआ है न!'

'यह कैसी बात ?'

'समय पर सब देख लोगी।' मनोरमा ने बात को दूसरी ओर घुमाकर कहा—'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो एक बार देवदास को इस सोने की प्रतिमा को लाकर दिखाऊं ?'

पार्वती चमक उठी—'ला सकती हो बहिन ! क्या एक बार बुलाकर नहीं ला सकतीं?'

मनोरमा का कंठ-स्वर सिहर उठा—'क्यों पत्तो?'

पार्वती ने हाथ का कड़ा घुमाते-घुमाते अन्यमनस्क भाव से कहा—'एक बार उसके पांव की धूल को सिर पर चढ़ाऊंगी, आज जाऊंगी न !'

मनोरमा ने पार्वती को छाती से लगा लिया, फिर दोनों बहुत देर तक रोती रही। सन्ध्या हो गयी, अन्धकार बढ़ गया। दादी ने द्वार ठेलकर बाहर से ही कहा—'ओ पत्तो, ओ मनो, तुम लोग जरा बाहर आना बहिन !'

उसी रात पार्वती स्वामी के घर चली गयी।

9

और देवदास ? उन्होंने उस दिन कलकत्ता के ईडन गार्डन की एक बेंच पर बैठे-बैठे सारी रात बिता दी । उन्हें अत्यंत क्लेश अथवा मार्मिक वेदना हुई हो, यह बात नहीं है । उनके हृदय मे न जाने कैसा एक शिथिल-उदासीन भाव धीरे-धीरे जमा हो रहा था । निद्रित अवस्था मे हठात् शरीर के किसी एक अंग मे पक्षपात हो जाने से नीद टूटने पर जैसे उसके ऊपर ढूंढ़ने पर भी अपना कोई अधिकार नही पाने से विस्मित और स्तम्भित मन को ठीक नहीं कर पाते, क्योकि उसका आजन्म का साथी, सर्वदा का विश्वासी अंग उसके आह्वान का कोई प्रत्युत्तर नही देता; धीरे-धीरे समझ आती है और धीरे-धीरेज्ञान उत्पन्न होता है कि अब उस पर अपना कोई अधिकार नहीं है । देवदास भी ठीक उसी भांति धीरे-धीरे समझ रहे थे कि समय और ससार मे अकस्मात पक्षाघात होने से वे उनसे सर्वदा के लिए विलग हो गये । अब उनके ऊपर मिथ्या, क्रोध और अभिमान करके कुछ नही किया जा सकता । अधिक अधिकार की बात सोचने से भी भारी भूल होगी । उसके समय सूर्योदय हो रहा था । देवदास ने खड़े होकर सोचा, कहां चलूं ? हठात स्मरण हुआ कि कलकत्ता के उसी मैस मे, वहा पर चुन्नीलाल है । देवदास उसी ओर चलने लगे । रास्ते मे दो बार धक्का खाया, ठोकर खाने से उगली लहू-लुहान हो गयी । धक्का लगने से एक आदमी के शरीर पर गिर रहे थे, उसने मतवाला कहकर ढकेल दिया । इसी भांति भटकते-भटकते सन्ध्या के समय मैस के दरवाजे पर आकर खड़े हुए । उस समय चुन्नी बाबू सज-धजकर बाहर जा रहे थे—'यह क्या, देवदास ?'

देवदास चुपचाप देखते रहे । 'कब आये ? मुह सूखा हुआ है । नहाना खाना क्या अब तक कुछ नही हुआ ?' देवदास रास्ते मे ही बैठ गये । चुन्नीलाल हाथ पकड़कर भीतर ले गये । अपनी शैया पर बैठकर शान्त करके पूछा—'क्या मामला है देवदास ?'

'कल मकान से आया हू ?'

'कल सारे दिन कहा थे ?' रात भी कहा थे ?'

'ईडन गार्डन मे ।'

'पागल तो नहीं हो ! क्या हुआ है ?'

'सुनकर क्या करोगे ?'

'नहीं कहो, अभी खाओ-पियो । तुम्हारा सामान कहां है ?'

'कुछ भी साथ नही लाया हू ।'

'अच्छा रहने दो, अभी चलकर खाओ-पियो ।'

तब चुन्नीलाल ने जोर देकर खिलाया-पिलाया; शैया पर सोने का आदेश, देकर दरवाजा बन्द करते-करते कहा—'अभी थोड़ी सोने की चेष्टा करो, मै रात को आकर तुम्हे उठाऊगा ।' यह कहकर वे उस समय तक के लिए चल गये । रात को दस बजे उन्होंने लौटकर देखा कि देवदास उनके बिछौने पर गाढ़ी नीद मे सो रहे है । उन्हे जगाया नही । एक कम्बल ओढ़कर नीचे चटाई पर सो रहे । रात-भर देवदास की नीद नही टूटी और प्रातःकाल मे भी सोते ही रहे । दस बजे उठकर बैठे । पूछा—'चुन्नी बाबू, कब आये ?'

'अभी आया हू ।'

'तुम्हें किसी तरह का कष्ट तो नहीं हुआ ?'

'कुछ भी नहीं ।'

देवदास ने कुछ देर तक उनके मुंह की ओर देखकर कहा—'चुन्नी बाबू, मेरे पास कुछ नहीं है, क्या तुम मुझे आश्रय दोगे ?'

चुन्नीलाल कुछ हंसे । वे जानते थे कि देवदास के पिता बड़े धनवान व्यक्ति है । इसी से हंसकर कहा—'मैं आश्रय दूंगा ? अच्छी बात है, तुम्हारी जितने दिन इच्छा हो, यहां पर रहो, कोई चिन्ता नहीं ।'

'चुन्नी बाबू, तुम्हारी आमदनी कितनी है ?'

'भाई, मेरी आमदनी मामूली है । मकान पर कुछ जमीदारी है । उसे भाई साहब को सौंपकर मैं यहां रहता हूं । वे हर महीने सत्तर रूपये के हिसाब से भेज देते है । इतने में तुम्हारा और मेरा खर्च अच्छी तरह से चल जायेगा ।'

'तुम मकान क्यों नहीं जाते ?'

चुन्नीलाल ने उधर मुंह फिराकर कहा—'बहुत सी बातें हैं ।'

देवदास ने और कुछ नहीं पूछा । धीरे-धीरे भोजन आदि की बुलाहट आई । इसके बाद दोनों आदमी स्नान-भोजनादि समाप्त करके फिर घर मे आकर बैठे । चुन्नीलाल ने पूछा—'देवदास, क्या बाप के साथ कुछ झगडा हो गया है ?'

'नहीं ।'

'और किसी के साथ ?'

देवदास ने उसी भांति जवाब दिया—'नही ।'

इसके बाद चुन्नीलाल को सहसा दूसरी बात का स्मरण आया । कहा—'ओहो, तुम्हारा तो अभी ब्याह नहीं हुआ है !'

इसी समय देवदास दूसरी ओर मुंह फेरकर सो रहे । थोड़ी ही देर मे चुन्नीलाल ने देखा कि देवदास सो गये । इसी भांति सोते-सोते और भी दो दिन बीत गये । तीसरे दिन प्रातःकाल देवदास स्वस्थ होकर बैठे थे । मुख से ऐसा जान पड़ता था मानो वह घनी छाया बहुत कुछ हट गई हो । चुन्नीलाल ने पूछा—'आज तबीयत कैसी है ?'

'पहले से अच्छी जान पड़ती है । अच्छा चुन्नी बाबू, रात में तुम कहां जाते हो ?'

आज चुन्नीलाल ने लज्जित होकर कहा—'हां, मैं जाता हूं, पर उसकी कौन बात है ? अच्छा, आज कॉलेज जाओगे न ?'

'नही, लिखना-पढना छोड दिया ।'

'छिः ! ऐसा भी हो सकता है, दो महीने बाद तुम्हारी परीक्षा होगी ! पढ़ना भी तुम्हारा खराब नही है । इस साल परीक्षा दो न !'

'नहीं, पढ़ना छोड़ दिया ।'

चुन्नीलाल चुप हो रहे । देवदास ने फिर पूछा—'कहां जाते हो—कहो न, तुम्हारे साथ मैं भी चलूंगा ।'

चुन्नीलाल ने देवदास के मुंह की ओर देखकर कहा—'उसे जानकर क्या करोगे, मै कुछ अच्छी जगह नही जाता ।'

देवदास ने अपने मन-ही-मन मे कहा—'अच्छी हो या बुरी, इससे क्या

मतलब—'चुन्नी बाबू, मुझे साथ ले चलोगे या नहीं।'

'ले चल सकता हूं, किन्तु मत चलो।'

'नहीं, मैं चलूंगा। अगर अच्छा नहीं लगेगा, तो मैं फिर न जाऊंगा। पर तुम जिस सुख की आशा से नित्य उन्मुख रहते हो.. । जो हो चुन्नीबाबू, मैं निश्चित चलूंगा।'

चुन्नीलाल ने मुंह फेर, कुछ हंस के मन-ही-मन कहा—'मेरी दशा ! प्रकट मे कहा—'अच्छा, चलना।'

संन्ध्या के कुछ पहले ही धर्मदास चीज-वस्तु आ पहुंचा। देवदास को देखकर रोते-रोते कहा—'देवदास, आज तीन-चार दिन हुए, मां कितना रो रही है।'

'क्यो रोती है ?'

'बिना किसी से कहे-सुने जो एकाएक चल आये।' एक पत्र बाहर निकालकर हाथ में देकर कहा—'मां की चिट्ठी है।'

चुन्नीलाल भीतर-ही-भीतर खबर जानने के लिए उत्सुक भाव से देख रहे थे। देवदास ने पत्र पढ़कर रख दिया। मां ने घर पर आने के लिए बडे अनुरोध के साथ बुलाया है। घर मे ही वे केवल देवदास के मानसिक कष्ट का कुछ-कुछ अनुमान कर सकी थी। धर्मदास के हाथ छिपाकर बहुत-सा रूपया भी भेज दिया था। धर्मदास ने वह सब देवदास के हाथ मे देकर कहा—'देवदास, घर चलो।'

'मै नही जाऊगा। तुम लौट जाओ ।'

राते मे दोनो मित्र सज-धज के बाहर निकले। देवदास की इन सबकी ओर प्रवृत्ति नहीं थी; किन्तु चुन्नीलाल साधारण पोशाक पहनकर बाहर चलने को राजी नही हुए। रात के नौ के समय एक किराये की गाड़ी चितपुर के एक दो-तल्ले मकान के सामने आकर खडी हुई। चुन्नीलाल देवदास का हाथ पकडे हुए भीतर चले गये। गृहस्वामिनी का नाम चन्द्रस्वामी है—उन्होने आकर अभ्यर्थना की। इस समय देवदास का सारा शरीर जल उठा। वे इधर कई दिनो से अपनी अज्ञानता मे नारी-देह की छाया के ऊपर भी विद्वेष करने लगे थे, यह सब वह स्वयं नही जानते थे। चुन्द्रमुखी को देखते ही हृदय की संचित घृणा दावानल की भाति प्रज्ज्वलित हो उठी। चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर भौं चढाकर कहा—'चुन्नीलाल, यह किसी मनहूस जगह में ले आये ?' उनके तीव्र कंठ और आंख की दृष्टि देखकर चुन्द्रमुखी और चुन्नीलाल दोनों ही हत्‌बुद्धि से हो गये। दूसरे ही क्षण चुन्नीलाल ने अपने को संभालकर देवदास का एक हाथ पकड़कर कोमल कंठ से कहा—'चलिये, भीतर चलकर बैठिये।'

देवदास कुछ नहीं बोले, कमरे मे जाकर बिछौने पर गर्दन झुका के विपन्न-मुख बैठ गये। पास ही चन्द्रमुखी भी चुपचाप बैठ गई। दासी तमाखू भरकर चांदी से मढ़ा हुआ नारियल लाई। देवदास ने स्पर्श भी नहीं किया। चुन्नीलाल गम्भीर-मुख बैठे रहे। दासी क्या करे, यह निश्चय न कर सकी। अन्त मे चन्द्रमुखी के हाथ मे नारियल देकर चली गई। दो-एक फूंक खीचने के समय देवदास ने उसके मुख की ओर देखा और एकाएक अत्यन्त घृणा से कह उठे—'कितने असभ्या और श्रीहीना है ?'

इसके पहले चन्द्रमुखी को बातचीत मे कोई हरा नही सका था। उसको अप्रतिभ करना जरा टेढ़ी खीर थी। देवदास की इस आन्तरिक घृणा की सरल और कठिन उक्ति

उसके हृदय में बिंध गई। किन्तु कुछ देर बाद ही उसने अपने को संयत कर लिया। परन्तु चन्द्रमुखी के मुख से धुआं नहीं निकला। तब चुन्नीलाल के हाथ में हुक्का देकर उसने फिर एक बार देवदास के मुख की ओर देखा और फिर निःशब्द बैठी रहीं। तीनों ही निर्विकार हो रहे थे। केवल बीच-बीच में गड़-गड़ करके हुक्के का शब्द होता था, वह भी मानो डरते-डरते। मित्र-मंडली में तर्क उठने पर एकाएक निरर्थक कलह हो जाने से जैसे प्रत्येक अपने मन-ही-मन फूले रहते है और क्षुब्ध अन्तःकरण से कहते है कि—'यही तो !' उसी भांति तीनों आदमी मन-ही-मन कह रहे थे—'यही तो, यह कैसा हुआ ?'

जो हो, तीनों में से किसी को भी आनन्द नहीं मिला। चुन्नीलाल तो हुक्का रखकर नीचे उतर आये, शायद उन्हें कोई दूसरा काम नहीं मिला। इसलिए कमरे में अब केवल दो आदमी रह गये। देवदास ने मुख उठाकर पूछा—'तुम अपनी दर्शनी लेती हो ?'

चन्द्रमुखी ने सहसा कोई उत्तर नहीं दिया। इस समय उसकी उम्र छब्बीस वर्ष की थी। इस नौ-दस वर्ष के बीच में उसका कितने ही विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों के साथ घनिष्ठ परिचय हो चुका था, किन्तु इस प्रकार के अद्‌भुत मनुष्य से एक दिन भी भेंट नहीं हुई थी। कुछ इधर-उधर करके उसने कहा—'आपके पांव की धूल जब पड़ी है... !'

देवदास ने बात समाप्त नहीं होने दी, बीच में ही कह उठे—'पांव की धूल की बात नहीं रूपया लेती हो ?'

'उसके न लेने से हम लोगों का काम कैसे चलेगा ?'

'बस—यही सुनना चाहता हूं।' यह कहकर उन्होंने पॉकेट से एक नोट निकाला और चन्द्रमुखी के हाथ में देकर चलने की तैयारी की। एक बार देखा भी नहीं कि कितना रूपया दिया ?'

चन्द्रमुखी ने विनीत भाव से कहा—'इतनी जल्दी जायेंगे ?'

देवदास ने कुछ नहीं कहा, बरामदे में आकर चुपचाप खड़े हो गये।

चन्द्रमुखी की एक बार इच्छा हुई कि रूपया लौटा दे, किन्तु किसी तीव्र संकोच के कारण लौटा न सकी। सम्भवतः उसे कुछ डर भी मालूम हुआ था। इसे, छोड़, उसे अनेकों लांछना, भर्त्सना और अपमान सहने का अभ्यास है, इसीलिए निर्वाक्, निस्पन्द चौखट के ऊपर खड़ी रही। देवदास सीढ़ी से नीचे उतर गये।

सीढ़ी पर ही चुन्नीलाल से भेंट हुई। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—'कहां जाते हो ?'

'बासे को जाता हूं।'

'यह क्यों ?'

देवदास और दो-तीन सीढ़ी उतर गये।

चुन्नीलाल ने कहा—'मैं भी चलता हूं।'

देवदास के पास आकर उनका हाथ पकड़कर कहा—'चलो, थोड़ा यहीं पर खड़े रहो, मैं ऊपर से होकर अभी आता हूं।'

'नहीं, मैं जाता हूं; तुम फिर आना।'—यह कहकर देवदास चले गये।

चुन्नीलाल ने ऊपर आकर देखा, चन्द्रमुखी तब भी उसी भांति चौखट पर खड़ी है।

उसे देखकर पूछा—'वह चले गये ?'

'हां।'

चन्द्रमुखी ने हाथ का नोट दिखाकर कहा—'यह देखो, अच्छा होगा इसे ले जाओ, अपने मित्र को लौटा दो।'

चुन्नीलाल ने कहा—'वे अपनी इच्छा से दे गये है, फिर मैं क्यों लौटा ले जाऊं ?'

इतनी देर बाद चन्द्रमुखी थोड़ा हंसी, किन्तु हंसी में आनन्द का लेश नहीं था। उसने कहा—'इच्छा से नहीं; मैं रूपया लेती हूं इसी से क्रोध करके दे गये हैं। हां चुन्नी बाबू, वह क्या पागल हैं ?'

'कुछ भी नहीं। आज कई दिन से शायद उनका मन ठीक नहीं है।'

'क्यों नहीं मन ठीक है, कुछ जानते हो ?'

'मैं नहीं जानता, शायद मकान पर कुछ हुआ है।'

'तब यहां पर क्यों लाये ?'

'मैं नहीं लाता था, वे खुद ही जोर देकर आये थे।'

चन्द्रमुखी इस बार यथार्थ में विस्मित हुई। कहा—'खुद जोर देकर आये ! सब जानकर !'

चुन्नीलाल ने कुछ सोचकर कहा—'और नहीं तो क्या ? वे सभी जानते हैं। मैं भुलवाकर नहीं लाया।'

चन्द्रमुखी कुछ देर तक चुप रहीं, फिर न जाने क्या सोचकर कहा—'चुन्नी, मेरा एक उपकार करोगे ?'

'क्या ?'

'तुम्हारे मित्र कहां रहते हैं ?'

'मेरे ही साथ।'

'एक दिन उन्हें और ला सकते हो ?'

'यह मैं नहीं कर सकता। इसके पहले वे किसी ऐसी जगह पर नहीं गये थे और भविष्य में भी अब किसी ऐसी जगह पर जाने की उम्मीद नहीं हे। किन्तु क्यों, यह तो बताओ ?'

चन्द्रमुखी ने एक मलिन हंसी हंसकर कहा—'चुन्नी, चाहे जैसे हो, एक बार उन्हें और लिवा लाओ।'

चुन्नी ने मुस्करा तथा आंखें मारकर कहा—'धमकी पाने से कहीं प्रेम उत्पन्न हुआ है क्या ?'

चन्द्रमुखी भी मुस्करायी, कहा—'नहीं देखा, नोट दे गये हैं, इतना भी नहीं समझते !'

चुन्नी चन्द्रमुखी को कुछ पहचानते थे, सिर हिलाकर कहा—'नहीं-नहीं नोट वाली दूसरी होती हैं, तुम वैसी नहीं हो। सच बात कहो, क्या है ?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'सच बात तो यह है कि उनकी ओर कुछ मन का खिंचाव हो रहा है।'

चुन्नी ने विश्वास नहीं किया। हंसकर कहा—'इतनी देर में ?'

इस बार चन्द्रमुखी भी हंस पड़ी। कहा—'यह होने दो। चित्त स्वस्थ होने पर एक बार और लिवा लाना, फिर एक बार देखूंगी। लिवा लाओगे न ?'

'कह नहीं सकता।'

'मेरे सिर की सौगन्ध है।'

'अच्छा, कोशिश करूंगा।'

10

पार्वती ने आकर देखा, उसके स्वामी की बहुत बड़ी हवेली है। नये साहिबी फैशन की नहीं, पुराने ढंग की है। सदर-महल, अन्दर-महल, पूजा का दालान, नाट्य-मन्दिर, अतिथिशाला, कचहरी घर, तोशाखाना और अनेक दास-दासियो को देखकर पार्वती अवाक् रह गयी। उसने सुना था कि उसके स्वामी बड़े आदमी और जमींदार हैं। किन्तु इतना नहीं सोचा था। अभाव केवल आदमियों का था, अर्थात् आत्मीय कुटुम्ब-कुटुम्बिनी प्राय: कोई नही है। इतना बड़ा अन्त:पुर (जनानाखाना) जन-शून्य था। पार्वती नववधू है, किन्तु एकदम गृहिणी हो बैठी। परछन करके घर में लाने के लिए केवल एक बूढ़ी फूफी थी, इन्हें छोड़ सब दास-दासियो का दल था।

संन्ध्या के कुछ पहले एक सुन्दर सुकान्तिवान बीस वर्षीय नवयुवक ने प्रणाम करके पार्वती के निकट खड़े होकर कहा—'मां, मैं बड़ा लड़का हूं।'

पार्वती ने घूंघट के भीतर से ही देखा, कुछ कहा नही। उसने फिर एक बार प्रणाम करके कहा—'मां, मैं तुम्हारा बड़ा लड़का हूं, प्रणाम करता हूं।'

पार्वती ने लम्बे घूंघट को सिर पर उठा, मृदु कंठ से कहा—'यहां आओ भाई, यहां आओ।'

लड़के का नाम महेन्द्र है। वह कुछ देर तक पार्वती के मुख की ओर अवाक् होकर देखता रहा; फिर पास मे बैठकर विनीत स्वर मे कहा—'आज दो वर्ष हुए, मेरी मा का स्वर्गवास हो गया। इन दो वर्षो का समय हम लोगो का बड़े दुख और कष्ट से बीता है। आज तुम आयी हो, आशीर्वाद दो कि अब हम लोग सुख से रहे।'.

पार्वती खुलकर सरल भाव से बातचीत करने लगी। क्योकि एकबारगी गृहिणी होने से कितनी ही बातों के जानने और कितनी ही बार लोगो से बातचीत करने की जरूतर पड़ती है। किन्तु यह कहना कितने ही लोगो को कुछ अस्वाभाविक जंचेगा, पर जिन्होने पार्वती के स्वभाव को अच्छी तरह से समझा है, वे देखेंगे कि अवस्था के इन अनेक परिवर्तनों ने उसकी उम्र की अपेक्षा उसे कही अधिक परिपक्व बना दिया है। इसके अतिरिक्त निरर्थक लोक-लज्जा, अकारण जड़ता, संकोच उसमें कभी नहीं था। उसने पूछा—'हमारे और सब लड़के कहां है?'

महेन्द्र ने जरा हंसकर कहा—'तुम्हारी बड़ी लड़की—मेरी छोटी बहिन—अपनी ससुराल है, मैंने उसके पास चिट्ठी लिखी थी, पर यशोदा किसी कारणवश नहीं आ सकी।'

पार्वती ने दुखित होकर पूछा—'आ नही सकी या स्वयं इच्छा से नही आयी?'

महेन्द्र ने लज्जित होकर कहा—'ठीक नहीं जानता, मां!'

किन्तु उसकी बात और मुख के भाव से पार्वती समझ गयी कि यशोदा क्रोध के कारण नहीं आयी है; कहा—'और हमारा छोटा लड़का?'

महेन्द्र ने कहा—'वह बहुत जल्दी आयेगा, कलकत्ता में है, परीक्षा देकर आयेगा।'

चौधरी महाशय स्वयं ही जमीदारी का काम देखते थे। इसे छोड़ वे नित्य शालिग्राम

की बटिया की अपने हाथ से पूजा करते थे; अतिथिशाला में जाकर साधु-संन्यासियों की सेवा करते थे। इन सब कामों में उनका सुबह से लेकर रात के दस-ग्यारह बजे तक का समय लग जाता था। नवीन विवाह के करने से किसी नवीन आमोद-प्रमोद के चिन्ह उनमें नहीं दिखायी पड़ते थे। रात में किसी दिन भीतर आते और किसी दिन नहीं आ सकते थे। आते भी तो बहुत मामूली बातचीत होती थी। चारपाई पर सोकर एक गावतकिया लगाकर आंख मूंदते-मूंदते यदि बहुत कहते तो केवल यही कि 'देखो, तुम्ही घर की मालकिन हो, सब अच्छी तरह से देख-सुन के और समझ-बूझ के काम करना।'

पार्वती सिर हिलाकर कहती—'अच्छा !'

भुवन बाबू कहते—'और देखो, ये सब लड़की-लड़के..हां, ये सब तो तुम्हारे ही हैं।'

स्वामी की लज्जा को देखकर पार्वती की आंख के कोने से हंसी फूट निकलती थी। वे भी थोड़ा हंसकर कहते—'हां, और देखो, यह महेन्द्र तुम्हारा बड़ा लड़का है। अभी उस दिन बी० ए० पास हुआ है। इसके समान अच्छा लड़का—इसके समान मोहब्बती—अहा इस... !'

पार्वती हंसी दबाकर कहती—'मैं जानती हूं, यह मेरा बड़ा लड़का है।'

यह तुम क्यों जानोगी। ऐसा लड़का कहीं भी नही देखने में आया। और मेरी यशोमती लड़की नही, एकदम लक्ष्मी की प्रतिमा है। वह अवश्य आयेगी—क्या बूढ़े बाप को देखने नहीं आयेगी? उसके आने से... !'

पार्वती निकट आकर गंजे सिर पर अपने कमलवत कोमल हाथ को रखकर मृदु स्वर से कहती—'तमको इसकी चिन्ता नहीं करनी होगी। यशोदा को बुलाने के लिए मैं आदमी भेजूंगी, नही तो महेन्द्र खुद ही जायेगा।'

'जायेगा ! जायेगा ! अच्छा, बहुत दिन बिना देखे हुए । तुम आदमी भेजोगी?'

'जरूर भेजूंगी। मेरी लड़की हैं मैं बुलवाऊंगी नही?'

वृद्ध इस समय उत्साहित हो उठ बैठते। परस्पर के सम्बन्ध को भूलकर पार्वती के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते और कहते—'तुम्हारा कल्याण हो ! मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम सुखी हो, भगवान तुम्हें दीर्घायु करें !'

इसके बाद सहसा न जाने कौन-कौन-सी बातें वृद्ध के मन में उठने लगती थीं। फिर चारपाई पर आँखें मूंदकर मन-ही-मन कहते—आह ! वह मुझे बहुत प्यार करती थी।

इसी समय कच्ची मूँछों के पास से बहकर एक बूंद आंख का आंसू तकिये पर गिर पड़ता। पार्वती पोछ देती थी। कभी-कभी वे भीतर-ही-भीतर कहते—'अहा ! उन सभी लोगों के आ जाने से एक बार फिर घर-द्वार जगमगा उठेगा..अहा ! पहले कैसी चहल-पहल रहती थी। लड़का-लड़की, घर में सब कोई थे, नित्य दुर्गोत्सव का आनन्द रहता। फिर एक दिन सब का अन्त हो गया। लड़के कलकत्ता चले गये, यशो को उसके ससुर ले गये, फिर अन्धकार, श्मशान... ।'

इसी समय फिर, मूंछों के दोनों ओर से आंसू बह-बहकर तकिये को भिगोने लगे। पार्वती कातर होकर आंसू पोंछते-पोंछते कहने लगी—'महेन्द्र का क्यों नहीं विवाह किया?'

बूढ़े कहते—'अहा, वह मेरे कैसे सुख का दिन होता ! यही तो सोचता था। किन्तु

उसके मन की बात कौन जाने ? उसकी जिद को कौन तोड़े ? किसी तरह से ब्याह नहीं किया। इसीलिए तो बुढ़ापे में...सारा घर भांय-भांय करता था, सारा घर दुखित था, लक्ष्मी को छोड़ दरिद्र का वास होने लगा था; कोई घर में चिराग जलाने वाला नहीं रहा। यह सब देखा नहीं जाता था इसीलिए तो... ।'

यह बात सुन पार्वती बड़ी दुखी होती। करूण-स्वर से, हंसी के साथ सिर हिलाकर कहती—'तुम्हारे बूढ़े होने से मैं शीघ्र ही बूढ़ी हो जाऊँगी। स्त्रियो को बूढ़ी होने में क्या देरी लगती है ?'

भुवन चौधरीजी उठकर बैठते; एक हाथ उसके चिबुक पर रखकर निःशब्द उसके मुख की ओर बहुत देर तक देखते रहते। जिस तरह कारीगर अपनी प्रतिमा को सजाकर, सिर में मुकुट पहनाकर, दाहिने-बाएं घुमाकर बहुत देर तक देखता रहता है—फिर थोड़ा गर्व और अधिक स्नेह का भाव उत्पन्न होता है। ठीक उसी भांति भुवन बाबू को भी होता है। किसी दिन उनके अस्फुट मुख से बाहर निकल पड़ता—'आहा ! अच्छा नहीं किया।'

'क्या अच्छा नही किया ?'

'सोचता हूं, यहां पर तुम्हारी शोभा नही है।'

पार्वती हंसकर कहती—'खूब शोभा है। हम लोगों कि क्या शोभा-अशोभा ?'

वृद्ध फिर लेटकर मन-ही-मन कहते—मैं समझता हूँ, वह मैं समझता हूं। तब तुम्हारा भला हो। भगवान तुम्हें देखेगे।

इसी भांति एक महीना बीत गया। बीच में एक बार चक्रवर्ती महाशय कन्या को लेने आये थे। पार्वती अपनी इच्छा से नही गयी। पिता से कहा—'बाबूजी, बड़ी कच्ची गृहस्थी है, कुछ दिन बाद जाऊंगी।'

वे भीतर-ही-भीतर हंसे और मन-ही-मन कहा—

स्त्रियो की जाति ही ऐसी है। वे चले गये, पार्वती ने महेन्द्र को बुलाकर कहा—'भाई, एक बार मेरी बड़ी लड़की को बुला लाओ।'

महेन्द्र इधर-उधर करने लगा। वह जानता था कि यशोदा किसी तरह नही आयेगी। कहा—'एक बार बाबूजी का जाना अच्छा होगा।'

'छिः यह क्या अच्छा होगा ? इससे तो अच्छा है कि हमी मां-बेटे चलकर बुला लावे।'

महेन्द्र ने आश्चर्य से कहा—'क्या तुम जाओगी ?'

'क्या नुकसान है ? मुझको इसमें लज्जा नही है। मेरे जाने से अगर यशोदा आवे, अगर उसका क्रोध दूर हो जाये, तो मेरा जाना कौन कठिन है ?'

अस्तु, महेन्द्र दूसरे ही दिन यशोदा को लाने गया। उसने वहां जाकर कौन-सा कौशल किया, यह मैं नही जानता, किन्तु चार ही दिन बाद यशोदा आ गयी। उस दिन पार्वती सारी देह मे विचित्र, नये और बहुत मूल्यवान गहने पहने थी। कुछ ही दिन हुए इन्हे भुवन बाबू ने कलकत्ता से मंगवा लिया था। पार्वती आज वही सब गहने पहने हुए थी। रास्ते में आते समय यशोदा बहुतेरी क्रोध और अभिमान की बातों को मन-ही-मन दुहरा रही थी। नयी बहू को देखकर वह एकदम अवाक् हो गयी। कोई भी विद्वेष की बात उसके

मन में नहीं रही। केवल अस्फुट स्वर से कहा—'यही !'

पार्वती यशोदा का हाथ पकड़कर घर में ले गयी। पास में बैठकर एक पंखा हाथ में लेकर कहा—'यशोदा, मां के ऊपर इतना क्रोध करना होता है?'

यशोदा का मुख लज्जा से लाल हो उठा। पार्वती तब सारे गहने एक-एक करके यशोदा के अंग में पहनाने लगी। यशोदा ने विस्मित होकर पूछा—'यह क्या?'

'कुछ नही, सिर्फ मां की साध।'

गहना पहननें से यशोदा का शरीर खिल उठा। और पहन चुकने पर उसके अधर पर हंसी की रेखा दिखाई दी। सारे शरीर में आभूषण पहनाकर निराभरण पार्वती ने कहा—'यशोदा, मां के ऊपर भला क्रोध करना चाहिए?'

'नहीं, नहीं क्रोध वैसा? क्रोध किस पर?'

'सुनो यशोदा, यह तुम्हारे बाप का घर है; इतने बड़े मकान में कितने ही दास-दासियों की जरूरत है। मैं भी तो एक दासी हूं। छिः बेटी, तुच्छ दासी के ऊपर इतना क्रोध करना क्या तुम्हें शोभा देता है?'

यशोदा अवस्था में बड़ी है, किन्तु बातचीत करने में छोटी है। वह विह्वल हो गयी। पंखा हांकते-हांकते पार्वती ने फिर कहा—'दुखी की लड़की को तुम लोगों की दया से यहां पर थोड़ा-सा स्थान मिला है; कितने ही दीन-दुखी और अनाथ का तुम लोगों की दया से यहां नित्य ही प्रति पालन होता है; मैं तो भी उन्ही में से एक हूं। आश्रित...।'

यशोदा सब तल्लीन होकर सुनती रही। अब एकाएक आत्म-विस्मरण कर पांव के पास धप् से गिरकर प्रणाम करके कहा—'तुम्हारे पांव लगती हूं मां।'

दूसरे दिन महेन्द्र को अकेले में बुलाकर कहा—'क्यों, क्रोध कम हुआ?'

यशोदा ने भाई के पांव पर हाथ रखकर चटपट कहा—'भैया, क्रोध के वश, छिः-छिः, कितनी ही बातें कही हैं, देखो वे सब प्रकट न होने पावें।'

महेन्द्र हंसने लगा। यशोदा ने कहा—'अच्छा भैया, क्या कोई सौतेली मां इतना आदर-भाव करती रख सकती है?'

दो दिन बाद यशोदा ने पिता से आकर आप ही कहा—'बाबूजी, वहां पर चिट्ठी लिख दो कि मैं अभी और दो महीने यहीं पर रहूंगी।'

भुवन बाबू ने कुछ आश्चर्य से कहा—'क्यों बेटी?'

यशोदा ने कहा—'मेरी तबीयत कुछ अच्छी नहीं है, इसी से कुछ दिन छोटी मां के पास रहूंगी।'

आनन्द से वृद्ध की आंखों में आंसू उमड़ आये। सन्ध्या को पार्वती को बुलाकर कहा—'तुमने मुझे लज्जा से मुक्त कर दिया। जीती रहो, सुखी रहो!'

पार्वती ने कहा—'वह क्या?'

'वह क्या, यह तुम्हें नही समझा सकूंगा। नारायण ने आज कितनी ही लज्जा से मेरा उद्धार कर दिया।'

सन्ध्या के अंधेरे में पार्वती ने नहीं देखा कि उसके स्वामी की दोनों आंखे जल से डबडबा आयी है। और विनोदलाल—भुवन बाबू का छोटा लड़का, वह परीक्षा देकर घर आया, अभी तक पढ़ने ही न गया।

11

दो-तीन दिवस देवदास ने पागलों की भांति इधर-उधर घूम-घामकर बिताये। धर्मदास कुछ कहने गया तो उस पर आँखे लाल-लाल कर धमका के भगा दिया। उनका विकृत भाव देखकर चुन्नीलाल को भी कुछ कहने का साहस न हुआ। धर्मदास ने रोकर कहा—'चुन्नी बाबू, देवदास ऐसे क्यों हो गये?'

चुन्नीलाल ने कहा—'क्या हुआ धर्मदास?'

एक अन्धे ने दूसरे अन्धे से रास्ता पूछा। दोनों में एक भी हृदय की नहीं जानते, आंखे पोंछते-पोंछते धर्मदास ने कहा—'चुन्नी बाबू, जिस तरह से हो सके, देवदास को उनकी मां के पास पहुँचवाओ; अगर अब लिखें पढ़ेगें नहीं तो यहां रहने की जरूरत क्या?'

बात बहुत सच है। चुन्नीलाल सोचने लगे। चार-पांच दिन बाद एक दिन सन्ध्या के ठीक उसी समय चुन्नी बाहर रहे थे। देवदास ने कही से आकर उनका हाथ थामकर कहा—'चुन्नी बाबू, वहीं जाते हो?'

चुन्नी ने कुंठित होकर कहा—'हां, नहीं कहो तो न जाऊं।'

देवदास ने कहा—'नहीं, मैं अपने को मना नहीं करता हूं; पर यह कहो, किस आशा से तुम वहां जाते हो?'

'आशा क्या है? यों ही जी बहलाने को।'

'जी बहलाने? मेरा तो जी नहीं बहला। मैं भी जी बहलाना चाहता हूं।'

चुन्नी बाबू कुछ देर तक उनके मुख की ओर देखते रहे। सम्भवतः उनके मुख से उनके मन के भाव को जानने की चेष्टा करते थे। फिर कहा—'देवदास, तुम्हें क्या हुआ है, साफ-साफ कहो?'

'कुछ भी नहीं हुआ है।'

'नहीं कहोगे?'

चुन्नीलाल ने बहुत देर बाद नीचा सिर किये हुए कहा—'देवदास मेरी एक बात रखोगे?'

'क्या?'

'वहां पर तुमको एक बार और चलना होगा? मैंने वचन दिया है।'

'जहां उस दिन गया था?'

'हां।'

'छिः! वहां मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'जिससे अच्छा लगेगा, मैं वहीं करूंगा।'

देवदास अन्यमनस्क की भांति कुछ देर चुप रहे; फिर कहा—'अच्छा चलो, मैं चलूंगा।'

अवनति की एक सीढ़ी नीचे उतरकर चुन्नीलाल न जाने कहाँ चले गये। अकेले देवदास ही चन्द्रमुखी के घर के नीचे के खंड में बैठकर शराब पी रहे हैं। पास ही चन्द्रमुखी विषण्ण-मुख से बैठी हुई देख रही है। उसने कहा—'देवदास, अब मत पियो।'

देवदास ने शराब का ग्लास नीचे रखकर भौं चढ़ाकर कहा—'क्यों ?'

'अभी थोड़े ही दिन से शराब पीना शुरू किया है—इतनी नहीं बरदाश्त कर सकोगे ।'

'बरदाश्त के लिए शराब नहीं पीता हूं । यहां रहने के लिए शराब पीता हूं ।'

यह बात चन्द्रमुखी कई बार सुन चुकी है । दो-एक बार उसने सोचा कि कहीं दीवाल से टकराकर वे लहू की नदी बहाकर मर न जायें । देवदास को वह प्यार करती थी । देवदास ने शराब के ग्लास को ऊपर को उछाल दिया, कौच के पांव से लगकर वह चूर-चूर हो गया । फिर तकिये के सहारे लेटकर लड़खड़ाती हुई जबान से कहा—'मुझमें उठने का बल नहीं है, इसी से यहां पड़ा रहता हूं, ज्ञान नहीं है, इसी से तुम्हारे मुख की ओर देखकर बात करता हूं, चन्द..र..तब अज्ञानता नहीं रहती, थोड़ा-सा ज्ञान रहता है । तुम्हें छू नहीं सकता, मुझे बड़ी घृणा होती है ।'

चन्द्रमुखी ने आंख पोंछकर धीरे-धीरे कहा—'देवदास, यहां कितने ही आदमी आते हैं, किन्तु वे लोग शराब छूते तक नहीं ।'

देवदास आंख निकालकर उठ बैठे । कुछ झूमते हुए इधर-उधर हाथ फेंककर कहा—'छूते नहीं ? मेरे पास बन्दूक होती तो गोली मार देता वे लोग मुझसे भी अधिक पापिष्ठ हैं, चन्द्रमुखी !'

कुछ देर सोचने लगे; फिर कहा—'यदि कभी शराब का पीना छोड़ दूं—यद्यपि छोड़ूगा नही—तो फिर यहां कभी न आऊंगा । मुझे उपाय मालूम है; पर उन लोगों का क्या होगा ?'

थोड़ा रूककर फिर कहने लगे—'बड़े दुख से शराब को अपनाया है । मेरी विपद और दुख की साथिन ! अब तुझे कभी नहीं छोड़ स कता ।'देवदास तकिये के ऊपर मुंह रगड़ने लगे । चन्द्रमुखी ने चटपट पास आकर मुख उठा लिया । देवदास ने भौं चढ़ाकर कहा—'छिः, छूना नही, अभी मुझमें ज्ञान है । चन्द्रमुखी, तुम नहीं जानतीं—केवल मैं जानता हूं कि मैं तुमसे कितनी घृणा करता हूं । सर्वदा घृणा करूंगा—तब भी आऊंगा, तब भी बैठूंगा, तब भी बातें करूंगा । इसे छोड़ दूसरा उपाय नहीं है । इसे क्या तुम लोग कोई समझ सकती हो ? हा-हा ! लोग पाप अंधेरे में करते हैं, और मैं यहां मतवाला हूं—ऐसा उपयुक्त स्थान जगत में और कहां है ? और तुम लोग..'

देवदास ने दृष्टि ठीक कर कुछ देर तक उसके विषण्ण मुख की ओर देखकर कहा—'आहा ! सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति ! लांछना, भर्त्सना, अपमान, अत्याचार, उपद्रव इस सबको स्त्री सह सकती है—तुम्हीं इसका उदाहरण हो !'

फिर चित होकर लेट गये और धीरे-धीरे कहने लगे—'चन्द्रमुखी कहती है कि वह मुझे बहुत प्यार करती है । मैं यह नहीं चाहता—नहीं चाहता—नहीं चाहता—लोग थियेटर करते हैं, मुख में चूना और कालिख पोतते है—भिक्षा मांगते है—राजा बनते हैं—प्यार करते है, कितनी ही प्यार की बातें करते हैं—कितना रोते हैं—मानो सब ठीक है, सत्य है ! मेरी चन्द्रमुखी थियेटर करती है, मैं देखता हूं । किन्तु वह जो बहुत याद आती है, क्षण भर में सब हो गया । वह कहां चली गयी—और किस रास्ते से मैं आया हूं ?' अब एक सर्व जीवनव्यापी मस्त अभिनय आरम्भ हुआ है, एक घोर मतवाला—और यही एक —होने दो, हो—हर्ज क्या ? आशा नहीं, है वही भरोसा है—सुख भी नहीं, साध भी

'वाह—वाह ! बहुत अच्छा !'

इसके बाद देवदास करवट बदलकर न जाने क्यों बक-झक करने लगे। चन्द्रमुखी उन्हें नहीं समझ सकी। थोड़ी देर में देवदास सो गये। चन्द्रमुखी उनके पास आकर बैठी। आंचल भिगोकर मुख पोंछ दिया और भीगे हुए तकिये को बदल दिया। एक पंखा लेकर कुछ देर हवा की, बहुत देर तक नीचा सिर किये बैठी रही। तब रात के एक बज गये थे, वह दीपक बुझा कर द्वार बन्द कर दूसरे कमरे में चली गयी।

12

दोनों भाई—द्विजदास और देवदास—तथा गांव के बहुत-से लोग जमींदार मुखोपाध्याय की अन्तेष्टि-क्रिया समाप्त कर घर लौट आये। द्विजदास चिल्ला-चिल्लाकर रोते-रोते पागल की भांति सो गये, गांव के पांच-पांच, छः-छः आदमी उनको पकड़कर रख नहीं सकते थे और देवदास शांत भाव से खम्भे के पास बैठे थे। मुख में एक शब्द नहीं था, आंखों में एक बिन्दु जल नहीं था, कोई उनको पकड़ने भी नहीं जाता था, कोई सान्त्वना भी नहीं देता था। केवल मधुसूदन घोष ने एक बार पास आकर कहा—'भाई, यह सब ईश्वर के अधीन की बात है। इसमें... ।'

देवदास ने द्विजदास की ओर हाथ से दिखाकर कहा—'वहां...'

घोष महाशय ने अप्रतिभ होकर कहा—'हां-हां, उनको तो बहुत शोक... ।'

इत्यादि कहते-कहते चले गये। और कोई पास नही आया। दोपहर बीतने पर देवदास मूर्च्छिता माता के पांव के पास जाकर बैठे। वहां पर बहुत-सी स्त्रियां उनको घेरकर बैठी थीं। पार्वती की दादी भी उन्हीं में बैठी थी। टूटे-टूटे स्वर से शोकार्त विधवा माता से कहा—'बहू, देखो, देवदास आया है।' देवदास ने बुलाया—'मां !'

उन्होंने केवल एक बार देखकर कहा—'देवदास !' फिर डबडबायी हुई आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे। स्त्रियां भी चिल्ला उठीं। देवदास कुछ देर तक माता के चरणों में अपना मुख ढके रहे, फिर उठकर चले गये—पिता के सोने के कमरे में। आंखों में जल नहीं था। मुख गम्भीर तथा शान्त था। लाल-लाल आंखों को ऊपर चढ़ाये हुए जाकर भूमि पर बैठ गये। उस मूर्ति को यदि कोई देखता तो सम्भवतः भयभीत हो जाता। दोनों कनपटियां फूली हुई थीं। बड़े-बड़े रूखे केश ऊपर की ओर खड़े थे। तपाये हुए सोने के समान शरीर का रंग काला पड़ गया। कलकत्ता के जघन्य अत्याचार में रातों का दीर्घ जागरण हुआ था—और उस पर पिता की मृत्यु हुई। एक वर्ष पहले अगर उनको कोई देखे होता; तो सम्भवतः एकाएक को पहचान न सकता। कुछ देर के बाद पार्वती की माता उन्हें ढूंढ़ती हुई दरवाजा ठेलकर भीतर आयी और पुकारा—'देवदास !'

'क्या है छोटी चाची ?'

'ऐसा करने से तो नहीं चलेगा।'

देवदास ने उनके मुंह की ओर देखकर कहा—'क्या करता हूं चाची ?'

चाची सब समझती थीं, किन्तु कुछ कह नहीं सकी। देवदास के सिर पर हाथ फेरते-फेरते कहा—'देवता—मेरा !'

'क्या चाची ?'

'देवता—'

इस बार देवदास ने उसकी गोद में अपना मुख छिपा लिया, आंखों से दो बूंद गरम-गरम आंसू गिर पड़े।

शोकार्त परिवार का दिन भी किसी भांति बीता। नियमित रूप से प्रभावित हुआ, रोना-धोना बहुत कम हो गया। द्विजदास धीरे-धीरे अपने आपे में आये। उनकी माता भी कुछ संभल कर बैठी। आंख पोंछते-पोंछते आवश्यक काम करने लगीं। दो दिन बाद द्विजदास ने देवदास को बुलाकर कहा—देवदास, पिता के श्राद्ध-कर्म के लिए कितना रुपया खर्च करना उचित है?'

'देवदास ने भाई के मुख की ओर देखकर कहा—'जो आप उचित समझें, करें।'

'नहीं भाई, केवल मेरे ही उचित समझने से काम नहीं चलेगा, अब तुम भी बड़े हुए, तुम्हारी सम्मति भी लेना आवश्यक है।'

देवदास ने पूछा—'कितना नकद रूपया है।'

'बाबूजी की तहवील में डेढ़ लाख रूपया जमा है। मेरी सम्मति से दस हजार रूपये खर्च काफी होगा, क्या कहते हो?'

'मुझे कितना मिलेगा?'

द्विजदास ने कुछ इधर-उधर करके कहा—'तुम्हें भी आधा मिलेगा, दस हजार खर्च होने से सत्तर हजार तुम्हें और सत्तर हजार मुझे मिलेगा।

'मां को क्या मिलेगा?'

'मां नकद रूपया लेकर क्या करेंगी? वे तो घर की मालकिन ही हैं। हम लोग उनका खर्च संभालेगे।'

देवदास ने कुछ सोचकर कहा—'मेरी सम्मति है कि आपके भाग से पांच हजार रूपया खर्च हो और मेरे भाग से पच्चीस हजार रूपया खर्च हो, बाकी पच्चीस हजार मां के नाम जमा रहेगा। आपकी क्या सम्मति है?'

पहले द्विजदास कुछ लज्जित हुए। फिर कहा—'अच्छी बात है। किन्तु यह तो जानते ही हो कि मेरे स्त्री-पुत्र और कन्या है। उनके यज्ञोपवीत, विवाह आदि में बहुत खर्च पड़ेगा। इसलिए यही सम्मति ठीक है।' फिर कुछ ठहरकर कहा—'तो क्या जरा-सी इसकी लिखा-पढ़ी कर दोगे?'

'लिखने-पढ़ने का क्या काम है? यह काम अच्छा नहीं मालूम होगा। मेरी इच्छा है कि रूपये पैसे की बात इस समय छिपी-छिपाई रहे।'

'तो अच्छी बात है; किन्तु क्या जानते हो भाई...?'

'अच्छा मैं लिखे देता हूं।' उसी दिन देवदास ने लिख-पढ़ दिया।

दूसरे दिन दोपहर के समय देवदास सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। बीच में पार्वती को देखकर रूक गये। पार्वती ने मुख की ओर देखा—देखकर पहचानते हुए उसे क्लेश हो रहा था। देवदास ने गम्भीर और शांत मुख से आकर कहा—'कब आयी पार्वती?'

वही कंठ-स्वर आज तीन वर्ष बाद सुना। सिर नीचा किये हुए पार्वती ने कहा—'आज सुबह आयी।'

'बहुत दिन से भेंट नहीं हुई अच्छी तरह से तो रहीं?'

पार्वती सिर नीचा किये रही।

'चौधरी महाशय अच्छी तरह से हैं? लड़के-लड़की सब अच्छी तरह से हैं?'

'सब अच्छी तरह से हैं।' पार्वती ने एक बार मुख की ओर देखा, पर एक भी बात पूछ नहीं सकी वे कैसे हैं, क्या करते है, इत्यादि वह कुछ भी पूछ नहीं सकी।

देवदास ने पूछा—'अभी तो यहां कुछ दिन रहना होगा?'

'हां।'

'तब फिर क्या'—कहकर देवदास चले।

श्राद्ध समाप्त हो गया। उसका वर्णन करने में बहुत कुछ लिखना पड़ेगा, इसी से उसके कहने की आवश्यकता नही है। श्राद्ध के दूसरे दिन पार्वती ने धर्मदास को अकेले में बुलाकर उसके हाथ में एक सोने का हार देकर कहा—'धर्म, अपनी कन्या को यह पहना देना।'

धर्मदास ने मुंह की ओर देखकर आर्द्र नेत्र और करूण कंठ-स्वर से कहा—'अहा! तुमको बहुत दिनों से नहीं देखा, सब कुशल तो है?'

'सब कुशल है। तुम्हारी लड़की-लड़के तो अच्छे हैं?'

'हां पत्तो, सब अच्छे हैं।'

'तुम अच्छे हो?'

इस बार दीर्घ निःश्वास खींचकर धर्मदास ने कहा—'क्या अच्छा हूं? अब यह जीवन भार-सा मालूम होता है—मालिक ही चले गये...।' धर्मदास शोक के आवेग में कुछ और कहना चाहता था, किन्तु पार्वती ने बाधा दी। इस सब बातों को सुनने के लिए उसने हार नहीं दिया था।

पार्वती ने कहा—'यह क्यों धर्मदास, तुम्हारे जाने से देव दादा को कौन देखेगा?'

धर्मदास ने माथा ठोककर कहा—'जब छोटे लड़के थे, तब देखने की जरूरत थी। अब नहीं देखने से ही अच्छा है।'

पार्वती ने और पास आकर कहा—'धर्म, एक बात सच-सच बताओगें?'

'क्यों नही बताऊंगा, पत्तो?'

'तब सच-सच कहो कि देवदास इस समय अभी क्या कर रहे हैं?'

'मेरा सिर कर रहे हैं, और क्या करेंगे?"

'धर्मदास, साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते?'

धर्मदास ने फिर सिर पीटकर कहा—'साफ़-साफ़ क्या कहूं? भला यह कुछ कहने की बात है। अब मालिक नही है। देवदास के हाथ अगाध रूपया लग गया है, अब क्या रक्षा हो सकेगी?'

पार्वती का मुख एकबारगी मलिन पड़ गया। उसने आभास और संकेत से कुछ सुना था। दुखित होकर पूछा—'क्या कहते हो धर्मदास?' वह मनोरमा के पत्रों से जब कोई समाचार पाती थी तो उस पर विश्वास नहीं करती थी। धर्मदास सिर नीचा करके कहने लगा—'खाना नहीं, पीना नहीं, सोना नहीं, केवल बोतल पर बोतल शराब, तीन-तीन, चार-चार दिन तक न जाने कहां रहते हैं, कुछ पता नहीं। कितने ही रूपये फूंक दिये। सुनता हूं, कई हजार रूपये का गहना बनवा दिया है।'

पार्वती सिर से पैर तक सिहर उठी—'धर्मदास, यह क्या कहते हो ? क्या यह सब सच है ?'

धर्मदास ने अपने मन में ही कहा—शायद तुम्हारी बात सुनें, तुम एक बार मनाकर देखो। कैसा शरीर था, कैसा हो गया ? ऐसे असंयम और अत्याचार से कितने दिन जियेंगे ? किससे यह बात कहूं मां, बाप, भाई से ऐसी बात नहीं कही जातीं।—धर्मदास ने फिर सिर ठोककर कहा—'इच्छा होती है, जहर खाकर मर जाऊं पत्तो, अब आगे जीने की साध नहीं है।'

पार्वती उठकर चली गयी। नारायण बाबू के मरने का समाचार पाकर वह चली आयी थी। सोचा था, इस विपत्ति के समय देवदास के पास जाना आवश्यक है। किन्तु उसके परमप्रिय देवदास की यह अवस्था है ! कितनी ही बातें उसके मन में उठने लगी, जिनका अन्त नहीं। जितना धिक्कार उसने देवदास को दिया, उसका हजार गुना अपने को दिया। हजार बार उसके मन में उठा कि क्या उसके होने पर वह ऐसे बिगड़ सकते ? पहले ही उसने अपने पांव में आप कुठार मारा, किन्तु वह कुठार उसके सिर पर गिरा। उसके देव दादा ऐसे हो रहे हैं।—इस प्रकार नष्ट हो रहे हैं, और वह दूसरे की गृहस्थी के बनाने में लगी हुई हैं, दूसरे को अपना समझकर नित्य अन्न बांट रही हैं, और उसके सर्वस्व—आज भूखों मर रहे है ! पार्वती ने प्रतिज्ञा की आज वह देवदास के पांव में माथा पटककर प्राण त्याग देगी।

अभी भी संध्या होने में कुछ देर है। पार्वती ने देवदास के कमरे में प्रवेश किया। देवदास चारपाई पर बैठे हुए हिसाब देख रहे थे. इधर देखा—पार्वती धीरे-धीरे किवाड़ बन्द कर फर्श पर बैठ गयी। देवदास ने सिर उठाकर, हंसकर उसकी ओर देखा, उनका मुख विषण्ण, किन्तु शान्त था। हठात कौतुक से पूछा—'यदि मैं अपवाद उठाऊं तो ?'

पार्वती ने अपनी सलज्ज, श्याम कमलवत दोनों आंखों से एक बार उनकी ओर देखा, फिर नजर नीची कर ली। *देवदास की इस बात ने भली-भांति जता दिया कि वह बात* उनके हृदय में आजन्म के लिए अंकित हो गयी है। वह देवदास से कितनी ही बातें कहने के लिए आयी थी, किन्तु सब भूल गयी, एक भी बात न कह सकी। देवदास ने फिर हंसकर कहा—'समझता हूं, समझता हूं ! लज्जा लगती है न ?' तब भी पार्वती कोई बात न कह सकी। देवदास ने कहा—'इसमें लज्जा की क्या बात है ? हम तुम दोनों ही लड़कपन में बराबर एक साथ उठते-बैठते और खेलते थे। इसी बीच में एक गड़बड़ी हो गई। क्रोध करके जो तुम्हारे जी में आया कहा, और मैंने भी तुम्हारे सिर में यह दाग दे दिया। कैसा हुआ ?'

देवदास की बात में श्लेष व विद्रूप का लेश भी नहीं था; हंसते-ही-हंसते पहले की बीती दुख की कहानी कह सुनायी। पार्वती का हृदय भी सुनकर फटने लगा। मुंह में आंचल देकर एक गहरी सांस खींचकर मन-ही-मन कहा—देव दादा, यह दाग ही मेरे ढाढस का कारण है, एकमात्र यही मेरा साथी है। तुम मुझे प्यार करते थे, इसी से दया करके, हम लोगों के बाल्य-इतिहास को इस रूप में, इस ललाट में अंकित कर दिया है। इससे मुझे लज्जा नहीं, कलंक नहीं, यह मेरे गौरव का चिह्न है।

'पत्तो !'

मुख से आंचल न हटाकर ही पार्वती ने कहा—'*क्या ?*'

'तुम्हारे ऊपर मुझे बड़ा क्रोध आता है।'

इस बार देवदास का कंठ-स्वर विकृत हो गया—'बाबूजी नहीं हैं, आज मेरे विपत्ति का समय है, किन्तु तुम्हारे रहने से कोई चिन्ता न रहती ! बड़ी भाभी को जानती ही हो, भाई साहब का स्वभाव भी तुमसे कुछ छिपा नहीं है; और तुम्हीं सोचो, मां को इस समय लेकर मैं क्या करूं, और मेरा कुछ ठिकाना ही नहीं कि क्या होगा ? तुम्हारे रहने से मैं सब-कुछ तुम्हारे हाथ में सौंपकर निश्चिन्त हो जाता—'क्यों पत्तो ?'

पार्वती फफककर रो पड़ी। देवदास ने कहा—'रोती हो क्या ? अब और कुछ नहीं कहूंगा।'

पार्वती ने आंख पोंछते-पोंछते कहा—'नहीं, कहो !'

देवदास ने कंठ-स्वर को ठीक करके कहा—'पत्तो, अब तो तुम खूब पक्की घरनी हो गयी हो न ?'

घूंघट के भीतर-ही-भीतर होंठ चबाकर, मन-ही-मन उसने कहा—घरनी क्या हुई हूँ ! क्या सेमल का फूल कभी देव-सेवा में लगता है ?

देवदास ने हंसते-हंसते कहा—'बड़ी हंसी आती है ! तुम कितनी छोटी थीं और अब कितनी बड़ी हो गयीं। बड़ा मकान, बड़ी जमींदारी है, बड़े-बड़े लड़की-लड़के हैं और सबसे बड़े चौधरीजी, क्यों पत्तो ?'

चौधरीजी पार्वती के लिए बड़ी हंसी की चीज हैं; उनके ध्यान-मात्र आने से उसे हंसी आ जाती है। इतने कष्ट में भी इसी से उसे हंसी आ गयी। देवदास ने बनावटी गम्भीरता से कहा—'क्या एक उपकार कर सकती हो ?'

पार्वती ने मुख उठाकर कहा—'क्या ?'

'तुम्हारे गांव में कोई अच्छी लड़की मिल सकती है ?'

पार्वती ने खांसकर कहा—'अच्छी लड़की ! क्या करोगे ?'

'मिलने पर विवाह करूंगा। एक बार गृहस्थी बनने की साध होती है।'

पार्वती ने गम्भीरतापूर्वक पूछा—'खूब सुन्दरी न ?'

'हां, तुम्हारी तरह।'

'और खूब शान्त ?'

'नहीं, खूब शान्त से काम नहीं है; वरन् कुछ दुष्ट हो, तुम्हारी तरह मुझसे झगड़ा कर सके।'

पार्वती ने मन-ही-मन कहा—यह तो कोई नहीं कर सकेगी देव दादा, क्योंकि इसके लिए मेरे समान प्रेम चाहिए। प्रकट में कहा—'मैं अभागिन क्या हूँ, मेरे ऐसी न जाने कितनी हजार तुम्हारे पांव की धूलि लेकर अपने को धन्य मानेंगी ?'

देवदास ने मजाक से हंसकर कहा—'क्या अभी एक ऐसी ला सकती हो ?'

'देव दादा, क्या सचमुच विवाह करोगे ?'

'वैसा ही, जैसा मैंने बतलाया है।'

केवल यही खोलकर नहीं कहा कि उसे छोड़ इस संसार में उनके जीवन की कोई सहवासिनी नहीं हो सकती !

'देवदास, एक बात बताओगे ?'

'क्या ?'

पार्वती ने अपने को बहुत संभालकर कहा—'तुमने शराब पीना कैसे सीखा ?'

देवदास ने हंसकर कहा—'पीना भी क्या कहीं सीखना होता है ?'

'यह नहीं तो अभ्यास कैसे किया ?'

'किसने कहा—धर्मदास ने ?'

'कोई भी कहे; क्या यह बात सच है ?'

देवदास ने छिपाया नहीं, कहा—'कुछ है ?'

पार्वती ने कुछ देर स्तब्ध रहने के बाद पूछा—'और कितने हजार रुपये का गहना गढ़ा दिया है ?'

देवदास ने गम्भीरता से कहा—'दिया नहीं है; गढ़ाकर रखा है। तुम लोगी ?'

पार्वती ने हाथ फैलाकर कहा—'दो, यह देखो, मुझ पर एक भी गहना नहीं है।'

'चौधरीजी ने तुम्हें नहीं दिया ?'

'दिया था; पर मैंने सब उनकी बड़ी लड़की को दे दिया।'

'जान पड़ता है अब तुम्हें जरूरत नहीं है।'

पार्वती ने मुख हिलाकर सिर नीचा कर लिया। देवदास की आँखों में आंसू भर आया। देवदास ने मन-ही-मन सोचा कि साधारण दुःख से स्त्रियाँ अपने गहने खोलकर नहीं देती। किन्तु आँख से निकलते हुए आंसुओं को रोककर धीरे-धीरे कहा—'झूठी बात है; किसी स्त्री से मैंने प्रेम नहीं किया। किसी को मैंने गहना नहीं दिया।'

पार्वती ने दीर्घ निःश्वास फेंककर मन-ही-मन कहा—ऐसा ही मुझे भी विश्वास है।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। फिर पार्वती ने कहा—'किन्तु प्रतिज्ञा करो कि अब शराब नहीं पीऊँगा।'

'यह नहीं कर सकता। तुम क्या प्रतिज्ञा कर सकती हो कि तुम मुझे भुला दोगी ?'

पार्वती ने कुछ नहीं कहा। इसी समय बाहर से संध्या की शंख-ध्वनि हुई। देवदास ने खिड़की से बाहर देखकर कहा—'संध्या हो गयी है, अब घर जाओ पत्तो !'

'मैं नहीं जाऊंगी, तुम प्रतिज्ञा करो।'

'क्यों, मैं नहीं कर सकता।'

'क्यों नहीं कर सकते ?'

'क्या सभी सब कामों को कर सकते हैं ?'

'इच्छा करने से अवश्य कर सकते हैं।'

'तुम मेरे साथ आज रात में भाग सकती हो ?

पार्वती का हृदय-स्पन्दन सहसा बन्द हो गया। अनजाने में धीरे से निकल गया—'यह क्या हो सकता है ?'

देवदास ने जरा चारपाई के ऊपर बैठकर कहा—'पार्वती, किवाड़ खोल दो।'

देवदास खड़े होकर धीमे भाव से कहने लगे—'पत्तो, क्या जोर देकर प्रतिज्ञा कराना अच्छा है ? उससे क्या कोई विशेष लाभ है ? आज की हुई प्रतिज्ञा कल शायद न रहेगी। क्यों मुझे झूठा बनाती हो ?'

और भी कुछ क्षण यों ही निःशब्द बीत गये। इसी समय न जाने किस घर में टन-टन करके नौ बजा। देवदास भाव से कहने लगे—'पत्तो, द्वार खोल दो।'

पार्वती ने कुछ नहीं कहा।

'जा पत्तो!'

'मैं किसी तरह नहीं जाऊंगी।'—कहकर पार्वती अकस्मात पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बहुत देर तक फूट-फूटकर रोती रही। कमरे के भीतर इस समय गाढ़ा अन्धकार था, कुछ दिखायी नहीं पड़ता था। देवदास ने केवल अनुमान से समझा कि पार्वती जमीन में पड़ी रो रही है, धीरे-धीरे बुलाया—'पत्तो!'

पार्वती ने रोते-रोते उत्तर दिया—'देव दादा, मुझे बहुत कष्ट हो रहा है।' देवदास पास खिसक आये। उनकी आंखों में जल भरा था, किन्तु स्वर विकृत नहीं हुआ। कहा—'यह क्या, मैं नहीं जानता हूं पत्तो!'

'देव दादा, मैं मर भी जाऊंगी, किन्तु कभी तुम्हारी सेवा नहीं कर सकी, यह मेरे आजन्म की साध है।'

अंधेरे में आंख पोंछते-पोंछते देवदास ने कहा—'वह भी समय आयेगा।'

'तब मेरे साथ चलो। यहाँ पर तुम्हें कोई देखने वाला नहीं है।'

'तुम्हारें मकान पर चलूंगा तो खूब सेवा करोगी?'

'यह मेरे बचपन की ही साध है। हे स्वर्ग के देवता! मेरी इस साध को पूर्ण करो। इसके बाद यदि मर भी जाऊं तो भी दुख नही है।'

इस बार देवदास की आंखों में पानी भर आया। पार्वती ने फिर कहा—'देवदास, मेरे यहां चलो!'

देवदास ने आंखें पोंछकर कहा—'अच्छा चलूंगा।'

'मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो कि चलोगे।'

देवदास ने अनुमान से पार्वती का पांव छूकर कहा—'यह बात मैं कभी नहीं भूलूंगा। अगर मेरे जाने से ही तुम्हारा दुख दूर हो, तो मैं अवश्य आऊंगा। मरने के पहले भी मुझे यह बात याद रहेगी।'

13

पिता की मृत्यु के बाद धीरे-धीरे छः महीने बीत गये। देवदास घर में एकदम ऊब गये। सुख नहीं, शान्ति नहीं, उस पर एक ही तरह की जीवनचर्या से मन बिल्कुल विरक्त हो चला। तिस पर पार्वती की चिन्ता से चित और भी अव्यवस्थित हो रहा था; फिर आजकल तो उसके एक-एक काम, एक-एक हावभाव के चित्र हर समय आंखों के सामने नाचा करते थे। उस पर भाई-भौजाई के उदासीन व्यवहारों ने देवदास के सन्ताप को और भी दूना कर दिया था।

माता की अवस्था भी देवदास की ही तरह थी। स्वामी की मृत्यु के साथ-ही-साथ उनके सारे सुखों का लोप हो गया। पराधीन होकर इस मकान में रहना उनके लिए भी धीरे-धीरे असह्य होने लगा। आज कई दिनों से वे काशीवास का विचार कर रही हैं। केवलं देवदास के अविवाहित होने के कारण वे अभी नहीं जा सकती हैं। जब-तब यही

कहती हैं कि, 'देवदास, अब तुम विवाह कर लो, मेरी साध पूरी हो जाय।' किन्तु यह कब सम्भव था! एक तो पिता की अभी वर्षी नहीं हुई, दूसरे अभी कोई इच्छानुकूल कन्या नहीं मिली। इसी से माता आजकल कभी-कभी दुखित हो जाया करती हैं कि यदि उस समय पार्वती का विवाह हो गया होता, तो अच्छा होता। एक दिन उन्होंने देवदास को बुलाकर कहा—'अब मैं यहा नहीं रहना चाहती, कुछ दिनों के लिए काशी जाके रहने की इच्छा है।' देवदास की भी यही इच्छा थी, कहा—'मेरी भी यही सम्मति है। छः महीने के बाद लौट आना।'

'ऐसा ही करो। फिर लौट के आने पर उनकी क्रिया-कर्म हो जाने के बाद तुम्हारा विवाह कर, तुम्हें गृहस्थ बना देख, मैं फिर जाके काशीवास करूंगी।'

देवदास सहमत होकर माता को कुछ दिनों के लिए काशी पहुंचाकर कलकत्ता चले गये। कलकत्ता आकर देवदास ने तीन-चार दिनों तक चुन्नीलाल को ढूंढ़ा। वे नहीं मिले, उसे मैस को छोड़कर किसी दूसरी जगह चले गये थे। एक दिन संध्या के समय देवदास को चन्द्रमुखी की बात याद आयी। एक बार देख आना अच्छा होगा। इतने दिनों तक कुछ भी स्मरण नहीं आया था। इससे कुछ लज्जा-सी मालूम हुई। एक किराये की गाड़ी करके चले। कुछ संध्या हो जाने पर चन्द्रमुखी के मकान के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई। बहुत देर तक बुलाने-चिल्लाने के बाद भीतर से स्त्री के कंठ-स्वर में उत्तर मिला—'यहां नहीं है।' सामने एक बिजली की रोशनी का खम्भा खड़ा था, देवदास ने उसके पास होकर कहा—'कह सकती हो, वह कहां गयी है?' खिड़की खोलकर उसने कुछ क्षण देखने के बाद कहा—'क्या आप देवदास हैं?'

'हां।'

'खड़े रहिये—दरवाजा खोलती हूं।' दरवाजा खोलकर उसने कहा—'आइये!' कंठ-स्वर कुछ परिचित-सा जान पड़ा, किन्तु फिर भी पहचान नहीं सके। थोड़ा अन्धकार भी हो चला था। सन्देह से कहा—'चन्द्रमुखी कहां रहती है, कुछ कह सकती हो?'

स्त्री ने मीठी हंसी हंसकर कहा—'हां, तुम ऊपर चलो।' इस बार देवदास ने पहचान लिया—'हैं! तुम्हीं हो?'

'हां, मैं ही हूं। देवदास, मुझे एकदम भूल गये?'

ऊपर जाकर देवदास ने देखा, चन्द्रमुखी एक काले किनारे की मैली धोती पहने है, हाथ में केवल दो कड़ों को छोड़, शरीर पर कोई आभूषण नहीं है, सिर के केश इधर-उधर बिखरे हुए हैं; विस्मित होकर देवदास ने पूछा—'तुम्हीं?' अच्छी तरह से देखा; चन्द्रमुखी पहले की अपेक्षा बहुत दुबली हो गयी है।

देवदास ने पूछा—'तुम क्या बीमार थीं?'

'कोई शारीरिक बीमारी नहीं थी, तुम अच्छी तरह से बैठो।'

देवदास ने चारपाई पर बैठकर देखा, घर में पहले की अपेक्षा आकाश-जमीन का अन्तर हो गया है। गृहस्वामिनी की भांति उसकी दुर्दशा की भी सीमा नहीं थी। एक भी सामान नहीं था। अलमारी, टेबिल, कुर्सी आदि सबके स्थान खाली पड़े है। केवल एक शैया पड़ी थी; चादर मैली थी। दीवाल पर से चित्र हटा दिये गये थे। लोहे की कांटियां

अब भी गड़ी हुई थीं। दो-एक लाल फीते भी इधर-उधर लटके हुए थे। पहले की वह घड़ी भी ब्राकेट पर रखी हुई थी, किन्तु निःशब्द थी। आस-पास मकड़ों ने अपनी इच्छानुकूल जाला बुन रखा था। एक कोने में एक तेल का दीया धीमी-धीमी रोशनी फैला रहा था, उसी के सहारे से देवदास ने घर की इस नयी सजावट को देखा। कुछ विस्मित और कुछ क्षुब्ध होकर कहा—'दुर्दशा ! तुमसे किसने कहा ? मेरा तो भाग्य प्रसन्न हुआ है।'

देवदास समझ नही सके, कहा—'तुम्हारे सब गहने क्या हुए ?'

'बेच डाले।'

'माल-असबाब ?'

'वह भी बेच डाला।'

'घर की तस्वीरें भी बेच डाली ?'

इस बार चन्द्रमुखी ने हंसकर सामने के एक मकान को दिखाकर कहा—'उस मकान के मालिक के हाथ बेच दी।'

देवदास ने कुछ देर तक उसके मुंह की ओर देखकर कहा—'चुन्नी बाबू कहां है ?'

'नही कह सकती। दो महीने हुए, लड़-झगड़कर चले गये, फिर तब से नही आये।'

देवदास को अब और आश्चर्य हुआ। पूछा—'झगड़ा क्यों हुआ ?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'क्या झगडा नही होता ?'

'होता है, पर क्यो ?'

'दलाली करने आये थे, इसी से हटा दिया।'

'किसकी दलाली ?'

चन्द्रमुखी ने हंसकर कहा—'पट्टू की।' फिर कहा—'तुम नही समझते ? एक बड़े आदमी को पकड़ लाये थे। महीने में दो सौ रूपये, एक सेट गहना और दरवाजे के सामने रहने को एक सिपाही मिलता था, समझे !'

देवदास ने सब समझने के बाद हंसकर कहा—'वह सब एक भी तो नही देखता हूं।'

'रहते तब न देखते ! मैंने उन लोगों को हटा दिया।'

'उन लोगों का अपराध ?'

'उन लोगों का अपराध कुछ ज्यादा नहीं था, पर मुझे अच्छा नही लगा।'

देवदास ने बहुत सोचकर कहा—'उसी दिन से यहां और कोई नही आया ?'

'नही। उस दिन से क्यो ? तुम्हारें जाने के बाद से ही यहां कोई नही आता। सिर्फ बीच-बीच में चुन्नीलाल आ जाते थे, किन्तु दो मास से वे भी नही आते।'

देवदास बिछौने के ऊपर लेट गये। दूसरी ओर देखने लगे; बहुत देर तक चुप रहने के बाद धीरे से कहा—'चन्द्रमुखी, तब दुकानदारी सब उठा दी ?'

'हां, दिवाला निकाल दिया।'

देवदास ने इस बात का उत्तर न देकर कहा—'लेकिन रोटी-पानी कैसे चलेगा ?'

'इसीलिए तो जो कुछ गहना-पत्तर था, बेच दिया।'

'उसमें अब कितना बचा है ?'

'ज्यादा नहीं, कोई आठ-नौ सौ रूपये होंगे। उन्हें एक मोदी के पास रख दिया है, वह मुझे महीने में बीस रूपये देता है।'

'बीस रूपये से तो पहले तुम्हारा काम नहीं चलता था?'

'नहीं, आज भी अच्छी तरह से नहीं चलता है। तीन महीने से मकान का किराया बाकी है; इसी से इच्छा होती है कि इन दोनों कड़ों को बेचकर, सब पटाकर और कहीं चली जाऊं।'

'कहां जाओगी?'

'यह अभी निश्चय नहीं किया है। किसी सस्ते देश, गवंई-गाँव में जाऊंगी जिसमें बीस रूपये महीने में निर्वाह हो जाय।'

'इतने दिन से क्यों नहीं गयीं? अगर सचमुच ही तुम्हारा और कोई मतलब नहीं था तो फिर इतने दिन रहकर व्यर्थ कर्ज़ क्यों बढ़ाया?'

चन्द्रमुखी सिर नीचा करके कुछ सोचने लगी। उसके जीवन-भर में बातचीत करने का यह पहला अवसर है। देवदास ने पूछा—चुप क्यों हो?'

चन्द्रमुखी ने शैया के एक ओर संकुचित भाव से बैठकर धीरे-धीरे कहा—'क्रोध मत करना; जाने के पहले सोचा था कि तुमसे भेंट कर लेना अच्छा होगा। आशा करती थी कि एक बार तुम आओगे। आज तुम आये हो, अब कल ही जाने का उद्योग करूंगी। पर कहां जाऊं, कुछ कह सकते हो?'

देवदास विस्मित होकर उठ बैठे; कहा—'सिर्फ मुझे देखने की आशा से रूकी थी। लेकिन क्यों?'

'एक ख्याल। तुम मुझसे बहुत घृणा करते थे। इतनी घृणा किसी ने मुझसे कभी नहीं की, शायद इसीलिए। तुम्हें अब याद है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती, पर मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जिस दिन तुम पहले-पहल यहां पर आये थे, उसी दिन मेरी नजर तुम पर पड़ी। तुम धनी की सन्तान हो, यह मैं जानती थी; पर धन की आशा से मैं तुम्हारी ओर नहीं खिची थी। तुम्हारे पहले कितने ही लोग यहां पर आये और गये, पर किसी में इतना तेज नहीं पाया। तुमने आने के साथ ही मुझे घायल किया; एक आयाचित, उपयुक्त, परन्तु अनुचित रूढ़ व्यवहार आरम्भ किया, घृणा से मुंह फेर लिया और अन्त में तमाशे की तरह कुछ देकर चले गये। ये सब बातें क्या तुम्हारे ध्यान में आती हैं?'

देवदास चुप रहे, चन्द्रमुखी फिर कहने लगी—'उसी दिन से मेरी तुम्हारे ऊपर नजर पड़ी। मैं न तुमसे प्रेम करती और न घृणा करती थी, एक नयी चीज को देखकर जैसे मन में हमेशा ध्यान बना रहता है, तुमको भी देखकर उसी तरह किसी भांति नहीं भूल सकी। तुम्हारे आने पर बड़े भय और सतर्क के साथ रहती थी, पर न आने से कुछ अच्छा भी नहीं लगता था। फिर जाने कैसा मतिभम्र हुआ कि इन दोनों आंखों को सब ही चीजें एक-सी दीखने लगीं। मैं पहले की अपेक्षा बिल्कुल बदल गयी, जो पहले थीं वह अब नहीं रही। फिर तुमने शराब पीना शुरू किया; शराब से मुझे बड़ी घृणा है। किसी के मतवाला होने पर मुझे उस पर बड़ा क्रोध आता है। पर तुम्हारे मतवाला होने से क्रोध नहीं होता था, बल्कि बड़ा दुख होता था।'

यह कहकर चन्द्रमुखी ने देवदास के पांव पर हाथ रखकर डबडबायी हुई आंखों से

कहा—'मैं बहुत अधम हूं, मेरे अपराधों पर ध्यान नहीं देना। तुम जितनी ही बातें कहते थे और घृणा करते थे, मैं उतनी ही तुम्हारे पास आना चाहती थी।' अन्त में सो जाने पर—'रहने दो, ये बाते नहीं कहूंगी, नहीं तो क्रोध कर बैठोगे।' देवदास ने कुछ नहीं कहा, नयी तरह बातचीत उसे कुछ वेदना पहुंचा रही थी। चन्द्रमुखी ने छिपा के आंख पोंछकर कहा—'एक दिन तुमने कहा कि हम लोग कितना सहन करती हैं, लांछना, अपमान, जघन्य अत्याचार, उपद्रव की बातें! उसी दिन से मुझे बड़ा अभिमान हुआ—'मैंने सब बन्द कर दिया।'

देवदास ने बैठकर पूछा—'लेकिन यह जीवन कैसे कटेगा?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'वह तो पहले ही कह चुकी।'

'और सोचो, यदि उसने तुम्हारा सब रूपया दाब रखा तो?'

चन्द्रमुखी इससे भयभीत नहीं हुई। शान्त-सहज भाव से कहा—'आश्चर्य नहीं, किन्तु इसे भी मैंने सोच रखा है कि विपत्ति पड़ने पर तुमसे कुछ भीख मांग लूंगी।'

देवदास ने सोचकर कहा—'वह पीछे लेना। अभी और कहीं जाने का उद्योग करो।'

'कल ही करूंगी। कड़ा बेचकर एक बार मोदी से भेंट करूंगी।'

देवदास ने पॉकेट से सौ-सौ रूपये के पांच नोट निकलाकर तकिये के नीचे रखकर कहा—'कड़ा बेचो, सिर्फ मोदी के साथ भेंट कर लेना। पर जाओगी कहां, किसी तीर्थ-स्थान में?'

नहीं देवदास, तीर्थ और धर्म के ऊपर मेरी अधिक श्रद्धा नहीं है। कलकत्ता से अधिक दूर नहीं जाऊंगी। आस-ही-पास के किसी गांव में जाकर रहूंगी।'

'क्या किसी अच्छे घर में दासी का काम करोगी?'

चन्द्रमुखी की आंखों में फिर आंसू भर आये। पोंछकर कहा—'इच्छा नहीं होती। स्वाधीन-भाव से स्वच्छन्द होकर रहूंगी। क्यों दुख करने जाऊं? शारीरिक दुख कभी उठाया नहीं है, अब भी नहीं उठा सकूंगी। और अधिक खींचातानी करने से छिन्न-भिन्न हो जाऊंगी।'

देवदास ने विषण्ण मुख से कुछ हंसकर कहा—'पर शहर के पास रहने से प्रलोभन में पड़ सकती हो। मनुष्य के मन का विश्वास नहीं।'

इस बार चन्द्रमुखी का मुख खिल उठा। हंसकर कहा—'यह बात सच है, मनुष्य का विश्वास नहीं। पर मैं प्रलोभन में नहीं पडूँगी। स्त्रियों में लोभ अधिक है—यह मानती हूं, पर जिस चीज का लोभ रहता है जब उसे ही इच्छापूर्वक छोड़ दिया है, तो फिर मेरे लिए कोई भय नही है। एकाएक अगर किसी झोंक में आकर छोड़ती, तब सावधान होना आवश्यक था, लेकिन इतने समय में एक दिन भी तो पछतावा नहीं हुआ, मैं बड़े सुख से हूं।'

देवदास ने सिर हिलाकर कहा—'स्त्रियों का मन बड़ा चंचल, बड़ा अविश्वासी होता है।'

इस बार चन्द्रमुखी कुछ खिसककर एकदम पास में आकर बैठी, हाथ पकड़कर कहा—'देवदास!'

देवदास उसके मुंह की ओर देखते रहे। इस बार वे नहीं कह सके कि मुझे मत

छुओ।

चन्द्रमुखी ने स्नेह से चक्षु विस्फारित कर, कुछ कम्पित कंठ से उनके हाथों को अपनी गोद में खींचकर कहा—'आज अन्तिम दिन है, आज क्रोध मत करना। एक बात तुमसे पूछने की बड़ी लालसा है।'—यह कहकर कुछ देर देवदास के मुंह की ओर देखकर कहा—'पार्वती ने क्या तुम्हें बड़ी गहरी चोट पहुंचायी है?'

देवदास ने भ्रू-कुंचित कर कहा—'यह क्यों पूछती हो?'

चन्द्रमुखी विचलित नहीं हुई। शान्त और दृढ़ स्वर से कहा—'मुझे काम है। मैं सच कहती हूं, तुम्हें दुख पहुंचने से मुझे भी दुख होता है। इसे छोड़ शायद मैं बहुत-सी बातें जानती हूं। बीच-बीच में नशे के जोर में तुम्हारे मुंह से अनेक ऐसी बातें सुनी है। फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि पार्वती ने तुम्हें ठगा है; वरन् मन में उठता है कि तुमने अपने-आपको ठगा है। देवदास, मैं तुमसे उम्र में बड़ी हूं, इस संसार में बहुत-कुछ देखा सुना है। मेरे मन में क्या बात उठती है, जानते हो? मैं दृढ़ चित्त से कहती हूं कि इसमें तुम्हारी ही भूल है। मन में आता है, चंचल और अस्थिर-चित्त कहकर स्त्रियों की जितनी निन्दा की जाती है, वे उतनी निन्दा के योग्य नहीं है। निन्दा करने वाले भी तुम्हीं हो, प्रशंसा करने वाले भी तुम्हीं हो। तुम लोगों के मन में जो कुछ आता है, सहज ही कह देते हो। लेकिन वे ऐसा नहीं कर सकतीं। अपने मन की बात नहीं कर सकतीं। प्रकट करने पर भी सब लोग अच्छी तरह नहीं समझते; क्योंकि बहुत अस्पष्ट होता है। तुम लोगों के तर्क के सामने वह दब जाता है। फिर वही निन्दा के मुंह पर स्पष्ट और स्पष्टतर हो उठती है।'

चन्द्रमुखी ने थोड़ा ठहरकर अपने कंठ-स्वर को और परिष्कृत करके कहा—'इस जीवन में प्रेम का व्यवसाय बहुत दिनों तक किया है, लेकिन प्रेम केवल एक बार किया है। उस प्रेम का मूल्य बहुत बड़ा है, उससे अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। जानते हो, प्रेम एक वस्तु है और रूप का मोह दूसरी। इन दोनों में बड़ा गोलमाल है और पुरूष ही अधिक गोलमाल करते हैं। रूप का मोह तुम लोगों की अपेक्षा हम लोगों में बहुत कम है, इसी से हम लोग तुम लोगों की तरह एकबारगी उन्मत्त नहीं हो उठतीं। तुम लोग जब आकर अपना प्रेम दिखलाते हो, अनेकों प्रकार के भाव प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप हो रहती हैं। कितनी ही बार तुम लोगों के मन को क्लेश देने में लज्जा मालूम होती हैं, दुख और संकोच होता है। मुंह देखने से अगर घृणा भी होती है, तब भी अक्सर लज्जा से यह नहीं कह सकती कि मैं तुमको प्यार नहीं करती। फिर एक बाह्य प्रणय का अभिनय आरम्भ होता है; किसी दिन जब उसका अन्त हो जाता है तो पुरूष अस्थिर होकर कहते है कि कितनी विश्वासघातिनी है। तब सब लोग उसी बात को सुनते हैं और उसी पर विश्वास करने लग जाते हैं। हम लोग तब भी चुप रहती हैं। मन में कितना ही क्लेश होता है, किन्तु उसे कौन देखने जाता है?' देवदास ने कुछ नहीं कहा। वह भी बहुत देर तक निःशब्द मुंह की ओर देखती रही फिर कहा—'यदि कुछ होता है तो शायद थोड़ी-बहुत ममता उत्पन्न होती है, स्त्रियां मन में सोचती हैं कि यही प्रेम है। शान्त-धीर भाव से गृहस्थी का काम-काज करती हैं। दुख के समय प्राणपण से सहायता करती हैं। जब तुम लोग खूब प्रशंसा करते हो, सब लोगों के मुख से कितनी ही बार धन्य-धन्य निकलता है, लेकन

उस समय तक उसका प्रेम का वर्ण-परिचय भी नहीं आरम्भ होता है। इसके बाद अगर किसी अशुभ मुहूर्त में अपने हृदय की असह्य वेदना के कारण छटपटाती हुई द्वार के बाहर आकर खड़ी होती हैं (यह कहकर उसने देवदास के मुख की ओर तीव्र दृष्टिपात करके कहा) तो तुम लोग चिल्लाकर कह उठते हो—'कलंकिनी ! छिः ! छिः !' अकस्मात देवदास चन्द्रमुखी के मुंह को हाथ से दबाकर कह उठे—'चन्द्रमुखी, यह क्या ?' चन्द्रमुखी ने धीरे-धीरे हाथ हटाकर कहा—'डरो नहीं देवदास, मैं तुम्हारी पार्वती की बात नहीं कहती हूं।'

यह कहकर वह चुप हो रही। देवदास ने कुछ क्षण चुप रहकर अन्यमनस्क होकर कहा—'किन्तु कर्त्तव्य है, धर्म-अधर्म तो है ?' चन्द्रमुखी ने कहा—'हां, वह तो है, और इसीलिए देवदास से वह सच्चा प्रेम करती और उसे सहन भी करती है; आन्तरिक प्रेम से जो सुख और तृप्ति मिलती है, उसे और बढ़ाने के लिए वह घर में अशान्ति नहीं लाना चाहती। पर देवदास, मैं सच कहती हूं, पार्वती ने तुम्हें कुछ भी नहीं ठगा है, तुम्हीं ने अपने-आपको ठगा है। आज इस बात को समझने की शक्ति तुममे नहीं है, यह बात मैं जानती हूं। अगर कभी समय आयेगा तो तुम देखोगे कि मैं सच कहती थी।' देवदास की दोनों आंखों में जल भर आया। वे दुखी होकर सोचने लगे कि क्या चन्द्रमुखी की बातें सच है ? आंखों के आंसूओं को चन्द्रमुखी ने देखा, किन्तु पोंछने की चेष्टा नहीं की। मन-ही-मन कहने लगी—तुम्हें मैंने अनेकों रूप में देखा है। इससे तुम्हारे मन की गति को मैं भली-भांति जानती हूं। साधारण पुरूषों की भांति तुम मांगकर प्रेम प्रकाशित नहीं कर सकते। तब रूप की बात—रूप को कौन नहीं चाहता ? किन्तु इसीलिए तुम अपने इतने तेज का, रूप के पांव में आत्म-विसर्जन कर दोगे, यह बात विश्वास में नहीं आती। पार्वती है तो बड़ी रूपवती, लेकिन फिर भी यही विश्वास होता है कि पहले उसी ने प्रेम का द्वार खोला, पहले उसी ने प्रेमालाप प्रारम्भ किया।

मन-ही-मन कहते-कहते सहसा उसके मुख से अस्फुट स्वर से बाहर निकल पड़ा—'अपने को देखकर यह समझती हूं कि वह तुमको कितना प्यार करती होगी।'

देवदास ने चटपट बैठकर कहा—'क्या कहती हो ?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'कुछ नहीं। कहती थी कि वह तुम्हारा रूप देखकर नहीं भूल सकती। तुम्हारे रूप है, लेकिन उसमें भूल नहीं होती। इस तीव्र-रूक्ष रूप पर सबकी दृष्टि नहीं पड़ती। किन्तु जिसकी पड़ती है, उसकी दृष्टि फिर नहीं हट सकती।

यह कहकर एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—'तुममें न जाने कैसा एक आकर्षण है कि उसे जान सकता है, जिसने तुम्हें प्यार किया है। इस स्वर्ग के पाने की इच्छा करके फिर कौन मुड़ सकता है, ऐसी स्त्री इस पृथ्वी पर कौन है ?'

और कुछ क्षण नीरव रहने के बाद उसने मुख की ओर देखकर कहा—यह रूप सिर्फ चार दिन की चांदनी है। देखते-देखते ही इसका अन्त हो जाता है और चिता के साथ अग्नि में भस्म होकर राख हो जाता है।'

देवदास ने विह्वल दृष्टि से चन्द्रमुखी के मुख की ओर देखकर कहा—'आज तुम यह सब क्या बक रही हो ?'

चन्द्रमुखी ने मधुर हंसी हंसकर कहा—'इससे बढ़कर और कोई मन को उंबाने वाली

बात नहीं होती देवदास, कि जिसे हम प्यार न करें वही बलपूर्वक प्रेम की बातें सुनाए। लेकिन मैं यह सिर्फ पार्वती के लिए वकालत करती हूं, अपने लिए नहीं।'

देवदास ने चलने को उद्दत होकर कहा—'अब मैं चलूंगा।'

'थोड़ा और बैठो। कभी तुमको संज्ञान नहीं पाया था—कभी इस तरह दोनों हाथ पकड़कर बातचीत नहीं कर सकी थी—यह कैसी तृप्ति है!'—कहकर वह हठात् हंस पड़ी।

देवदास ने आश्चर्य से पूछा—हंसीं क्यों?'

'कुछ नहीं। सिर्फ एक पुरानी बात की याद आ गई। आज दस बरस की बात है, जब मैं प्रेम के आवेश में घर छोड़कर चली आई थी, तब मन में होता था कि कितना प्यार करूं—सम्भवतः उस समय प्राण भी दे सकती थी। फिर एक दिन एक तुच्छ गहन के लिए ऐसा झगड़ा हुआ कि फिर किसी का मुंह नहीं देखा, मन को यह कहकर संतोष दिया कि यह मुझे अच्छी तरह प्यार नहीं करते, नहीं तो क्या एक गहना न देते?'

चन्द्रमुखी एक बार फिर अपने मन में हंस उठी। दूसरे ही क्षण शान्त-गम्भीर मुख से धीरे-धीरे कहा—'भाड़ मे जाये ऐसा गहना, तब क्या यह जानती थी कि एक मामूली सिर-दर्द के अच्छा करने मे प्राण तक को देना पड़ेगा। तब मैं सीता और दमयन्ती की व्यथा को नहीं समझती थी, जगाई माधव की कथा पर विश्वास नहीं करती थी। अच्छा देवदास, इस संसार में सभी कुछ सम्भव है न?'

देवदास कुछ उत्तर नही दे सके; हत्बुद्धि की भांति कुछ क्षण देखकर कहा—'मैं जाता हूं।'

'डर क्या है, जरा और बैठो। मै तुमको और भुलावे में नही रखना चाहती—मेरे वे दिन अब बीत गये। अब तुम मुझसे जितनी घृणा करते हो, मैं भी अपने से उतनी ही घृणा करती हूं। लेकिन देवदास, तुम विवाह क्यो नही कर लेते?'

अब मानो देवदास में निःश्वास पडा। थोड़ा हंसकर कहा—'उचित है, पर इच्छा नहीं होती।'

'न होने पर भी करो। स्त्री का मुख देखकर बहुत कुछ शान्ति पाओगे। इसे छोड़ मेरे लिए भी एक राह खुल जायेगी—तुम्हारी गृहस्थी में दासी की भांति रहकर स्वच्छन्द भाव से जीवन व्यतीत करूंगी।'

देवदास ने हसकर कहा—'अच्छा, तब मैं तुम्हे बुला लूंगा।'

चन्द्रमुखी ने मानो उनकी हंसी न देखकर कहा—'देवदास, और एक बात पूछने की इच्छा होती है।'

'क्या?'

'तुमने इतनी देर तक मेरे साथ बातचीत क्यो की?'

'क्या कुछ अनुचित है?'

'यह नही जानती, लेकिन नयी बात है। शराब पीकर ज्ञान न रहने के पहले तुम कभी मुझसे बातचीत नही करते थे।'

देवदास ने उस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर, विषण्ण मुख से कहा—'आजकर शराब नहीं छूता, मेरे पिता की मृत्यु हो गयी है।'

चन्द्रमुखी बहुत देर तक उनके मुख की ओर करूणा-भरे नेत्रों से देखती रही, फिर कहा—'इसके बाद फिर पियोगे क्या ?'

'कह नहीं सकता ।'

चन्द्रमुखी ने उनके दोनों हाथों को कुछ खींचकर अश्रुपूर्ण और व्याकुल स्वर से कहा—'अगर हो सके तो छोड़ देना । ऐसा अमूल्य जीवन-रत्न को नष्ट मत करो !'

देवदास सहसा उठकर खड़े हो गये, कहा—'मैं चलता हूं । तुम जहां जाओ वहां से खबर देना, और अगर कुछ काम हो तो लिखना । मुझसे लज्जा मत करना ।'

चन्द्रमुखी ने प्रणाम करके पद-धूलि लेकर कहा—'आशीर्वाद दो, जिससे मैं सुखी होऊं और एक भीख मांगती हूं, ईश्वर न करे, किन्तु यदि कभी दासी की आवश्यकता हो, तो मुझे स्मरण करना ।'

'अच्छा' कहकर देवदास चले गये । चन्द्रमुखी ने दोनों हाथों से मुख ढांपकर रोते-रोते कहा—'भगवान ! ऐसा करो जिसमें एक बार और दर्शन मिलें ।'

14

दो वर्ष हुए, पार्वती महेन्द्र का विवाह करके निश्चिन्त हुई है । जलदबाला बुद्धिमती और कार्य-पटु है । अब पार्वती के बदले गृहस्थी का बहुत-कुछ काज-काज वही करती है । पार्वती ने अब अपना मन दूसरी ओर लगाया है । आज पांच वर्ष हुए, उसका विवाह हुआ था; किन्तु अभी तक उसके कोई सन्तान नहीं हुई । अपने लड़की-लड़के के न रहने के कारण वह दूसरों के लड़की-लड़कों को बहुत प्यार करती है । गरीब-गुरबे की बात को छोड़िये जिनके पास कुछ रूपये पैसे भी है, उनके पुत्र-पुत्रियों का भी अधिकांश भार वही वहन करती है । इसके अतिरिक्त ठाकुरबाड़ी के काम-काज, साधु-सन्यासियों की सेवा, लंगड़े-लूलों की शुश्रूषा में अपना सारा दिन बिता देती थी । इसका व्यसन स्वामी को लगाकर पार्वती ने एक और अतिथिशाला भी निर्माण किया है । उसमें निराश्रय और असहाय लोग अपनी इच्छा के अनुकूल रह सकते हैं । जमींदार के घर से उन लोगों को खाना-पीना मिलता है । और एक काम पार्वती बहुत छिपाकर करती है, स्वामी को भी नहीं जानने देती । वह ऊँचें घराने के दरिद्र लोगों को गुप्त रूप से रूपये-पैसे से सहायता देती है । यही उसका निजी खर्च है । स्वामी के पास से प्रति मास जो कुछ उसको मिलता है, सब इसी में खर्च कर देती है । किन्तु चाहे जिस तरह से जो कुछ व्यय होता था, वह सदर कचहरी के नायब और गुमाश्ता से नहीं छिपा रहता था । वे लोग आपस में इस विषय पर बक-बक, झक-झक किया करते थे । दासियां लुक-छिपकर सुन आती है कि गृहस्थी का व्यय आजकल पहले की अपेक्षा दूना हो गया है; तहवील खाली पड़ गई, कुछ भी बचने नहीं पाता । गृहस्थी के बेजा खर्च बढ़ने से दास-दासियों को मर्मान्तक पीड़ा होती है । वे लोग ये सब बातें जलदबाला को सुना आती हैं । एक दिन रात में उसने स्वामी से कहा—'तुम क्या इस घर के कोई नहीं हो ?'

महेन्द्र ने कहा—'क्यों, क्या बात है ?'

स्त्री ने कहा—'दास-दासियां जानती हैं और तुम नहीं जानते ? ससुर को तो नई मां प्राणों से बढ़कर हैं, वे तो कुछ कहेंगे ही नहीं, परन्तु तुम्हें तो कहना उचित है !'

महेन्द्र ने बात नहीं समझी, परन्तु उत्सुक हो पूछा—'किसकी बात कहती हो?'

जलदबाला गम्भीर भाव से स्वामी को मन्त्रणा देने लगी—'नयी मां के कोई लड़की-लड़का तो है ही नहीं, फिर उन्हें गृहस्थी से क्यों प्रेम होने लगा, देखते ही नहीं हो सब उड़ाये डालती है?'

जलदबाला ने भ्रू-कुंचित करके कहा—'क्यों कैसे?'

जलदबाला ने कहा—'तुम्हारे आंखें होतीं तो देखते! आजकल गृहस्थी का खर्च दूना हो गया, सदावत, दान-खैरात, अतिथि-फकीर आदि के ऊपर अन्धाधुन्ध व्यय चढ़ रहा है। अच्छा, वे तो अपना परलोक सुधार रही हैं, किन्तु तुम्हारे लड़की-लड़के है? तब वे लोग क्या खायेंगे? अपनी पूंजी बिकवाकर अन्त में भीख मांगोगे क्या?'

महेन्द्र ने शैया पर बैठकर कहा—'तुम किसकी बात कहती हो, मां की?'

जलदबाला ने कहा—'मेरा भाग्य जल गया, जो ये सब बातें तुमसे मुझे कहनी पड़ती है।'

महेन्द्र ने कहा—'इसीलिए तुम मां के नाम नालिश करने आई हो?'

जलदबाला ने क्रोध से कहा—'मुझे नालिश-मुकदमे से काम नहीं, केवल भीतर की बातें जता दीं, नहीं तो मुझी को दोष देते।'

महेन्द्र बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे, फिर कहा—'तुम्हारे बाप के घर तो रोज हांडी भी नहीं चढ़ती, तुम जमींदार के घर के काम को क्या जानोगी?'

इस बार जलदबाला ने भी क्रोध करके कहा—'तुम्हारे मां-बाप के घर कितनी अतिथिशालाएं है, जरा मैं सुनूं तो?'

महेन्द्र ने तर्क-वितर्क नहीं किया, चुपचाप सो गये। सुबह उठकर पार्वती के पास आकर कहा—'कैसा विवाह किया मां, इसको साथ लेकर गृहस्थी चलाना कठिन है। मैं कलकत्ता जाऊंगा।'

पार्वती ने अवाक् होकर कहा—'क्यों?'

'तुम लोगों को कड़ी बातें कहती है, इसलिए मैंने उसका त्याग किया।'

पार्वती कुछ दिन से बड़ी बहू के आचरण देखती आती है, किन्तु उसने उस बात को छिपा के हंसकर कहा—छिः! वह तो बहुत अच्छी लड़की है ऐसा न कहो!' इसके बाद जलदबाला ने एकान्त में बुलाकर पूछा—'बहू! झगड़ा हुआ है क्या?"

सुबह से स्वामी के कलकत्ता जाने की तैयारी देख जलदबाला मन-ही-मन डरती थी, सास की बात सुनकर रोत-रोते कहा—'मेरा दोष नहीं है मां! किन्तु यही दासी सब खरच-वरच की बातें करती है।'

पार्वती ने तब सभी बातें सुनीं और आप ही लज्जित होकर बहू की आंखें पोंछकर कहा—'बहू, तुम ठीक कहती हो। किन्तु मैं वैसी गृहस्थिन नहीं हूं, इसीलिए खर्च की ओर ध्यान नहीं रहा।'

फिर महेन्द्र को बुलाकर कहा—'महेन्द्र, बिना किसी अपराध के क्रोध नहीं करना चाहिए। तुम स्वामी हो, तुम्हारी मंगल-कामना के सामने स्त्री के लिए सब-कुछ तुच्छ है। बहू लक्ष्मी है।' किन्तु उसी दिन से पार्वती ने हाथ मोड़ लिया। अनाथ, अन्धे, फकीर आदि कितने ही लोग लौटने लगे। मालिक ने यह सन पार्वती को बुलाकर कहा—'क्या लक्ष्मी का भंडार खाली हो गया?'

पार्वती ने साहस के साथ उत्तर दिया—'केवल देने से ही नहीं चलता कुछ दिन जमा भी करना चाहिए। देखते नहीं, खर्च कितना बढ़ गया है ?'

'इससे क्या मतलब, मुझे कै दिन रहना है, पुण्य-कर्म करके परलोक तो बनाना ही चाहिए ?'

पार्वती ने हंसकर कहा—'यह तो बिल्कुल स्वार्थ की बात है। अपना ही देखोगे और लड़की-लड़कों को क्या बहा दोगे ? कुछ दिन तक चुप रहो फिर सब उसी तरह चलेगा। मनुष्य के काम का कभी अन्त नहीं होता।'

अस्तु, चौधरी जी चुप हो रहे।

पार्वती को कोई काम नही रहा, इसी से चिन्ता कुछ बढ़ गयी। किन्तु सारी चिन्ता का एक ही विषय है। जिसकी आशा रहती है, उसकी एक प्रकार की चिन्ता रहती है जिसकी आशा नहीं रहती, उसकी दूसरे प्रकार की चिन्ता रहती है। पूर्वोक्त चिन्ता में सजीवता है, सुख है, तृप्ति है, दुख है और उत्कंठा है। इसी से मनुष्य श्रान्त हो जाते हैं—अधिक काल तक चिन्ता नही करते। किन्तु नैराश्य मे सुख नही है, दुख नही, उत्कंठा नही है केवल तृप्ति है। नेत्र से जल झरता है, गम्भीरत भी रहती है, किन्तु नित्य नवीन मर्मवेदना नही होती। हल्के बादल के समान इधर-उधर मंडराती है। जब तक हवा नही लगती, तब तक स्थिरता रहती है और ज्यों ही हवा लगती है गायब हो जाती है। तन्मय मन उद्वेगहीन चिन्ता में एक सार्थकता लाभ करता है। पार्वती की भी आजकल ठीक यही दशा है। पूजा-पाठ करने के समय अस्थिर, उद्देश्यहीन और हताश-सी रहती है; मन चटपट तालसोनापुर के बंसीवाड़ी, आम के बगीचे, पाठशाला, घर, बांध के तीर आदि स्थानों में घूम आता है। इसके बाद वह किसी ऐसे स्थान मे जा छिपती है कि पार्वती स्वयं अपने आपको ढूंढकर बाहर नही निकाल सकती। पहले होठ पर कुछ हंसी की रेखा दिखाई पड़ती है, फिर तत्काल ही आंख से एक बूंद आंसू टपककर पंचपात्र के जल से मिल जाता है। तब भी दिन कटता ही है। काम-काज में, मधुर-मधुर बातचीत मे, परोपकार और सेवा शुश्रुषा में दिन कटता था और अब उसे छोड़ ध्यानमग्ना योगिनी की भाति भी कटता है। कोई लक्ष्मी-स्वरूपा अन्नपूर्णा कहता था और कोई अन्यमनस्का, उन्मादिनी कहता था। किन्तु कल सुबह से कुछ और ही परिवर्तन देखा जाता है। वह कुछ तीव्र और कठोर हो गयी है। ज्वार की गगा में हठात् भाटा का आरम्भ हुआ। घर में कोई इसका कारण नहीं जानता, केवल हम लोग जानते हैं। मनोरमा ने गाव से एक चिट्ठी लिखी है। वह निम्न भांति है—

'पार्वती, बहुत दिन हुए, हम दोनों में से किसी ने किसी को चिट्ठी नही लिखी; अतएव दोनों ही का दोष है। मेरी इच्छा है कि इसे मिटा दिया जाय। हम दोनों को दोष स्वीकार कर अभिमान कम करना चाहिए। किन्तु मैं बड़ी हूं, इसीलिए मैं ही मान की भिक्षा मांगती हूं। आशा है, शीघ्र उत्तर दोगी। आज प्रायः एक महीना हुआ, मैं यहां आयी हूं। हम लोग गृहस्थ-घर की लड़कियां हैं, शारीरिक दुख-सुख पर उतना ध्यान नही देतीं। मरने पर कहती हैं गंगालाभ हुआ और जीते रहने पर कहती है कि अच्छी हैं। मैं भी उसी प्रकार अच्छी हूं। किन्तु यह तो हुई अपनी बात; अब रही दूसरो की बात। यद्यपि कुछ ऐसे काम की बात नही है, फिर भी एक सम्वाद सुनाने की बड़ी इच्छा होती है। कल से ही सोच

रही हूं कि तुम्हें सुनाऊं कि नहीं। सुनाने से तुम्हें क्लेश होगा और सुनाये बिना मैं रह नहीं सकती—ठीक मारीच की दशा हुई है। देवदास की दशा को सुनकर तुम्हें तो क्लेश ही होगा, पर मैं भी तुम्हारी बातों को स्मरण कर रोने से नहीं बच सकती। भगवान ने बड़ी रक्षा की, नहीं तो तुम सरीखी अभिमानिनी उनके हाथ में पड़कर, इतने दिन के भीतर या तो गंगा में डूब मरतीं या विष खा लेतीं ! उनकी बात यदि आज सुनोगी तब भी सुनना है और चार दिन बाद भी सुनना है; उसे दबाने-छिपाने से लाभ ही क्या ?

'आज प्रायः छः-सात दिन हुए, वह यहां पर आये है। तुम तो जानती हो कि द्विज की मां काशीवास करती हैं और देवदास कलकत्ता में रहते हैं, घर पर केवल भाई के साथ कलह करने और रूपया लेने आते हैं। सुनती हूं कि ऐसे ही वह बीच-बीच में आया करते हैं। जितने दिन रूपया इक्ट्ठा नही होता उतने दिन रहते हैं, रूपया पाने पर चले जाते हैं।

'उनके पिता को मरे आज ढाई बरस हुए। सुनकर आश्चर्य होता है कि इसी थोड़े समय में ही अपनी आधी सम्पति फूंक दी। द्विजदास अपने हिसाब-किताब से रहते हैं, इसी से किसी भांति अपने पिता की सम्पति को अपने ही पास बचा के रखा, नहीं तो आज दूसरे लोग लूट खाते। शराब और वेश्या के पीछे सारा धन स्वाहा हो रहा है, कौन उसकी रक्षा कर सकता है ? एक हम कर सकते हैं और उसमे भी देरी नही है। बड़ी रक्षा हुई जो तुम्हारा उनसे विवाह नही हुआ।

'हाय-हाय ! दुख भी होता है। वह सोने-जैसा वर्ण नही, वह रूप नही, वह श्री नही, मानो वह देवदास नही, कोई दूसरे ही है। रूखे सिर के बाल हवा मे उड़ा करते है। आंखें भीतर घुस गयी हैं और नाक खड़ग् की भांति बाहर निकली हुई है। कितना कुत्सित रूप हो गया है, यह तुमसे कहां तक कहू ? देखने से घृणा होती है, डर मालूम होता है। सारे दिन नदी के किनारे-किनारे और बांध के ऊपर हाथ मे बन्दूक लिये चिड़िया मारा करते है। धूप मे सिर चक्कर आने से वह बांध के ऊपर उसी बेर के पेड़ के साये में नीचा सिर किये बैठे रहते है। संध्या होने के बाद घर पर जाकर शराब पीते है, रात मे सोते है या घूमते हैं, यह भगवान जाने।

'उस दिन संध्या के समय मैं नदी से जल लेने गयी थी। देखा, देवदास का मुंह सूखा हुआ है, बन्दुक हाथ में लिये इधर-उधर घूम रहे हैं। मुझे पहचानकर, पास आकर खड़े हुए, मैं डर से मर गयी। घाट पर कोई नहीं था, मैं उस दिन अपने आपे में नहीं थी। ईश्वर ने रक्षा की कि उन्होंने किसी किस्म की बुरी छेड़खानी नहीं की, केवल सज्जनोचित शान्त भाव से कहा—'मनो, अच्छी तरह तो हो ?'

'मै और क्या करती, डरते-डरते सिर नीचा किये हुए कहा—'हां।'

तब उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास फेंककर कहा—'सुखी रहो बहिन, तुम्हे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।' फिर धीरे-धीरे चले गये। मैं गिरते-पड़ते वहां से बड़े जोर से भागी। बाप रे ! भाग्य से उन्होने हाथ आदि कुछ नही पकड़ा। रहने दो इन बातों को—इस सब दुर्वृत्ति की बातों के लिखने की जगह चिट्ठी में नहीं है।

'बड़ा कष्ट दिया, क्यों बहिन ? आज भी यदि उन्हें नहीं भूली होगी तो अवश्य ही कष्ट होगा, किन्तु लाचारी है। और यदि असावधानतावश कोई अपराध हुआ हो, तो अपने सहज गुण से इस स्नेहाकांक्षिणी—मनो बहिन को क्षमा करना।'

पार्वती ने कहा—'तुम साथ चलोगे। रास्ते में अगर मर जाऊंगी, तो मुंह मे आग देने के लिए बड़े लड़के की जरूरत पड़ेगी।'

महेन्द्र ने और कुछ नही कहा। पालकी आने पर दोनों आदमियों ने प्रस्थान किया।

चौधरी जी यह सुनकर व्यग्र हो उठे, दास-दासियो से पूछा, किन्तु कोई ठीक कारण नही बता सका। तब उन्होंने अपनी बुद्धि से और पांच दरबान, दास-दासियां भेज दी।

एक सिपाही ने पूछा—'रास्ते मे भेंट होने पर पालकी लौटा लावें कि नही?'

उन्होंने कुछ सोचकर कहा—'नही, लौटा लाने का कोई काम नही है। तुम लोग साथ जाना, जिससे कोई तकलीफ न हो।'

उसी दिन संध्या के बाद दोनो पालकियां तालसोनापुर पहुंची। किन्तु देवदास गाव मे नही थे, उसी दिन दोपहर मे कलकत्ता चले गये थे।

पार्वती ने सिर पीटकर कहा—'दुर्भाग्य!' और फिर मनोरमा के साथ भेट की।

मनोरमा ने पूछा—'क्या देवदास को देखने आयी थी?'

पार्वती ने कहा—'नही, साथ ले जाने के लिए आयी थी। उनका यहां पर अपना कोई नही है।'

मनोरमा अवाक् हो रही, कहा—'क्या कहती हो? जरा भी लज्जा नही करती?'

'लज्जा, और फिर किससे? अपनी चीज अपने साथ ले जाऊगी! इसमे लज्जा क्या है?'

'छिः-छिः! क्या कहती हो? जिससे जरा भी सम्पर्क नही—ऐसी बात मुंह पर न लाओ।'

पार्वती ने मलिन हसी हसकर कहा—'मनो बहिन, ज्ञान होने के बाद से जो बात मेरे हृदय में बस रही है, जब-तब वही मुख से बाहर निकल जाती है, तुम बहिन हो, इसी से इन बातों को सुन लेती हो।'

दूसरे दिन पार्वती माता-पिता के चरणो मे प्रणाम करके फिर पालकी पर सवार होकर चली गयी।

15

आज दो वर्ष हुए चन्द्रमुखी ने अपने रहने के लिए अशथझूरी गाव मे छोट नदी के तीर पर एक ऊंची जगह मे दो छोटे-छोटे मिट्टी के घर बनाये है। पास ही मे एक खलियान है, वहां पर उसकी एक हृष्ट-पुष्ट काली गाय बंधी रहती है। दो घरो मे, एक रसोईघर और भंडार है तथा दूसरे मे वह सोती है। सोकर उठने से पहले ही रामवाग्दी की स्त्री सब घर-द्वार झाड़-बुहारकर साफ कर देती है। मकान के चारो ओर सहन बना है, बीच मे एक बेर का पेड़ है और एक ओर एक तुलसी की चौंतरिया है। सामने नदी की धार है, उसके

आस-पास लोगों ने खजूर और केले आदि के वृक्ष लगा रखे हैं। चन्द्रमुखी को छोड़ इस घाट का उपयोग और कोई नहीं करता। वर्षा-काल में नदी के फलफलाने पर चन्द्रमुखी के मकान के नीचे तक जल आ जाता है। उस समय लोग व्यग्र हो उठते हैं और कुदाली से मिट्टी खोदकर जगह को ऊंची बनाने के लिए दौड़ आते हैं। गांव में ऊंची जाति के लोग नहीं रहते। किसान अहीर, कहार, कुर्मी, वाग्दी, दो घर कलवार और दो घर चमार रहते हैं। चन्द्रमुखी ने गांव में आकर देवदास को सूचना दी; उत्तर में उन्होंने कुछ और रूपये भेज दिये। इन रूपयों में से चन्द्रमुखी गांव के लोगों को उधार देती है। आपद-विपद मे सभी आकर उससे रूपया उधार ले जाते हैं। चन्द्रमुखी सूद नही लेती, उसके बदले कन्द-मूल, शाक-भाजी, जिसकी जो इच्छा होती है, दे जाता है। अमल के लिए भी किसी से जोर-जबरदस्ती नहीं करती। जो नहीं दे सकते, वे नहीं देते।

चन्द्रमुखी हंसकर कहती—'अब तुझे कभी न दूंगी।'

वह नम्र भाव से कहता—'मां, ऐसा आशीर्वाद दो कि इस बार अच्छी फसल हो।'

चन्द्रमुखी आशीर्वाद देती; किन्तु यदि फिर अच्छी फसल न होती तो वे फिर रोते हुए आकर हाथ पसारते और चन्द्रमुखी फिर देती। मन-ही-मन हंसकर वह कहती—वे अच्छी तरह से रहें, मुझे रूपये-पैसे की क्या कमी है।

किन्तु वे कहां है? प्रायः छः महीने हुए, उसे कोई खबर नही मिली। चिट्ठी लिखी, किन्तु कोई जवाब नहीं मिला। रजिस्ट्री लगायी, वह लौट आयी। चन्द्रमुखी ने एक ग्वाले को अपने घर के पास बसा रखा था। उसके लड़के के विवाह में साढ़े दस गंडे रूपये से सहायता दी थी; एक जोड़ा कड़ा भी खरीद दिया। उसका सारा परिवार चन्द्रमुखी का आश्रित और आज्ञाकारी था। एक दिन प्रात:काल चन्द्रमुखी ने भैरव ग्वाला को बुलाकर कहा—'भैरव, यहां से तालसोनापुर कितनी दूर है, जानते हो?'

भैरव ने सोचकर कहा—'यहां से कोई दो धाप पर कचहरी है।'

चन्द्रमुखी ने पूछा—'वहां पर जमीदार रहते हैं?'

भैरव ने कहा—'हां, वे भारी जमीदार है। यह गांव भी उन्ही का है। आज तीन वर्ष हुए, उनका स्वर्गवास हो गया। उनके श्राद्ध मे सारी प्रजा ने एक महीने तक पूरी तरकारी खायी थी। अब उनके दो लड़के हैं; वे लोग बहुत भारी आदमी हैं—राजा हैं।'

चन्द्रमुखी ने पूछा—'भैरव, तुम मुझे वहां तक पहुंचा सकते हो?'

भैरव ने कहा—'क्यों नही पहुंचा सकता; जिस दिन इच्छा हो, चलो।'

चन्द्रमुखी ने उत्सुक होकर कहा—'तब चलो न भैरव, मैं आज ही चलूंगी।'

भैरव ने विस्मित होकर कहा—'आज ही?' फिर चन्द्रमुखी के मुख की ओर देखकर कहा—'तो तुम जल्दी से रसोई-पानी से निबट लो और मैं भी तब तक थोड़ी फरूही बांधकर आता हूं।'

चन्द्रमुखी ने कहा—'आज मै रसोई करूगी नही। भैरव तुम फरूही लेकर आओ।'

भैरव घर पर गया और कुछ फरूही चादर मे बांधकर, एक लाठी हाथ में लेकर तुरन्त लौट आया, कहा—'तब चलो; पर क्या तुम कुछ खाओगी नही?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'नही भैरव, अभी मेरा पूजा-पाठ नहीं हुआ है, अगर समय पाऊंगी तो वही पर सब करूंगी।'

भैरव आगे-आगे रास्ता दिखलाता हुआ चला। पीछे-पीछे चन्द्रमुखी बड़े कष्ट के साथ पगडंडी के ऊपर चलने लगी। अभ्यास ने रहने के कारण दोनों कोमल पांव क्षत-विक्षत हो गये। धूप के कारण सारा मुख लाल हो उठा। खाना-पीना कुछ न होने पर भी चन्द्रमुखी खेत-पर-खेत पार करती हुई चलने लगी। खेतिहर किसान लोग आश्चर्यित होकर उसके मुख की ओर देखते थे।

चन्द्रमुखी एक लाल पाढ़ की साड़ी पहने हुई थी, हाथ में दो सोने के कड़े पड़े हुए थे, सिर पर ललाट तक घूंघट था और सारा शरीर एक मोटे बिछौने की चादर से ढंका हुआ था। सूर्यदेव के अस्त होने में अब और अधिक बिलम्ब नही है। उसी समय दोनों गांव में आकर उपस्थित हुए। चन्द्रमुखी ने थोड़ा हंसकर कहा—'भैरव, तुम्हारा दो धाप इतनी जल्दी कैसे समाप्त हो गया?'

भैरव ने इस परिहास को न समझकर सरल भाव से कहा—'इस बार तो चली आयीं। पर क्या तुम्हारी सूखी देह आज ही फिर लौटकर चल सकेगी?'

चन्द्रमुखी ने मन-ही-मन कहा—आज क्या, जान पड़ता है कल भी ऐसे इतना रास्ता नहीं चल सकूंगी। प्रकाश ने कहा—'भैरव, क्या यहां गाड़ी नहीं मिलेगी?'

भैरव ने कहा—'मिलेगी क्यों नहीं, बैलगाड़ी मिलेगी, कहो तो ठीक करके ले आवें?' गाड़ी ठीक करने का आदेश देकर चन्द्रमुखी ने जमींदार के घर में प्रवेश किया।

भैरव गाड़ी का प्रबन्ध करने दूसरी ओर चला गया। भीतर ऊपरी खंड में—दालान में, बड़ी बहू (वर्तमान जमींदार की गृहिणी) बैठी थी। एक दासी चन्द्रमुखी को वही लेकर आयी। दोनों ने एक दूसरे को एक बार ध्यानपूर्वक देखा।

चन्द्रमुखी ने नमस्कार किया। बड़ी बहू शरीर पर अधिक अलंकार नहीं धारण करती, किन्तु आंखों के कोण पर अहंकार झलका करता है। दोनों होंठ और दांत पान और मिस्सी से काले पड़ गये हैं। गाल कुछ ऊपर उठे हुए हैं और सारा चेहरा भरा-पूरा। केशों को इस प्रकार सजाकर बांधती है कि कपाल जगमगा उठता है। दोनों कानों में मिलाकर कोई बीस-तीस छोटी-बड़ी बालीयां पड़ी है। नाक के नीचे एक बुलाक लटकता है। नाक के एक ओर लौंग पहने है। जान पड़ता है, यह सुराख नथ पहनने के लिए बना है।

चन्द्रमुखी ने देखा, बड़ी बहू बहुत मोटी-सोटी हैं, रंग विशेष श्याम है, आंखें बड़ी-बड़ी हैं, गोल गठन का मुख है, काले पाढ़ की साड़ी पहने हैं और एक नारंगी रंग की कुरती पहने हैं—यह सब देख चन्द्रमुखी के मन में कुछ घृणा-सी उत्पन्न हुई। बड़ी बहू ने देखा कि चन्द्रमुखी के वयस्क होने पर भी उसका सौन्दर्य कम नहीं हुआ है। दोनों ही सम्भवतः समवयस्क हैं, किन्तु बड़ी बहू ने मन-ही-मन इसे स्वीकार नही किया। इस गांव में पार्वती के अतिरिक्त इतना सौन्दर्य और किसी में नहीं देखा। आश्चर्यित होकर पूछा—'तुम कौन हो?"

चन्द्रमुखी ने कहा—'मैं आपकी ही एक प्रजा हूं, खजाने की मालगुजारी कुछ बाकी पड़ गयी थी, उसी को देने आयी हूं।'

बड़ी बहू ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—'तो यहां क्यों आयी, कचहरी में जाओ।'

चन्द्रमुखी ने मीठी हंसी हंसकर कहा—'मां, मैं बड़ी दुखिया हूं, सब रूपया नहीं दे सकती। सुना है कि आप बड़ी दयावती है; इसी से आपके पास आयी हूं कि कुछ माफ

कर दें।'

इस प्रकार की बात बड़ी बहू ने अपने जीवन में पहली ही बार सुनी। उनमें दया है, मालगुजारी माफ कर सकती हैं, आदि कहने के कारण चन्द्रमुखी तत्काल ही उनकी प्रिय-पात्री हो गयी। बड़ी बहू ने कहा—'दिन-भर में कितने ही रूपये मुझे छोड़ने होते हैं, कितने ही लोग मुझे आकर पकड़ते हैं; मैं नाहीं नहीं कर सकती, इसलिए सभी मेरे ऊपर क्रोध भी करते हैं। तो तुम्हारा कितना रूपया बाकी पड़ता है?'

'अधिक नहीं, कुल दो रूपये; पर मेरे लिए यही दो रूपये पहाड़ा हो रहे हैं; सारे दिन आज रास्ता चलकर यहां आयी हूं।'

बड़ी बहू ने कहा—'अहा! तुम दुखिया हो, तुम्हारे ऊपर मुझे दया करनी उचित है। ऐ बिन्दू! इनको बाहर लिये जाओ, दीवानजी से मेरा नाम लेकर कह देना कि दो रूपये माफ़ कर दें। अच्छा, तुम्हारा घर कहां है?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'आपके ही राज्य में—अशयझूरी गांव में। अच्छा मां, क्या छोटे मालिक नहीं है?'

बड़ी बहू ने कहा—'अभागी! छोटा मालिक कौन है? दो दिन बाद सब मेरा ही तो होगा।'

चन्द्रमुखी ने उद्विग्न होकर पूछा—'क्यों? जान पड़ता है, छोटे बाबू पर खूब कर्ज है?'

बड़ी बहू ने थोड़ा हंसकर कहा—'मेरे यहां कई गांव बन्धक हैं। अब तक तो सब बिक गया होता। कलकत्ता में शराब और वेश्या के पीछे सारा धन लुटाये डाल रहे हैं, उसका कोई हिसाब नहीं, कोई अन्त नहीं।'

चन्द्रमुखी का मुख सूख गया, थोड़ा ठहरकर उसने पूछा—'हां मां, तो छोटे बाबू इसी से घर भी नहीं आते?'

बड़ी बहू ने कहा—'आते क्यों नहीं है! जब रूपये की जरूरत पड़ती है तो आते हैं। उधार काढ़ते हैं, जमीन बन्धक रखते हैं, फिर चले जाते हैं। अभी दो महीने हुए आये थे, बारह हजार रूपये ले गये। बचने की भी तो उम्मीद नहीं है, शरीर में कई-एक बुरे रोग लग गये है! छिः! छिः!'

चन्द्रमुखी सिहर उठी, मलिन मुख से उसने पूछा—'वे कलकत्ता में कहां रहते हैं?'

बड़ी बहू ने सिर ठोक कर, प्रसन्न मुख से कहा—'बड़ी बुरी दशा है! यह क्या कोई जानता है कि कहां, किस होटल में रहते हैं, किस दोस्त के मकान में पड़े रहते हैं—यह वही जानें या उनका दुर्भाग्य जाने।'

चन्द्रमुखी सहसा उठ खड़ी हुई, और बोली—'अब मैं जाती हूं।'

बड़ी बहू ने थोड़ा आश्चर्यित होकर कहा—'जाओगी? अरी ओ बिन्दू...!'

चन्द्रमुखी ने बीच ही में बाधा देकर कहा—'ठहरो मां, मैं खुद ही कचहरी जाती हूं।' यह कहकर वह धीरे-धीरे चली गयी। घर के बाहर देखा, भैरव आसरा देख रहा है, और बैलगाड़ी एक किनारे खड़ी है। उसी रात को चन्द्रमुखी घर लौट आयी। प्रातःकार भैरव को फिर बुलाकर कहा—'भैरव, मैं आज कलकत्ता जाऊंगी। तुम तो साथ जा नहीं सकोगे, इसलि तुम्हारे लड़के को साथ ले जाऊंगी। बोलो, क्या कहते हो?'

भैरव—'जैसी तुम्हारी इच्छा हो। लेकिन कलकत्ता क्यों जाती हो मां, क्या कोई खास काम है?'

चन्द्रमुखी—'हां भैरव, खास काम है।'

'भैरव—'और जाओगी कब?'

चन्द्रमुखी—'यह नहीं कह सकती भैरव। अगर हो सका तो जल्दी ही आऊंगी और नहीं तो देर लगेगी। और अगर नहीं आ सकी तो घर-द्वार सब तुम्हारा ही होगा।'

पहले तो भैरव अवाक् हो गया, फिर उसकी दोनों आंखों में जल भर आया, कहा—'यह कैसी बात कहती हो मां! तुम्हारे न आने से इस गांव के लोग कैसे रह सकेंगे?'

चन्द्रमुखी के नेत्र भी सजल हो उठे, थोड़ी मीठी हंसी हंसकर कहा—'यह क्यों भैरव, मैं तो कुल दो ही वर्ष से आयी हूं, इसके पहले तुम लोग कैसे रहते थे?'

इसका उत्तर मूर्ख भैरव नहीं दे सकता, किन्तु चन्द्रमुखी हृदय में सब-कुछ समझती थी। भैरव का लड़का केवला उसके साथ जायेगा। गाड़ी पर आवश्यक चीज़-वस्तु लादकर चलने के समय सभी स्त्री-पुरूष देखने आये, देखकर रोने लगे। चन्द्रमुखी भी अपनी आखों के आंसू नहीं रोक सकी। नाश हो ऐसे कलकत्ता का, यदि देवदास न होते तो कलकत्ता में रानी का पद मिलने पर भी चन्द्रमुखी ऐसे प्रेम तृणवत त्यागकर कभी न जा सकती।

दूसरे दिन वह क्षेत्रमणि के घर पर आ उपस्थित हुई। उसके पहले घर में इस समय दूसरे लोग रहते थे। क्षेत्रमणि अवाक् हो गया, पूछा—'बहिन, इतने दिनों तक कहां थीं?"

चन्द्रमुखी ने सत्य बात को छिपाकर कहा—'इलाहाबाद थी।'

क्षेत्रमणि ने एक बार अच्छी तरह से सारा शरीर देखकर कहा—'तुम्हारे सब गहने क्या हुए, बहिन?'

चन्द्रमुखी ने हंसकर संक्षेप में उत्तर दिया—'सब हैं।'

उसी दिन मोदी से भेंट करके कहा—'दयाल, मेरे कितने रूपये चाहिए?'

दयाल बड़ी विपद में पड़ा, कहा—'यही कोई साठ-सत्तर रूपये चाहिए। आज नही, दो दिने के बाद दूंगा।'

'तुम्हें कुछ न देना होगा, यदि मेरा एक काम कर दो।'

'कौन काम?'

'दो-तीन दिन के भीतर ही हम लोगों के मुहल्ले में एक किराये का घर ठीक कर दो—'समझे?'

दयाल ने हंसकर कहा—'समझा।'

'अच्छा घर हो, अच्छे-अच्छे बिछौने-चादर, चारपाई, लैम्प, दो कुरसियां, एक टेबिल हो—समझे?'

दयाल ने सिर नीचा कर लिया।

'साड़ी, कुरती, श्रृंगारदान, अच्छे गिलट के गहने आदि कहां मिल सकते हैं?'

दयाल मोदी ने ठिकाना बता दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा—'तब वह सब भी एक सेट अच्छा-सा देखकर खरीदना होगा।

मैं साथ चलकर पसन्द कर लूंगी।' फिर हंसकर कहा—'मुझे जो-जो चाहिए सो तो जानते ही हो, एक दासी भी ठीक करनी होगी।'

दयाल ने कहा—'कब चाहिए?'

'जितना जल्द हो सके। दो-तीन दिन के भीतर ही ठीक होने से अच्छा होगा।' यह कहकर उसके हाथ में सौ रूपये का नोट रखकर कहा—'अच्छी-अच्छी चीजें ले आना, सस्ती नहीं देखना।'

तीसरे दिन वह नये घर चली गयी। सारा दिन केवलराम को साथ लेकर अपनी इच्छानुसार घर को सजाया एवं सन्ध्या के पहले अपने को सजाने बैठी। साबुन से मुंह धोया, इसके बाद पाउडर लगाया, लाल रंग से पांवों को रंगा और पान खाकर होंठ रंगे। फिर सारे अंगों में आभूषण धारण किये, कुरती और साड़ी पहनी। बहुत दिन बाद आज केश संवारकर सिर में टीका लगाया। आईने में मुंह देखकर मन-ही-मन कहा—अब और न जाने क्या-क्या भाग्य में बदा है।

देहाती बालक केवलराम ने यह साज-बाज और पोशाक देखकर भीत भाव से पूछा—'यह क्या, बहिन?'

चन्द्रमुखी ने हंसकर कहा—'केवल, आज मेरे पति आवेंगे।'

केवलराम विस्मय नेत्रो से देखता रहा।

सन्ध्या के बाद क्षेत्रमणि आया, पूछा—'बहिन, अब यह सब क्या?'

चन्द्रमुखी ने मुख नीचा कर, हंसकर कहा—'क्यों, यह सब अब नहीं चाहिए?'

क्षेत्रमणि कुछ देर चुपचाप देखता रहा, फिर कहा—'जितनी उम्र बढ़ती जाती है, उतना ही सौन्दर्य भी बढ़ता जाता है।'

वह चला गया। चन्द्रमुखी आज बहुत दिनों बाद फिर खिड़की पर आकर बैठी। एकटक रास्ते की ओर देखती रही। यही उसका काम है, यही करने वह आयी है। जितने दिन वह यहां रहेगी उतने दिन यही करेगी। कोई-कोई नये आदमी आना चाहते थे, द्वार ठेलते थे, किन्तु उसी समय केवलराम कहता था—'यहां नहीं आना।'

पुराने परिचित लोगों में से यदि कोई आता तो चन्द्रमुखी बैठकर, हंस-हंसकर बातें करती। बात-ही-बात में देवदास की बात पूछता। जब वे न बता सकते, तो उदास मन से विदा कर देती। रात अधिक बीतने पर स्वयं बाहर निकल जाती थी। मुहल्ले-मुहल्ले, द्वार-द्वार घूमती-फिरती छिपकर लोगों की बातें कान देकर सुनती, कुछ लोग अनेकों प्रकार की बातें करते थे, किन्तु वह जो सुनना चाहती थी, वह कहीं नहीं सुन जाती थी। आते-जाते हुए लोगों में से वह बहुतों को देवदास समझकर पास जाती थी, किन्तु जब किसी दूसरे को देखती थी तो धीरे से लौट आती थी। दोपहर के समय वह अपनी पुरानी साथिनों के घर जाती। बात-ही-बात में पूछती—'क्यों, देवदास के विषय में भी कुछ जानती हो?'

वह पूछतीं—'कौन देवदास?'

चन्द्रमुखी उत्सुक भाव से परिचय देने लगती—'गोरा रंग है, सिर पर घुंघराले बाल हैं, ललाट के एक ओर चोट का दाग है, धनी आदमी है, बहुत रूपया खर्च करते हैं, क्या तुम पहचानती हो?'

कोई पता नहीं बता सकता था। हताश होकर उदास मन से चन्द्रमुखी घर लौट आती

थीं। बड़ी रात तक रास्ते की ओर देखती रहती थी। नींद आने पर विरक्त भाव से मन-ही-मन कहती—यह क्या तुम्हारे सोने का समय है?

इस तरह एक महीना बीत गया। केवलराम भी ऊब उठा। चन्द्रमुखी को स्वयं पर सन्देह होने लगा कि वे यहां पर नहीं है। फिर भी आशा-भरोसा में दिन पर दिन बीतने लगे।

कलकत्ता आये हुए डेढ़ महीना हो गया। आज उसके ब्रह्म प्रसन्न हुए। रात के ग्यारह बज गये थे, हताश मन से वह घर लौट रही थी। इतने में ही देखा, रास्ते के एक ओर दरवाजे के सामने एक आदमी आप-ही-आप कुछ बड़बड़ा रहा है। इस कंठ-स्वर से वह भली-भांति परिचित थी। करोड़ों लोगों के बीच में भी वह उस स्वर को पहचान सकती थी। उस स्थान पर कुछ अन्धकार था, वहीं पर कोई मनुष्य नशे में चूर पड़ा हुआ था। चन्द्रमुखी ने पास जाकर शरीर पर हाथ रखकर पूछा—'तुम कौन हो, जो यहां पर इस तरह पड़े हो?'

उस मनुष्य ने जोर से कहा—'सुनो तो सही मेरे मन की बातें, यदि पाऊं मैं अपने स्वामी को।'

चन्द्रमुखी को अब और कुछ सन्देह नही रहा, उसने पुकारा—'देवदास!'

देवदास ने उसी भांति कहा—'हूं?'

'यहां क्यों पड़े हो, घर चलोगे?'

'नही, अच्छी तरह हूं।'

'थोड़ी शराब पियोगे?'

'हां पिऊंगा'—कहकर एकाएक चन्द्रमुखी का गला जकड़ लिया, कहा—'ऐसी भलाई करने वाले तुम कौन हो भाई?'

चन्द्रमुखी की आंखो से आंसू गिरने लगे। बड़े परिश्रम के साथ गिरते-पड़ते चन्द्रमुखी के कन्धे का सहारा लेकर उठे। कुछ देर मुख की ओर देखने के बाद कहा—'भाई यह बड़ी अच्छी चीज है।'

चन्द्रमुखी ने आह भरी हंसी हंसकर कहा—'हां, बड़ी अच्छी चीज है। जरा मेरे कन्धे का सहारा लेकर कुछ आगे चलो, एक गाड़ी ठीक करनी होगी।'

'गाड़ी क्या होगी?'— रास्ते में आते-आते देवदास ने बैठे हुए गले से कहा—'सुन्दरी, तुम मुझे पहचानती हो?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'पहचानती हूं।'

देवदास ने हकलाते हुए कहा—'और लोगों ने तो मुझे भुला दिया है, भाग्य है जो तुम पहचानती हो।' फिर गाड़ी पर सवार होकर, चन्द्रमुखी के शरीर पर बोझ दिये ही घर पर आये। दरवाजे के पास खड़े होकर जेब मे हाथ डालकर कहा—'सुन्दरी; गाड़ी तो ले आयी, किन्तु जेब मे कुछ नही है।'

चन्द्रमुखी ने कोई उत्तर नही दिया। चुपचाप हाथ पकड़े हुए ऊपर लाकर लिटाकर कहा—'सो जाओ।'

देवदास ने उसी भांति बैठे हुए गले से कहा—'क्या कुछ चाहिए नही?

मैंने जो कहा कि जेब खाली है, कुछ मिलने की आशा नहीं है। समझी सुन्दरी?'

सुन्दरी उसे समझ गयी, कहा—'कल देना।'

देवदास ने कहा—'इतना विश्वास तो ठीक नहीं। क्या चाहिए, खुलकर कहो?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'कल सुनना।'—यह कहकर वह बगले के दूसरे कमरे में चली गयी।

देवदास की जब नींद टूटी तो दिन चढ़ गया था। घर में कोई नहीं था। चन्द्रमुखी स्नान करके भोजन पकाने की तैयारी में थी। देवदास ने चारों ओर आश्चर्य से देखा कि इस स्थान में वे कभी नहीं आये थे, एक चीज भी नहीं पहचान सके। पिछली रात की एक बात भी याद नहीं आती थी; केवल किसी की आन्तरिक सेवा का कुछ-कुछ स्मरण आता था। किसी ने मानो बड़े स्नेह के साथ लाकर सुला दिया। इसी समय चन्द्रमुखी ने घर में प्रवेश किया। रात की सज-धज में इस समय बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। शरीर पर गहने तो अब भी वे ही थे। किन्तु रंगीन साड़ी, माथे का टीका, मुख में पान का दाग आदि कुछ भी नहीं थे। केवल एक धोई हुई श्वेत साड़ी पहने हुए वह घर में आयी। देवदास चन्द्रमुखी को देखकर खिल उठे, बोले—'कहां से कल मुझे यहां बुला ले आयीं?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'बुला नहीं लायी, रास्ते में तुम्हें पड़ा हुआ देखकर उठा ले आयी।'

देवदास ने कुछ गम्भीर होकर कहा—'अच्छा, यह तो हुआ सो हुआ, पर तुम्हें यहां कैसे पाता हूं? तुम कब आयी? तुम तो गहना नहीं पहनती थी, फिर कैसे पहनने लगीं?'

चन्द्रमुखी ने देवदास के मुख पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा—'फिर से.. !'

देवदास ने हंसकर कहा—'नहीं-नहीं, यह हो नहीं सकता; ऐसी हंसी करने में भी दोष है। आयी कब?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'डेढ़ महीना हुआ।'

देवदास ने मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाया, फिर कहा—'मेरे मकान से लौटने के बाद ही यहां पर आयी?'

चन्द्रमुखी ने विस्मित होकर कहा—'तुम्हारे घर पर मेरे जाने की खबर तुम्हें कैसे मिली?'

देवदास ने कहा—'तुम्हारे लौटने के बाद ही मैं मकान पर गया था। एक दासी से, जो तुम्हे बड़ी बहू के पास ले गयी थी, सुनने ने आया कि कल अशथझूरी गांव से एक बड़ी सुन्दर स्त्री आयी थी। फिर समझना कितना कठिन था? किन्तु इतना गहना कहां से गढ़ाया?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'गढ़ाया नहीं; ये सब गिलट के गहने हैं, इन्हें कलकत्ता में आकर खरीदा है। तुम्हें देखने के लिए मैंने कितना फिजूल खर्च किया है, और कल तो तुम मुझे पहचान भी नहीं सके।'

देवदास ने हंसकर कहा—'एकबारगी नही पहचान सका, कोशिश करने पर पहचाना था। कई बार मन में आया कि चन्द्रमुखी को छोड़कर मेरी ऐसी सेवा कौन करेगा?"

मारे हर्ष के चन्द्रमुखी को रोने की इच्छा हुई। कुछ देर तक चुप हो रहने के बाद कहा—'देवदास, मुझसे अब वैसी घृणा करते हो या नहीं?'

देवदास ने जवाब दिया—'नहीं, वरन् प्रेम करता हूं।'

दोपहर में स्नान करने के समय चन्द्रमुखी ने देखा कि देवदास की छाती में एक फलालेन का टुकड़ा बंधा है। भयभीत होकर पूछा—'यह क्या फलालेन क्यों बांधा है?'

देवदास ने कहा—'छाती में एक प्रकार की पीड़ा होती है, तुम तो सुख से हो?'

चन्द्रमुखी ने सिर धुनकर कहा—'सर्वनाश करना चाहते हो क्या? फेफड़े में पीड़ा है?'

देवदास ने हंसकर कहा—चन्द्रमुखी, ऐसा ही कुछ है।' उसी दिन डॉक्टर ने आकर बहुत देर तक परीक्षा करने के बाद यही आशंका स्थिर की। औषध लिख दी तथा बताया कि यदि विशेष सावधानीपूर्वक न रहा जायेगा तो भारी अनिष्ट होने की सम्भावना है। दोनों ही ने इसका तात्पर्य समझा। पत्र द्वारा घर से धर्मदास को बुलाया गया और चिकित्सा के लिए बैंक से रूपया आया। दो दिन इसी भांति बीत गये, किन्तु तीसरे दिन ज्वर का आविर्भाव हुआ।'

देवदास ने चन्द्रमुखी को बुलाकर कहा—'बड़े अच्छे समय से आयीं, नहीं तो मुझे यहां कौन देखता?' आंसू पोंछकर चन्द्रमुखी प्राणपण से सेवा करने बैठी। दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'भगवान्, ऐसे असमय में इतना काम आ पड़ेगा, यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी। किन्तु देवदास को शीघ्र अच्छा कर दो!'

प्रायः एक मास से ऊपर अधिक देवदास चारपाई पर पड़े रहे, फिर धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे। रोग अधिक बढ़ने नहीं पाया।

इसी समय एक दिन देवदास ने कहा—'चन्द्रमुखी, तुम्हारा नाम बहुत बड़ा है। पुकारने में कुछ असुविधा-सी होती है, इसे थोड़ा छोटा कर देना चाहता हूं।'

चन्द्रमुखी ने कहा—'अच्छी बात है।'

देवदास ने कहा—'आज से तुम्हें 'बहू' कह के पुकारूंगा।'

चन्द्रमुखी हंस पड़ी, कहा—'इस पुकारने का कोई मतलब भी होना चाहिए।'

'क्या सभी बातों का मतलब हुआ करता है? मेरी इच्छा।'

'यदि इच्छा ही है तो कहो। किन्तु यह इच्छा कैसी, यह तो कहो!'

'नहीं, कारण मत पूछो।'

चन्द्रमुखी ने सिर नीचा करके कहा—'अच्छी बात है, यही सही।'

देवदास ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद हठात् गम्भीर भाव से पूछा—'अच्छा बहू, तुम मेरी कौन हो, जो इतने प्राणपण से मेरी सेवा करती हो?'

चन्द्रमुखी न तो लज्जाशील वधू ही है और न बातचीत में अनभ्यस्त बालिका; देवदास के मुख की ओर स्थिर-शान्त दृष्टि रखकर स्नेह-जड़ित कंठ से कहा—'तुम मेरे सर्वस्व हो, क्या यह अब भी नहीं समझ सके?'

देवदास दीवाल की ओर देख रहे थे। उसी ओर देखते हुए धीरे-धीरे कहा—'यह सब समझता हूं, किन्तु इससे आनन्द नहीं मिलता। पार्वती को मैं कितना प्यार करता था और वह भी मुझे कितना प्यार करती थी, पर इससे अन्त में मिला कष्ट ही। बहुत दुख पाने पर सोचा था कि अब कभी प्रेम के फंदे में पांव नहीं दूंगा। जानते हुए दिया भी नहीं। परन्तु तुमने यह क्या किया? जोर देकर फिर उसमें मुझे क्यों फंसाया?—यह कहकर कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर कहा—'बहू, जान पड़ता है, तुम भी पार्वती की

भांति दुख उठाओगी।'

चन्द्रमुखी मुख पर आंचल देकर चारपाई के एक ओर चुपचाप बैठी रही।

देवदास ने फिर मृदु-कंठ से कहना आरम्भ किया—'तुम दोनों में कितनी विषमता है। एक कितनी अभिमानिनी और उद्धत है और दूसरी कितनी शांत और कितनी संयत है! वह कुछ भी नहीं सह सकती और तुम कितना सहती हो! उसका कितना यश और कितना नाम है और तुम कितनी कलंकिता हो! सभी उसे प्यार करते हैं, पर तुम्हें कोई प्यार नहीं करता! फिर मैं प्यार करता हूं—'कैसे करता हूं!'—कहकर एक दीर्घ निःश्वास फेंककर फिर कहा—'पाप-पुण्य के विचारकर्ता तुम्हारा कैसा विचार करेंगे, यह नहीं कह सकता, पर मृत्यु के बाद यदि मिलन होगा तो मैं तुमसे कभी दूर नहीं रहूंगा।'

चन्द्रमुखी भीतर-ही-भीतर रो पड़ी, दिल बड़ा छोटा हो गया, मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी—'भगवान! किसी काल या किसी जन्म में अगर इस पापिष्ठा का प्रायश्चित हो जाय तो मुझे इन्हें ही पुरस्कार में देना!

दो महीने बीत गये। देवदास आरोग्य हो गये, पर अभी शरीर नहीं भरा। वायु-परिवर्तन आवश्यक था। कल पश्चिम की ओर जायेंगे, साथ में केवल धर्मदास रहेगा।

चन्द्रमुखी ने देवदास का हाथ पकड़कर कहा—'तुम्हें एक दासी भी तो चाहिए—मुझे साथ लेते चलो।'

देवदास ने कहा—छिः! यह क्या हो सकता है? और जो चाहे सो करूं, परन्तु इतनी बड़ी निर्लज्जता नहीं कर सकता।'

चन्द्रमुखी चुप हो रही। वह अबूझ नहीं है, सब बातें सहज ही समझ गयी, और जो हो, पर इस संसार में उसका सम्मान नहीं है, उसके रहने से देवदास की अच्छी सेवा होगी, सुख मिलेगा, किन्तु कहीं भी सम्मान नहीं मिलेगा। आंख पोंछकर कहा—'अब फिर कब देख सकूंगी?'

देवदास ने कहा—'यह नहीं कह सकता। चाहे कहीं भी होऊं, परन्तु तुम्हें भूलूंगा नहीं, तुम्हें देखने की तृष्णा कभी मिटेगी नहीं।'

प्रणाम करके चन्द्रमुखी अलग खड़ी हो गयी। मन-ही-मन कहा—यही मेरे लिए यथेष्ट है, इससे अधिक आशा करना व्यर्थ है।'

जाने के समय देवदास ने चन्द्रमुखी के हाथ में और दो हजार रूपये रखकर कहा—'इन्हें रखो। मनुष्य के शरीर का कोई विश्वास नहीं है, पीछे तुम दुख-सुख में किसके आगे हाथ पसारोगी?'

चन्द्रमुखी ने इसे भी समझा, इसी से रूपया ग्रहण कर लिया। आंसू पोंछकर पूछा—'तुम एक बात मुझे बातते जाओ।'

देवदास ने मुख की ओर देखकर कहा—'क्या?'

चन्द्रमुखी ने कहा—'बड़ी बहू—तुम्हारी भाभी—ने कहा था कि तुम्हारे शरीर में बुरा रोग उत्पन्न हो गया है, यह क्या सच है?'

प्रश्न सुनकर देवदास को दुख हुआ, कहा—'बड़ी बहू सब कह सकती हैं, किन्तु क्या तुम नहीं जानतीं? मेरा कौन-सा भेद तुम नहीं जानतीं? एक विषय में तो पार्वती से भी

बढ़ी हुई हो।'

चन्द्रमुखी ने एक बार आंख पोंछकर कहा—'सब समझ गयी। परन्तु फिर भी खूब सावधानी से रहना। तुम्हारा शरीर निर्बल है, देखो किसी प्रकार की त्रुटि न होने पावे।' प्रत्युत्तर में देवदास ने केवल हंस दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा—'और एक भिक्षा है, तनिक भी तबीयत खराब होने पर मुझे खबर अवश्य देना।

देवदास ने उसके मुख की ओर देखकर सिर नीचा करके कहा—'दूंगा—अवश्य दूंगा बहू।' फिर एक बार प्रणाम करके चन्द्रमुखी रोती हुई दूसरे कमरे में चली गयी।

16

कलकत्ता से आकर देवदास कुछ दिन इलाहाबाद रहे। उसी बीच उन्होंने चन्द्रमुखी को एक चिट्ठी लिखी—'बहू, मैंने विचार किया है कि अब किसी से प्रेम न करूंगा। एक तो प्रेम करके खाली हाथ लौटने से बड़ी यातना मिलती है, दूसरे इस संसार में प्रेम का पथ ही दुख और दैन्य से पूर्ण है।'

इसके उत्तर में चन्द्रमुखी ने क्या लिखा, इसके लिखने की यहां आवश्यकता नही है, पर इस समय देवदास मन-ही-मन केवल यही सोचते रहते थे कि एक बार उसका यहां आना ठीक होगा या नहीं?

दूसरे ही क्षण सोचते—'नही-नही, कोई काम नहीं है। यदि किसी दिन पार्वती सुन लेगी, तो क्या कहेगी? इस भांति कभी पार्वती और कभी चन्द्रमुखी उनके हृदय-आवास में वास करती थीं। और कभी दोनो के ही सुख एक साथ उनके हृदय-पट पर अंकित होते थे, मानो दोनों पर ही अथाह अनुराग हो। हृदय में दोनों ही आस-पास निवास करती थी। किसी दिन वे सहसा सोचते थे कि वे दोनो ही मानो सो गयी हैं। इस समय उनका हृदय ऐसा शून्य हो जाता था कि केवल एक निर्जीव अतृप्ति उनके हृदय में मिथ्या प्रतिध्वनि की भाति गूंज उठती थी। इसके बाद देवदास लाहौर चले गये। वहां चुन्नीलाल नौकरी करते थे, खबर पाकर भेंट करने के लिए आये। बहुत दिनों के बाद आज दोनो मित्र एक-दूसरे को देखकर लज्जित और साथ ही सुखी हुए। फिर देवदास ने शराब पीना शुरू किया। चन्द्रमुखी की छाया उनके मन में बनी हुई थी, उसने शराब का निषेध किया था। सोचते, वह कितनी बड़ी बुद्धिमती है! कैसी धीरा और शान्त है, कितना उसका स्नेह है! पार्वती इस समय स्वप्नवत् विस्मृत हो रही थी—केवल बुझते हुए दीप के समान जब-तब उसकी स्मृति भभक उठती थी। परन्तु यहां की जलवायु उनके अनुकूल नही पड़ी। बीच-बीच में बीमार पड़ने लगे, छाती में फिर कड़क जान पड़ती थी। धर्मदास ने एक दिन रोते-रोते कहा—'देवता, तुम्हारा शरीर फिर गिर चला, इसलिए और कही चलो!'

देवदास ने अनमने भाव से जवाब दिया—'अच्छा, चला जायेगा।'

देवदास प्रायः घर पर शराब नही पीते। किसी दिन चुन्नीलाल के आने पर पीते हैं और किसी दिन बाहर चले जाते हैं। रात के तीसरे-चौथे पहर घर लौटते थे और किसी-किसी दिन नहीं भी आते थे। आज दो दिन से उनका पता नहीं है। मारे शोक के धर्मदास ने अब तक अन्न-जल भी नही ग्रहण किया। तीसरे दिन वे ज्वर लेकर घर लौटे। चारपाई पकड़ ली। तीन डॉक्टरों ने आकर चिकित्सा आरम्भ की।

धर्मदास ने पूछा—'देवता, काशी में मां को यह खबर भेज दूं ?'

देवदास ने तत्काल बाधा देकर कहा—'छिः-छिः ! मां को क्या यह मुंह दिखाने लायक है ?'

धर्मदास ने इसके प्रतिवाद में कहा—'रोग-शोक तो सभी को होते हैं, पर क्या इसी से इतने बड़े दुख को मां से छिपाया जा सकता है ? तुम्हें कोई लज्जा नहीं है देवता, काशी चलो ।'

देवदास ने मुंह फिराकर कहा—'नहीं धर्मदास, इस समय उनके पास नहीं जा सकूंगा । अच्छा होने के बाद देखा जायेगा ।'

धर्मदास ने मन में सोचा कि चन्द्रमुखी की चर्चा करे, किन्तु वह स्वयं ही उससे इतना घृणा करता था कि यह विचार उठने पर भी वह चुप ही रहा ।

देवदास की चन्द्रमुखी को बुलाने की स्वयं भी इच्छा होती थी, पर कह कुछ नहीं सकते थे । अस्तु, कोई आया नहीं । कुछ दिन के बाद धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे । एक दिन उन्होंने धर्मदास से कहा—'अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो इस बार और कहीं चला जाये ।'

इस समय और कहीं चलने की जरूरत नहीं है, अगर हो सके तो घर चलो, नहीं तो मां के पास चलो ।'

माल-असबाब बांधकर, चुन्नीलाल से विदा लेकर, देवदास फिर इलाहाबाद चले आये । शरीर इस समय भली-भांति अच्छा हो गया था । कुछ दिन रहने के बाद उन्होंने एक दिन धर्मदास से कहा—'धर्म, किसी नयी जगह नहीं चलोगे ? अभी तक बम्बई नहीं देखी, वहां चलोगे ?'

उनका अतिशय आग्रह देखकर, इच्छा न रहते हुए भी धर्मदास बम्बई चलने को तैयार हो गया । जेठ का महीना था । बम्बई शहर औरों की अपेक्षा उतना गर्म नहीं है । यहां आकर देवदास को बहुत कुछ आराम मिला ।

एक दिन धर्मदास ने कहा—'यहां रहते बहुत दिन हो गये, अब घर चलना अच्छा होगा ।'

देवदास ने कहा—'नहीं, यहां अच्छी तरह हूं । अभी कुछ दिन यहां और रहूंगा ।'

एक वर्ष बीत गया । भादों का महीना था । एक दिन प्रातःकाल देवदास धर्मदास के कन्धे के सहारे से बम्बई-अस्पताल से बाहर आकर गाड़ी में बैठे । धर्मदास ने कहा—'देवता, मेरी सलाह से इस समय मां के पास चलना अच्छा होगा ।'

देवदास की दोनों आंखें डबडबा आयीं । आज कई दिन से वे भी मां को स्मरण कर रहे थे । अस्पताल में पड़े-पड़े वे जब-तब यही सोचते थे कि इस संसार में उनके सभी हैं और कोई भी नहीं है । उनके मां है, बड़ा भाई है, बहिन से बढ़कर पार्वती है, चन्द्रमुखी भी है । उनके सभी हैं, पर वे किसी के नहीं है । धर्मदास रोने लगा, कहा—'भाई, इससे अच्छा है कि मां के पास चलो ।'

देवदास ने मुंह फेरकर आंसू पोंछकर कहा—'नही धर्मदास, मां को मुंह दिखाने लायक नहीं हूं । जान पड़ता है, अभी मेरा समय नहीं आया ।'

वृद्ध धर्मदास फूट-फूट कर रोने लगा, कहा—'भैया, अभी तो मां जीती ही हैं ।'

इस बात में कितना भाव भरा हुआ था—इसका उन्हीं दोनों की अन्तरात्मा अनुभव कर सकीं। देवदास की अवस्था इस समय बड़ी शोचनीय थी। सारे पेट की प्लीहा और फेफड़े ने छेंक लिया था, उस पर ज्वर और खांसी का प्रबल प्रकोप था। शरीर का रंग एकदम काला पड़ गया था, केवल ठठरी मात्र बच रही थी। आंखें भीतर की ओर घुस गयीं थी, उनमें एक प्रकार की अस्वाभाविक उज्ज्वलता चमका करती थी। सिर के बाल बड़े रूखे-रूखे हो रहे थे, सम्भवतः चेष्टा करने से गिने भी जा सकते थे। हाथ की उंगलियों को देखने से घृणा उत्पन्न होती थी—एक तो वे नितान्त दुबली-पतली, दूसरे कुत्सित रोगों के दाग से खराब हो गयी थीं। स्टेशन पर आकर धर्मदास ने पूछा—'कहां का टिकट कटाया जायेगा देवता?'

देवदास ने कुछ सोचकर कहा—'चलो पहले घर चलें, फिर देखा जायेगा।'

गाड़ी प्लेटफार्म पर आयी। वे लोग हुगली का टिकट खरीदकर बढ़ गये। धर्मदास देवदास के पास ही रहा। सन्ध्या के कुछ पहले ही देवदास की आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। धीरे-धीरे धुआंधार बुखार चढ़ आया। उन्होंने धर्मदास को बुलाकर कहा—'धर्मदास आज ऐसा मालूम पड़ता है कि घर भी पहुंचना कठिन होगा।'

धर्मदास ने डरकर कहा—'क्यों भैया?'

देवदास ने हंसने की चेष्टा करके कहा—'फिर बुखार चढ़ आया धर्मदास!'

काशी को गाड़ी पार कर गयी तब तक देवदास अचेत थे। पटना के पास आकर जब उन्हें होश हुआ, तो कहा—'तब तो धर्मदास, मां के पास सचमुच नहीं जा सके।'

धर्मदास ने कहा—'चलो, भैया, पटना में उतरकर हम डॉक्टर को दिखा लें।'

उत्तर में देवदास ने कहा—'रहने दो, अब हम लोग घर पर ही चलकर उतरेंगे।'

गाड़ी जब पंडुआ स्टेशन पर आकर खड़ी हुई, तब पौ फट चुकी थी। रात-भर खूब वर्षा हुई थी, अभी थोड़ी देर से थमी हुई है। देवदास उठ खड़े हुए। नीचे धर्मदास सोया हुआ था। धीरे से उसके सिर पर हाथ रखा, किन्तु लज्जावश जगा नहीं सके। फिर द्वार खोलकर धीरे से नीचे प्लेटफार्म पर उतर गये। गाड़ी सोये हुए धर्मदास को लेकर चली गयी। कांपते-कांपते देवदास स्टेशन के बाहर आये। एक गाड़ीवान को बुलाकर पूछा—'क्या हाथीपोता चल सकता है?'

उसने एक बार मुंह की ओर, फिर एक बार इधर-उधर देखकर कहा—'नहीं बाबू, रास्ता अच्छा नहीं है। घोड़े की गाड़ी ऐसे कीचड़ पानी में उधर नहीं जा सकेगी।'

देवदास ने उद्विग्न होकर पूछा—'क्या पालकी मिल सकती है?'

गाड़ीवान ने कहा—'नहीं।'

देवदास इसी आशंका में धप् से बैठ गये कि क्या तब जाना नहीं होगा? उनके मुख से उनकी अन्तिम अवस्था के चिन्ह सुस्पष्ट प्रकट हो रहे थे। एक अन्धा भी उसे भलीभांति देख सकता था।

गाड़ीवान ने दयार्द्र होकर पूछा—'बाबूजी, एक बैलगाड़ी ठीक कर दें?'

देवदास ने पूछा—'कब पहुंचूंगा?'

गाड़ीवान ने कहा—'रास्ता अच्छा नहीं है, इससे शायद दो दिन लग जायेंगे।'

देवदास ने मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे कि दो दिन जीते रहेंगे या नहीं। पर

पार्वती के पास जाना जरूरी है। इस समय उनके मन में पिछले दिनों के बहुत-से झूठे आचार-व्यवहार और बहुत-सी झूठी बातें एक-एक करके स्मरण आने लगीं। किन्तु अन्तिम दिन की इस प्रतिज्ञा को सच करना ही होगा। चाहे जिस तरह से हो, एक बार उसे दर्शन देना ही होगा। पर अब इस जीवन की अधिक मियाद बाकी नहीं है, इसी की विशेष चिन्ता है।

देवदास जब बैलगाड़ी में बैठ गये, तो उन्हें माता का ध्यान आया। वे व्याकुल होकर रो पड़े। जीवन के इस अन्तिम समय में एक और स्नेहमयी पवित्र प्रतिमा की छाया दिखायी पड़ी—यह छाया चन्द्रमुखी की थी। जिसे पापिष्ठा कहकर सर्वदा घृणा की, आज उसी को जननी की बगल में गौरवमय आसन पर आसीन देख उनकीं आंखों से झर-झर जल झरने लगा। अब इस जीवन में उससे फिर कभी भेंट नहीं होगी और तो क्या वह बहुत दिन तक उनके विषय में कोई खबर तक न पायेगी! तब भी पार्वती के पास चलना होगा। देवदास ने प्रतिज्ञा की थी कि एक बार वे और भेंट करेंगे। आज उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करना होगा। रास्ता अच्छा नहीं है। वर्षा के कारण कहीं-कहीं जल जमा हो गया है और कहीं अगल-बगल की पगडंडी कटकर गिर पड़ी है। सारा रास्ता कीचड़ से भरा हुआ है। बैलगाड़ी हचक-हचक कर चलती है। कहीं उतर कर चक्का ठेलना पड़ता है, कहीं बैलों को बेरहमी के साथ मारना पड़ता है—चाहे जिस तरह से हो, यह सोलह कोस का रास्ता तय करना ही होगा! हर-हर करके ठंडी हवा बह रही थी। आज भी उन्हें सन्ध्या के बाद विषम ज्वर चढ़ आया। उन्होंने डरकर पूछा—'गाड़ीवान, और कितना चलना होगा?'

गाड़ीवान ने जवाब दिया—'बाबू, अभी आठ-दस कोस और चलना है।'

'जल्दी से चलो, तुम्हें अच्छा इनाम मिलेगा।'—जेब में सौ रूपये का नोट था, उसी को दिखलाकर कहा—'जल्दी चलो, सौ रूपये इनाम दूंगा।'

इसके बाद कब और किस भांति सारी रात बीत गयी—देवदास को इसकी खबर नहीं। बराबर अचेत रहे। सुबह जब ज्ञान हुआ तो कहा—'अरे अभी कितनी दूर है? क्या इस रास्ते का अन्त नहीं होगा?'

गाड़ीवान ने कहा—'अभी छः कोस है।' देवदास ने एक गहरी सांस लेकर कहा—'जरा जल्दी चलो, अब समय नहीं है।'

गाड़ीवान इसे समझ न सका, किन्तु नये उत्साह से बैलों को ठोंक-ठाक्कर और गाली-गलौज देकर हांकने लगा। प्राणपण से गाड़ी चल रही थी, भीतर देवदास छटपटा रहे थे। एकमात्र यही विचार चक्कर लगा रहा था कि भेंट होगी या नहीं? पहुंव सकेंगे या नहीं? दोपहर के समय गाड़ीवान ने बैलों को भूसी खाने को दी, स्वयं भी दाना पानी किया। फिर पूछा—'बाबू, आप कुछ अन्न-जल नहीं करेंगे?'

'नहीं, बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दे सकते हो?'

उसने पास की पोखरी से पानी ला दिया। आज सन्ध्या के बाद बुखार के साथ देवदास की नाक की राह बूंद-बूंद खून गिरने लगा। उन्होंने भर-जोर नाक को दबाया। फिर मालूम हुआ की दांत के पास से खून बाहर आ रहा है। सांस लेने में भी कष्ट होने लगा। हांफते-हांफते कहा—'और कितनी दूर...?'

गाड़ीवान ने कहा—'दो कोस और है। रात को दस बजे पहुंचेगें।'

देवदास ने बड़े *कष्ट के साथ रास्ते की ओर देखकर कहा—भगवन !'*

गाड़ीवान ने पूछा—'बाबू, कैसी तबीयत है ?

देवदास इस बात का जवाब नहीं दे सके। गाड़ी चलने लगी, पर दस बजे नहीं पहुंची। लगभग बारह बजे रात को गाड़ी हाथीपोता के जमींदार के मकान के सामने पीपल के पेड़ के नीचे आकर खड़ी हुई।

गाड़ीवान ने बुलाकर कहा—'बाबू, नीचे उतरिये।'

कोई उत्तर नहीं मिला। तब उसने डरकर मुंह के पास दीया लाकर देखा, कहा—'बाबू, क्या सो गये हैं ?'

देवदास देख रहे थे, होंठ हिलाकर कुछ कहा, किन्तु कोई शब्द नहीं हुआ। गाड़ीवान ने फिर बुलाया—'बाबू !'

देवदास ने हाथ उठाना चाहा, किन्तु उठा नहीं सके। केवल दो बूंद आंसू उनकी आंखों के कोण से बाहर ढुलक पड़े। गाड़ीवान ने तब अपनी बुद्धि के अनुसार बांसों को बांधकर एक पलंग बनाया, उसी पर बिस्तर बिछाकर बड़े कष्ट से देवदास को लाकर सुला दिया। बाहर एक मनुष्य भी दिखायी नहीं पड़ता था। जमीदार के घर में सब लोग सो रहे थे। देवदास ने अपनी जेब से बड़े कष्ट से सौ रूपये का एक नोट बाहर निकाला। लालटेन की रोशनी में गाड़ीवान ने देखा कि बाबू उसी की ओर देख रहे हैं, परन्तु कुछ कह नहीं सकते हैं। उसने अवस्था देखकर नोट लेकर चादर मे बांध लिया। शाल से देवदास का सारा शरीर ढंका था, सामने लालटेन जल रही थी और पास में नया साथी गाड़ीवान था।

पौ फटी। सुबह के समय जमीदार के घर से लोग बाहर निकले। एक आश्चर्यमय दृश्य ! पेड़ के नीचे एक आदमी मर रहा था। देखने से सद्कुल का जान पड़ता था। शरीर पर शाल, पांव में चमकता हुआ जूता, हाथ में अंगूठी पड़ी हुई थी। एक-एक करके बहुत-से लोग जमा हो गये। क्रम से भुवन बाबू के कान तक यह बात पहुंची, वे डॉक्टर को साथ लेकर स्वयं आये। देवदास ने सबकी ओर देखा; किन्तु उनका कंठ रूद्ध हो गया था—एक बात भी नहीं कह सके, केवल आंखों से जल बहता रहा। गाड़ीवान जो कुछ जानता था, कह सुनाया, परन्तु उससे कुछ विशेष बातें नहीं मालूम हुई। डॉक्टर ने कहा—'ऊर्ध्व श्वास चल रहा है, अब शीघ्र ही मृत्यु होगी।'

सबने कहा—'आह !'

घर में ऊपर बैठी हुई पार्वती ने यह दयनीय कहानी सुनकर कहा—'आह !'

किसी एक आदमी ने तरस खाकर दो बूंद जल और तुलसी की पत्ती मुंह में छोड़ दी। देवदास ने एक बार उसकी ओर करूण-दृष्टि से देखा, फिर आंखें मूंद ली। कुछ क्षण सांस चलती रही, फिर सर्वदा के लिए सब शान्त हो गया। अब कौन दाह-कर्म करेगा, कौन छुएगा, कौन जाति है आदि विविध प्रश्नों को लेकर तर्क-वितर्क होने लगा। भुवन बाबू ने पास के पुलिस-स्टेशन में इसकी खबर दी। इन्सपेक्टर आकर जांच-पड़ताल करने लगे। प्लीहा और फेफड़े के बढ़ने के कारण मृत्यु हुई है, नाक और मुख में खून के दाग लगे है। जेब से दो पत्र निकले। एक तालसोनापुर के द्विजदास मुखोपाध्याय ने बम्बई

के देवदास को लिखा था कि रूपये का इस समय प्रबन्ध नहीं हो सकता। और एक काशी से हरिमती देवी ने उक्त देवदास को लिखा था कि कैसे हो?

बाएं हाथ में अंग्रेजी में नाम का पहला अक्षर गुदा हुआ था। इन्सपेक्टर ने निश्चित करके कहा—'यह मनुष्य देवदास है।'

हाथ में नीलम की अंगूठी थी—दाम अन्दाजन डेढ़ सौ था। शरीर पर एक जोड़ा शाल था—दाम अन्दाजन दो सौ था। कोट, कमीज, धोती आदि सब लिखे गये। चौधरी और महेन्द्रनाथ दोनों ही वहां पर उपस्थित थे। तालसोनापुर का नाम सुनकर महेन्द्र ने कहा—'छोटी मां के मायके के तो नहीं... !'

चौधरी जी ने तुरन्त बात काटकर कहा—'वह क्या यहां पर शिनाख्त करने आवेंगी?'

दारोगा साहब ने हंसकर कहा—'कुछ पागल तो नहीं हो।'

ब्राह्मण का मृत-देह होने पर भी गांव के किसी ने स्पर्श करना स्वीकार नहीं किया, अतएव चांडाल आकर बांध ले गये। फिर किसी सूखे हुए पोखरे के किनारे आधे झुलसे हुए शरीर को फेंक दिया, कौवे और गिद्ध उस पर आकर बैठ गये, सियार और कुत्ते परस्पर कलह में प्रवृत हुए। तब भी जिस किसी ने सुना, कहा—'आह!' दास-दासी भी जहां-तहां भी उसकी चर्चा करने लगे —'कोई बड़े आदमी थे! दो सौ रूपये का शाल, डेढ़ सौ रूपये की अंगूठी, सब दारोगा के पास जमा है; दो चिट्ठी थीं वे भी उन्हीं लोगों ने रख ली हैं।'

यह सब समाचार पार्वती के कान तक भी पहुंचे; किन्तु वह आजकल बड़ी अनमनी रहती है, किसी विषय पर विशेष ध्यान नहीं देती। अस्तु, इस व्यापार के विषय में भी कुछ ठीक नहीं समझ सकी। पर जब सभी के मुख पर इस चर्चा को पाया तो पार्वती ने भी इसके विषय में कुछ विशेष जानने की इच्छा से एक दासी से पूछा—'क्या हुआ है? कौन मरा है?'

दासी ने कहा—'आह, यह कोई नहीं जानता मां! पिछले जन्म का कोई यहां की मिट्टी का धरता था, वही यहां केवल मरने आया था। कल सारी रात यहीं पर पड़ा रहा। आज सुबह मर गया।'

पार्वती ने एक लम्बी सांस लेकर कहा—'क्या उसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता?'

दासी ने कहा—'महेन्द्र बाबू जानते होंगे, मैं कुछ नहीं जानती।'

महेन्द्रकी बुलाहट हुई। उन्होंने कहा—'तुम्हारे देश के देवदास मुखोपाध्याय थे।'

पार्वती महेन्द्र के अत्यन्त निकट सरक आयी, एक तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा—'क्या देव दादा? कैसे जाना?'

'जेब में दो चिट्ठियां थीं। एक द्विजदास की...'

पार्वती ने बाधा देकर कहा—'हां, उनके बड़े भाई की।'

'और एक काशी से हरिमती देवी ने लिखा था...'

'हां, वे मां हैं।'

'हाथ पर नाम गुदा था...'

पार्वती ने कहा—'हां, जब पहले-पहल कलकत्ता गये थे तो लिखाया था।'

'एक नीलम की अंगूठी थी...'

'पिता के समय में उसे बड़े चाचा ने दिया था...मैं जाऊंगी...'

कहते-कहते पार्वती दौड़ पड़ी। महेन्द्र न हत्बुद्धि होकर कहा—'ओ मां, कहां जाओगी?'

'देवदास के पास।'

'वे अब नहीं हैं, डोम ले गये।'

'अरे, बाप रे बाप!'—कहकर रोती-रोती पार्वती दौड़ी।

महेन्द्र ने दौड़कर सामने आकर बाधा दी। कहा—'क्या पागल हुई हो, मां! कहां जाओगी?'

पार्वती ने महेन्द्र की ओर एक तीव्र दृष्टि से देखकर कहा—'महेन्द्र, क्या मुझे सचमुच पागल समझ रखा है? रास्ता छोड़ो।'

उसकी ओर देखकर महेन्द्र ने रास्ता छोड़ दिया, चुपचाप पीछे-पीछे चलने लगा। बाहर तब भी नायब-गुमाश्ता आदि काम कर रहे थे। वे लोग देखने लगे। चौधरीजी ने चश्मा लगाकर पूछा—'कौन जा रहा है?'

महेन्द्र ने कहा—'छोटी मां।'

'यह क्यों? कहां जाती है?'

महेन्द्र ने कहा—'देवदास को देखने।'

भुवन चौधरी ने चिल्लाकर कहा—'तुम सभी की बुद्धि मारी गयी है! पकड़ो-पकड़ो, पकड़कर उसे ले आओ। सब पागल हो गये! ओ महेन्द्र, जल्दी करो, दौड़ो!'

इसके बाद नौकर-नौकरानियों ने मिलकर पार्वती को पकड़ा और उसकी मूर्च्छित देह को भीतर ले गये। दूसरे दिन उसकी मूर्च्छा टूटी, पर उसने कोई बात नहीं कही, केवल एक दासी को बुलाकर पूछा—'रात को वे आते थे या नहीं? सारी रात... !'६

इसके बाद पार्वती चुप हो रही।

अब इतने दिनों बाद पार्वती का क्या हुआ, वह कैसी है, यह हम नही जानते; जानने की इच्छा भी नहीं होती। केवल देवदास के लिए हृदय बहुत क्षुब्ध रहता है। आप लोगों में से भी जो कहानी को पढ़ेंगे, सम्भवतः मेरे ही समान क्षुब्ध होंगे। फिर भी यदि देवदास के समान हत्भाग्य, असंयमी और पापिष्ठ के साथ किसी का परिचय हो तो वह उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करे, प्रार्थना करे कि और चाहे जो हो, पर उनकी जैसी मृत्यु किसी की न हो! मृत्यु होने में कोई हानि नहीं है, किन्तु उस समय एक स्नेहमयी हाथ का स्पर्श सिर पर अवश्य रहे, एक करूणार्द्र मुख को देखते-देखते इस जीवन का अन्त हो। जिससे मरने के समय किसी की आंखों का दो बूंद जल देखकर वह शान्ति से मर सके।



मूल बांग्ला : निष्कृति
प्रथम प्रकाशन : जुलाई सन् 1917

छुटकारा

छुटकारा

1

भवानीपुर के चटर्जी का परिवार साझा है। दो सहोदर भाई हैं गिरीश और हरीश और एक चचेरा छोटा भाई रमेश। पहले इनका पैतृक घर-द्वार और जमीन-जायदाद रूपनारायण नदी के किनारे हावड़ा जिले के विष्णुपुर गाँव में थी। तब गिरीश के पिता भवानी चटर्जी की हालत भी अच्छी थी। परन्तु अचानक एक समय रूपनारायण ने प्रचण्ड भूख से भवानी की जमीन-जायदाद, तालाब-बगीचा वगैरह निगलना इस तरह शुरू कर दिया कि पाँच-छः साल के अन्दर कुछ भी बाकी न छोड़ा। अन्त में उसने सात पीढ़ियों से चले आये हुए घर-द्वार तक को निगलकर इस ब्राह्मण-परिवार को बिल्कुल नंगा-फकीर करके अपनी सीमा से निकाल बाहर किया। भवानी ने सपरिवार भागकर भवानीपुर में आश्रय लिया। यह सब बहुत दिनों की बातें है। उसके बाद गिरीश और हरीश दोनों ही पढ़-लिखकर वकील बन गये, काफी धन-दौलत पैदा की, मकान बनवाया- अर्थात् उनका जो कुछ गया था, उससे चौगुना उन्होंने बना लिया है। इस समय बड़े भाई गिरीश की सालाना आमदनी है लगभग चौबीस-पचीस हजार रुपये, हरीश भी पाँच-छः हजार कमा लेता है,-सिर्फ कुछ कमा नहीं सकता है तो रमेश। लेकिन वह बिल्कुल ही कुछ न करता हो, सो बात नहीं। दो-तीन बार वह कानून की परीक्षा फेल कर चुका है, और हाल में न-जाने कौन-से एक व्यापार में बड़े भाई के तीन-हजार रुपये गँवाकर अब घर के अखबारों की सहायता से देशोद्धार के कार्य में लग गया है।

परन्तु, अब इतने दिनों का संयुक्त परिवार टूटने की तैयारियाँ करने लगा। इसका कारण यह है कि मझली बहू और छोटी-बहू में अब किसी भी तरह बन नहीं रही है। हरीश अब तक कलकत्ते में नही रहते थे, सपरिवार मुफस्सिल में रहकर ही प्रैक्टिस किया करते थे। बीच-बीच में दस-पाँच दिन के लिए उनके परिवार घर आने पर यद्यपि इन दोनों नारियों का, यह थोड़ा-सा समय, विशेष सद्‌भाव के साथ न कटता था, परन्तु, लड़ाई-झगड़े को ऐसा बड़ा मौका नहीं आने पाता था। करीब एक महीना हुआ, हरीश भी शहर में आकर सदर में ही वकालत कर रहे हैं और घर से सुख-शान्ति भागने की तैयारी कर रही है। इस बार जब से ये लोग आये हैं, तब से अब तक इन दोनों बहुओं के मन-मुटाव का मामला ऊँचे स्तर तक नहीं पहुँचा था। कारण, छोटी बहू अब तक यहाँ थी नहीं। रमेश की स्त्री शैलजा, अपने एक मात्र पुत्र पटल और सौत के लड़के कन्हाईलाल को बड़ी जिठानी के जिम्मे छोड़कर अपने मरणासन्न पिता को देखने कृष्णानगर चली

उनकी प्रकृति ठीक समझ नहीं आती, इसीलिए शायद मुहल्ले में उनकी भलाई और बुराई दोनों ही कुछ अतिशयोक्ति से की जाती हैं।

सिद्धेश्वरी के गरीब पिता-माता अब भी जीवित हैं। पिछले पाँच-छै वर्षों से लगातार कोशिश करके इस बार ही पूजा के समय वे अपनी लड़की को विदा कराकर ले जा सके थे। पर सिद्धेश्वरी अपनी घर-गृहस्थी छोड़कर ज्यादा दिन वहाँ रह न सकी, महीने-भर बाद ही वापस चली आयीं; आते वक्त काटोआ से मलेरिया साथ ले आयीं और घर आकर भी बदपरहेजी बन्द नहीं की। उसी तरह सबेरे उठकर नहाने लगी और कुनेन-सेवन के लिए राजी न हुई। अतएव भुगतने भी लगीं। दो-चार दिन जाते ही बुखार आता, और कुछ दिन बाद फिर गिर रहतीं। नतीजा यह हो रहा था कि बहुत कमजोर हुई जा रही थीं। इसी समय शैल ने मायके से लौटकर इलाज के बारे में कहना-सुनना शुरू कर दिया। वह बचपन से ही बड़ी के पास रहती आयी है, इसलिए वह जितना जोर कर सकती है, मझली बहू या और कोई उतना नही कर सकता। एक कारण और भी था। मन-ही-मन सिद्धेश्वरी उससे डरती भी बहुत थी। शैल बहुत ही गुस्सैल है और ऐसा कठोर उपवास कर सकती है कि एक बार शुरू कर देने पर तीन दिन तक किसी भी तरह उसके मुँह में पानी नहीं दिया जा सकता,-यही था सिद्धेश्वरी के लिए सबसे बड़ा घबराने का कारण।

शैल की मौसी का घर था पटलडाँगा में। इस बार जब से वह कृष्णनगर से लौटी है तब से उनसे भेंट नहीं कर सकी है। आज एकादशी है, सास के लिए निरामिष रसोई बनाने की जरूरत नही थी, इसी से सबेरे तक सिद्धेश्वरी के मझले लड़के हरिचरण पर दवा पिलाने का भार सौंपकर वह पटलडाँगा चली गयी थी।

जाड़े के दिन हैं, दो घटे हुए, संध्या हो गयी। कल सबेरे से ही सिद्धेश्वरी का ठीक तौर से बुखार नही उतरा। आज इस समय वे रजाई ओढ़कर चुपचाप निर्जीव की भाँति अपने उस चौड़े पलग के एक किनारे पड़ी सो रही थीं और उसी पलंग पर तीन-चार लड़के—लड़किया शोर-गुल मचाकर खेल रहे थे। नीचे कन्हाईलाल दीया के उजाले के सामने बैठकर भूगोल रट रहा था,-यानी किताब खोलकर मुँह बाये बच्चों की छेडछाड़ देख रहा था। उधर की ओर शय्या पर हरिचरण सिरहाने के पास बत्ती रखकर चित्त पड़ा एकाग्र चित्त से किताब पढ रहा था।शायद परीक्षा के लिए पढ़ रहा था। क्योंकि इतने शोर-गुल मे भी उसका लेशमात्र धैर्यच्युत नही हो रहा दीखता था। जो बच्चे अब तक शोर-गुल मचाते हुए बिस्तर पर खेल रहे थे, वे सबके सब मझले बाबू हरीश की सन्तान हैं।

विपिन ने सहसा खिसक के सिद्धेश्वरी के मुँह के ऊपर झुककर कहा,'आज मेरी दाहिनी तरफ सोने की पारी है न, बड़ी माँ ?" पर बड़ी माँ के जवाब देने से पहले ही नीचे से कन्हाई ने जोर से कहा, "नही विपिन, तुम नही, —बड़ी मां के दाहिने आज मैं सोऊँगा !"

विपिन ने प्रतिवाद किया,"तुम कल तो सोये ही थे, भइया !"

"कल सोया था ? अच्छा, तो आज बायीं तरफ सही !" ज्यों ही उसने यह कहा, त्यों

ही पटल का छोटा-सा मस्तक रजाई के भीतर से ऊँचा उठ, वह अब तक जी-जान से कोशिश करके ताईजी के बायीं ओर सटकर पड़ा था। बेदखल होने की सम्भावना से उसने इस हुल्लड़ में शरीक होने तक का साहस नही किया था। उसने क्षीण कण्ठ से कहा,"मैं अब तक चुपचाप सोया हुआ हूँ जो !"

कन्हाई बड़े भाई के अधिकार से हुंकार के साथ बोल उठा,"पटल, बड़े भइया के साथ बहस मत करो, माँ से कह दूँगा।"

पटल बेचारा और कोई रास्ता न देख अब ताईजी के गले से जा लिपटा और उसने रोने के ढंग पर शिकायत की, "बड़ी माँ, मैं कभी से सो रहा हूँ जो !"

कन्हाई छोटे भाई की गुस्ताखी पर आँखें तरेरकर 'पटल'कहकर गरजा और सहसा चुप हो गया।

ठीक इसी समय कमरे के बाहर वाले बरामदे के एक तरफ से शैलजा की आवाज आई," अरे बाप रे ! जीजी के घर मे क्या डाका पड़ रहा है ?"

साथ ही एकदम परिवर्तन हो गया ! उस बिछौने पर हरिचरण पाठय् पुस्तक को चटसे तकिये के नीचे छिपाकर अब शायद कोई अपाठय् पुस्तक खोलकर बैठ गया और उसे एकटक देखने लगा ! उसकी आँखो से मालूम होता था कि वह अत्यन्त ध्यान से पुस्तक पढ़ने में मशगूल है। कन्हाई ने बायी और दाहिनी ओर की समस्या हल किये बिना ही फिलहाल चीत्कार करना शुरू कर दिया-"जो विस्तीर्ण जल-राशि..." और सबसे अधिक आश्चर्य की बात हुई उस बच्चो के दल के संबंध मे। वह जादू के खेल की तरह न-जाने कहाँ एक क्षण में गायब हो गया,- उसका कुछ निशान भी न रहा। वह शैलजा कलकत्ते से अभी तुरंत ही लौटकर बड़ी जिठानी के लिए एक कटोरा गरम दूध हाथ मे लिये कमरे मे आ खड़ी हुई। अब कन्हाईलाल के महासमुद्र के गभीर कल्लोल के सिवा कमरे मे एकदम सन्नाटा छा गया। उधर हरिचरण इस तरह पाठ पढने लगा कि यदि उसकी पीठ पर से हाथी चला जाय तो भी शायद उसका ध्यान न उचटे ! क्योंकि इससे पहले वह 'आन्नद-मठ' पढ रहा था। इसके भवानन्द और जीवानन्द छोटी चाची के आकस्मिक शुभागमन से विलुप्त हो गये। वह सोच रहा था कि उसके हाथ की कसरत वे देख पायी हैं या नही ! और इस बात को ठीक न जानने तक उसकी छाती धुकुर-पुकुर करती थी रही।

शैलजा ने कन्हाई की तरफ देखकर कहा,"आ रे 'विस्तीर्ण जलराशि', अब तक क्या हो रहा था ?"

कन्हाई ने मुँह उठाकर अकाल पीडितो की तरह क्षीण आवाज मे नाक के स्वर से कहा,"मैं नही माँ विपिन और पटल थे।"

कारण, ये ही दोनो उसके बायी और दाहिनी ओर के मामले के प्रधान शत्रु है। उसने बिना किसी सकोच के इन दो निरपराधियो को विमाता के हाथ सौप दिया।

शैलजा ने कहा, "कोई तो देख नही पड़ता, वे सबके सब भाग कहाँ गये ?"

अब तो कन्हाई व विपुल उत्साह के साथ खड़े होकर हाथ के इशारे से बिछोना दिखाकर कहा, "कोई भागा नही, माँ सब इस रजाई मे दुबके पड़े हैं।"

उसकी बात सुनकर और आँख-मुँह की भाव भँगी देखकर शैलजा को हँसी आ

गयी। दूर से उसे इसी की आवाज ज्यादा सुन पड़ी थी। अब वह बड़ी जिठानी को लक्ष्य करके बोली,"जीजी, खाये डालते हैं ये तुमको! तुमसे हाथ नही उठाया जाता तो क्या एक बार धमकाया भी नहीं जा सकता इन्हें? अरे ओ लड़को,-निकलो, चलो मेरे साथ!"

सिद्धेश्वरी अब तक चुप थीं, अब मृदु कण्ठ से कुछ नाराज होकर बोलीं,"ये लोग अपने आप खेला करते हैं, मुझे ही क्यों खा डालेंगे और तेरे साथ ही क्यों चले जायँ? नहीं नहीं, मेरे सामने किसी को मारना-पीटना मत। जा तू यहाँ से,-रजाई के भीतर सब बच्चे घबरा रहे हैं।"

शैलजा ने जरा हँसकर कहा,"मैं क्या सिर्फ मारा पीटा ही करती हूँ जीजी?"

"बहुत ज्यादती करती है तू शैल!"छोटी बहन की तरह वे उसका नाम लेकर पुकारा करती हैं। बोलीं, "तुझे देखते ही इन लोगों का चेहरा स्याह पड़ जाता हैं, —अच्छा जा न तू, सामने से; ये लोग बाहर निकलें।"

"इन्हें ले जाऊँगी। इस तरह दिन-रात परेशान करते रहेंगे तो तुम्हें आराम न होगा। पटल सबसे शान्त है, वही सिर्फ बड़ी माँ के पास सोने पायेगा, और सबको आज से मेरे पास सोना होगा।"कहते हुए शैलजा ने जज-साहब की तरह अपनी राय देकर बड़ी जिठानी की तरफ देखकर कहा,"तुम अब उठो, दूध पीओ, —क्यों रे हरी, साढ़े छै बजे तूने अपनी माँ को दवा तो पिला दी थी?"

प्रश्न सुनते ही हरिचरण का चेहरा फक्क पड़ गया। वह 'सन्तानों' के साथ अब तक वन-जंगलों में घूम-फिर रहा था, देश-उद्धार कर रहा था, तुच्छ दवा और पथ्य की बात तो उसे ख्याल ही नहीं था। उसके मुँह से बात भी नहीं निकली।

परन्तु सिद्धेश्वरी स्पष्ट स्वर में बोल उठीं," दवा-अवा मुझसे नहीं पी जायगी, शैल!"

"तुमसे नहीं कह रही जीजी, तुम चुप रहो। "कहकर हरिचरण के बिछौने के बहुत ही पास जाकर उसने पूछा,"तुमसे पूछती हूँ, दवा दी थी?" उनके कमरे में घुसने से पहले ही हरिचरण सिमट-सिमटकर उठकर बैठ गया था, अब वह डरे स्वर में बोला,"माँ पीना नहीं चाहतीं जो!"

शैलजा ने धमकाकर कहा,"फिर बात काटता है। तूने दी थी या नहीं, सो बता?"

चाची के कठोर शासन से लड़के का उद्धार करने के लिए सिद्धेश्वरी उद्विग्न हो उठीं और बैठकर बोलीं,"क्यों तू इतनी रात को बखेड़ा करने आ गयी, बता तो शैल? ओ रे ओ हरिचरण, दे जा ने जल्दी, क्या दवा-अवा मुझे देनी है सो!" हरिचरण जरा हिम्मत पाकर चिन्तित भाव से पलंग के दूसरी तरफ उतर पड़ा और दराज के ऊपर से एक शीशी और एक छोटा काँच का गिलास हाथ में लेकर माँ के पास आ खड़ा हुआ। वह शीशी का डाँट खोलना ही चाहता था कि शैलजा ने वहीं से खड़े खड़े कहा,"गिलास में दवा डालकर दे देने से ही हो गया, क्यों रे हरी? पानी नहीं चाहिए? मुँह में डालने को और कुछ नहीं चाहिए? इस तरह की बेगार टालाना मैं निकालती हूँ तुम लोगों की ठहरो!"

दवा की शीशी हाथ में ले सकने से हरिचरण को सहसा भरोसा हो गया था कि चलो, शायद आज के लिए मुसीबात टल गयी। पर इस 'मुँह में डालने को और कुछ'

के प्रश्न से वह डर गया। उसने लाचारी से इधर-उधर देखकर करूण कण्ठ से कहा,"कहीं भी कुछ है नहीं जो, चाचीजी !"

"बगैर लाये, 'कहीं से कुछ'क्या उड़कर आ जायेगा रे ?"

सिद्धेश्वरी ने गुस्से में आकर कहा,"वह कहाँ क्या पावेगा, जो देगा ? ये सब क्या मरदों के काम हैं ? तेरी तो जितनी कड़ाई हैं, सब इन्ही लड़कों पर हैं। नीली से क्यों नहीं कह जाते बना ? मुँहजली लड़की तेरे चले जाने के बाद से इस कमरे में झांकने भी नहीं आयी। एक बार आकर आँख से देखा तक नहीं कि माँ मर गयी या जिन्दी है।"

"वह क्या यहाँ थी जीजी, वह तो मेरे साथ पटलडाँगा गयी थी।"

"क्यों गयी थी ? किस हिसाब से तू उसे अपने साथ ले गयी ? दे हरिचरण, तू दवा यों ही दे दे,-मैं ऐसे ही पी लूँगी।"कहकर सिद्धेश्वरी ने अनुपस्थित लड़की पर सारा दोष उड़ेलकर दवा के लिए हाथ बढ़ा दिया।

"जरा ठहर हरी, मैं लाती हूँ",कहकर शैलजा कमरे से बाहर चली गयीं।

2

हरीश की स्त्री नयनतारा ने विदेश में रहकर खूब साहबीपन सीख लिया था। अपने बच्चों को वह विलायती पोशाक के बगैर बाहर न निकलने देती थी। आज सबेरे सिद्धेश्वरी पूजा-पाठ में बैठी थीं, लड़की नीलाम्बरी दवा का सामान लिए सामने बैठी थी, इतने में नयनतारा ने कमरे में आकर कहा, "जीजी, दरजी अतुल का कोट बनाकर लाया हैं, उसे बीस रूपये देने हैं।"

सिद्धेश्वरी जप भूलकर कह उठी,"एक कुर्ते के दाम बीस रुपये ?"

नयनतारा ने जरा हँसकर कहा,"ये क्या ज्यादा हैं, जीजी ? मेरे अतुल के तो एक-एक सूट बनवाने में साठ-सत्तर रूपये तक लग गये है।"

'सूट' शब्द सिद्धेश्वरी की समझ में नही आया, वे देखती रह गयीं। नयनतारा ने समझाकर कहा,"कोट, पैण्ट, नेक टाई,-इन सबको हम लोग 'सूट'कहते हैं।"

सिद्धेश्वरी ने क्षुब्ध भाव से लड़की से कहा," नीली अपनी चाची को बुला ला, रूपये निकाल कर दे जाय।"

नयनतारा ने कहा,"चाबी मुझे ही दे दो न, —मैं ही निकालकर ले आऊँ।"

नील उठकर खड़ी हो गयी थी,-उसी ने कहा, "माँ के पास चाबी कहाँ से आयी, लोहे के सन्दूक की चाबी हमेशा चाची के पास ही रहती है"-और वह चली गयी।

बात सुनकर नयनतारा का चेहरा सुर्ख हो गया। बोली,"छोटी बहू इतने दिनों से ही थी नहीं, इसी से मैंने समझा था कि सन्दूक की चाबी शायद तुम्हारे पास होगी जीजी।"

सिद्धेदश्वरी ने माला फेरना शुरू कर दिया था, इसलिए जवाब नहीं दिया।

दसेक मिनट बाद जब रूपये निकाल देने के लिए शैलजा कमरे में घुसी तब देखा कि अतुल के नये कोट के बारे में वहाँ बाकायदा आलोचला हो रही है। अतुल कोट पहनकर उसकी काट-छाँट आदि समझा रहा है और उसकी माँ तथा हरिचरण मुग्ध दृष्टि देखते हुए फैशन के विषय में ज्ञानार्जन कर रहे हैं। अतुल ने कहा,"छोटी चाची, तुम देखो

तो कैसा बढ़िया बनाया है।"

शैलजा ने संक्षेप में "अच्छा" कहकर सन्दूक में से रूपये निकालकर और गिनकर उसके हाथ में दे दिये।

नयनतारा ने उपस्थित सभी लोगें को सुनाते हुए अपने लड़के को लक्ष्य करके कहा, "तेरे पास ट्रँक-भरे तो कपड़े हैं, तो भी तेरा पेट किसी तरह नहीं भरता !"

लड़के ने अधीरता के साथ कहा; कितनी बार कहूँ माँ, तुमसे ? आजकल का फैशन ही ऐसी काट-छाँट का है, इस तरह का कम से कम एक भी कोट न हो तो लोग हँसते हैं।" वह रूपये लेकर बाहर जा रहा था कि सहसा ठहरकर फिर बोला," अपने हरी-भाइया जो कोट पहनकर बाहर जाते हैं, उसे देखकर तो मुझको भी शरम लगती है। यहाँ झूल पड़ी है और वहाँ सिकुड़न पड़ी हुई है,-छिः छिः कैसा भद्दा दीखता है !" इसके बाद फिर हँसकर हाथ-पैर मटकाकर बोला, "ठीक जैसे कोई गाँव-तकिया पैदल चल रहा हो !"

लड़के की भाव-भंगिमा देखकर नयनतारा खिलखिलाकर हँस पड़ी और मुँह फेरकर हँसी को दबाने की चेष्टा करने लगी।

हरिचरण ने करूण दृष्टि से छोटी चाची के मुँह की तरफ देखकर मारे शरम के सिर झुका लिया।

सिद्धेश्वरी नाम मात्र को जप कर रही थीं, लड़के का चेहरा देखकर उन्हें व्यथा हुई। गुस्से में आकर बोलीं, "सच ही तो है। इन लोगों का क्या मन नहीं चलता शैल ? दे न, इन बेचारों को भी दो-चार कोट बनवा कर।'

अतुल ने बुजुर्गों की तरह हाथ हिलाते हुए कहा, "मुझे रूपये दो, ताईजी, अपने दरजी से फैशन के माफिक बनवा लूँगा,-अरे बाबा, मुझे वह धोखा देने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

नयनतारा ने अपने पुत्र की होशियारी के बारे में कुछ कहना चाहा किन्तु, इसके पहले ही शैलजा गम्भीर दृढ़ स्वर में बोल उठी, "तुम्हें पुरखापन दिखाने की जरूरत नहीं बेटा, तुम अपने चरखे में तेल दो जाकर। इनके कपड़े सिलाने के लिए और आदमी भी हैं।" इतना कहकर वह आँचल में बँधा हुआ चाबियों का गुच्छा झन्न से पीठ पर डालकर बाहर चली गयीं।

नयनतारा ने गुस्से में आकर कहा, "जीजी, सुन ली छोटी बहू की बातें ? क्यों, अतुल ने ऐसी कौन-सी बेजा बात कह दी, कहो तो भला ?"

सिद्धेश्वरी ने जवाब नहीं दिया। शायद इष्ट मंत्र जप रही थीं, इसी से सुन न सकीं। पर शैल ने सुन लिया। उसने दो कदम लौटकर मझली जिठानी की ओर देखकर कहा, "छोटी बहू की बातें जीजी ने बहुत सुनी हैं, —तुमने ही नहीं सुनी हैं। अतुल ने छोटा भाई होकर भी हरी की इस तरह खिल्ली उड़ाई और तुम खिलखिलाकर हँस पड़ी—यदि वह मेरा अपने पेट का जाया लड़का होता तो उसे आज जिन्दा ही गाड़ देती !"

इतना कह कर वह अपने काम से चली गयी।

सारा कमरा तक सन्न रह गया। थोड़ी देर बाद नयनतारा ने एक गहरी साँस लेकर बड़ी जिठानी को लक्ष्य करके कहा, "जीजी, आज मेरे अतुल का जन्मदिन है और छोटी बहू जैसी मुँह पर आयी, गाली देकर चली गयी।"

सिद्धेश्वरी छोटी देवरानियों के कलह की सूचना पाकर चुपचाप डरती हुई इष्ट नाम जपने लगीं।

नयनतारा ने जवाब न पाकर फिर कहा,"तुमने खुद अगर कुछ नहीं कर दिया तो फिर, जैसा कुछ हो, हम लोगों को ही कोई रास्ता निकाल लेना होगा।"

फिर भी जब सिद्धेश्वरी कुछ नही बोलीं, तब नयनतारा लड़के को लेकर धीरे से बाहर चली गयीं।

किन्तु दसेक मिनट बाद जैसे ही सिद्धेश्वरी जप पूरा करके उठी कि मझली बहू फिर आ खड़ी हुई। वह सिर्फ किवाड़ की ओट में खड़ी होकर बाट जोह रही थी।

सिद्धेश्वरी ने डरते हुए सूखे मुँह से पूछा,"क्या है मझली बहू?"

नयनतारा ने कहा,"सो ही जानने आयी हूँ। मैं किसी की खाती नहीं, पहनती नहीं जीजी, जो खड़ीखड़ी मुँह मूँदे झाड़ू खाऊँगी।"

सिद्धेश्वरी ने उसे शान्त करने के अभिप्राय से विनीत भाव से कहा,"झाड़ू मारेगी क्यों मझली बहू, उसका बात करने का ढंग ही ऐसा है। इसके सिवाए तुमसे तो उसने कुछ कहा नही, सिर्फ— ।"

"सिर्फ अतुल को ही जिन्दा गाड़ना चाहा था और मैं खिलखिलाकर हँसती हूँ! साग में मछली मत ढको जीजी,-झाड़ू और कैसे मारी जाती है? पकड़कर नही मारी, इसी से शायद तुम्हारे मन में नहीं बैठी, क्यों?"

सिद्धेश्वरी दंग रह गयीं। आहिस्ते से बोली, --कैसी बात है मझली बहू? क्या उसे मैंने सिखा पढ़ा दिया है?"

मझली बहू चाबी के लिए ही भीतर ही भीतर जली मरती थी। उसने उद्धत-भाव से जवाब दिया, "सो तो तुम्ही जानो! कोई किसी का मन जानने नही जाता जीजी, आँखों से देखकर,-कानों से सुनकर ही कहा जाता है। हम नये लोग तुम्हारी गृहस्थी में आ पड़े हैं, यदि हम तुम्हारे लिए आफत बला ही हो गये हैं, तो ठीक है, तुम खुद ही अपने मुँह से कह देती तो अच्छा होता, एक दूसरे ही जने को मेरे पीछे क्यों लगा दिया?"

इस आरोप का उत्तर सिद्धेश्वरी ढूँढकर भी मुँह पर न ला सकी, वे विह्वल-सी होकर देखती रह गयीं।

मझली बहू ने और भी अधिक कठोर स्वर में कहा, "हम लोग भी कुछ घास-फूंस नहीं खाते, जीजी,-सब समझते हैं। पर ऐसे न निकालकर दो मीठी बातों से बिदा कर देतीं तो देखने-सुनने से भी अच्छा लगता, हम लोग भी प्रेम से चले जाते। उफ्, वे सुनेंगे तो एकदम आसमान से गिर पड़ेंगे। इधर-उधर हर किसी से कहते फिरते है, हमारी भाभीजी आदमी नहीं साक्षात् देवी हैं!"

सिद्धेश्वरी रो दी। रूँधे हुए गले से बोलीं, "ऐसी बदनामी तो मेरे दुश्मन भी नहीं कर सकते मझली बहू! ये सब बाते देवरजी सुनें, इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। तुम लोग आये हो, इसकी मुझे कितनी खुशी है, —मेरे कन्हाई, पटल को ले आओ, मैं उनके सिर पर हाथ रखकर— ।"

बात खतम नही हुई। शैल एक कटोरा दूध लेकर भीतर आयी ओर बोली,"जप हो गया क्या?-अब जरा दूध पी लो जीजी।"

सिद्धेश्वरी रोना भूलकर चिल्ला उठीं,"चली जा मेरे सामने से,-दूर हो यहाँ से ।"

सहसा शैलजा हक्की-बक्की होकर देखने लगी ।

सिद्धेश्वरी ने रोते रोते कहा,"तेरे जो मुँह में आता है, सो क्यों कह देती है सबको ?"

"किससे मैंने क्या कहा है ?"

सिद्धेश्वरी ने इस प्रश्न को कान गे सुना भी नही, वे पहले की तरह फिर चिल्लाकर कहने लगी, "मुझसे कह कहकर तेरी हिम्मत बढ़ गयी है, —कौन तेरी बात की धौंस सहेगा ? सभी को तूने 'जीजी' पा लिया है क्या ? दूर हो जा मेरे सामने से !"

शैलजा ने स्वाभाविक भाव से कहा,"अच्छा दूध पी लो, मैं जाती हूँ । यह कटोरा मुझे अभी चाहिए हाँ !"

उसकी निरूद्विग्न बात सुनकर सिद्धेश्वरी अग्निमूर्ति हो उठी, बोलीं,"नही,नही पीती, कुछ नहीं खाती-पीती मैं, तू घर से बाहर जा, नही तो में जाती हूँ। दो मे से एक हुए बगैर मैं पानी न छूऊँगी ।"

शैलजा ने उसी तरह स्वाभाविक स्वर में कहा,"मैं अभी तो उस दिन आयी हूँ जीजी, मैं अब फिर नही जा सकूँगी । इससे तो अच्छा बल्कि यही है कि तुम ही जाकर कुछ दिन काटोआ में काट आओ,- पास ही गंगाजी हैं,-इस तरह बाहर निकलना भी हो जायेगा । अच्छा, मझली जीजी, छोटी-सी बात को लेकर सबेरे से ही क्या ऊधम मचा रही हो बताओ तो ? बुखार-बुखार में जीजी, ऐसे ही अधमरी हो रही हैं, उन्हे क्यों कोच रही हो ? मुझसे अगर कुसूर हुआ है, तो मुझ ही से कह देती- हुआ क्या है बताओ ?"

सिद्धेश्वरी ने आँखे पोंछकर कहा,"आज अतुल का जन्म-दिन है, क्यों तूने लल्ला से ऐसी बात कही ?"

शैलजा हँस दी, बोली,"अच्छा, यह बात है ! कुछ डर मत करना मझली जीजी,-तुम्हारी तरह मैं भी तो माँ हूँ । मेरे लिए हरी, कन्हाई, पटल जैसे हैं, अतुल भी वैसा ही है । माँ की गाली कोई लगती नही मझली जीजी,-अच्छा, मैं उसे बुलाकर आशीर्वाद देती हूँ —लो जीजी, तुम दूध पी लो, मैं कड़ाही चढ़ा आयी हूँ ।"

सिद्धेश्वरी के मुँह से रुलाई के साथ-साथ हँसी फूट निकली, वे बोली, "अच्छा, तू अपनी मझली जीजी से भी अपराध की माफी माँग, तूने उसे भी बुरा-भला कहा है ।"

"अच्छा, माँगती हूँ कहकर शैल ने उसी वक्त झुककर नयनतारा के पाँव छूकर कहा," अगर कुसुर बन गया है मझली जीजी, तो माफ करो,-मैं कुसूर की माफी चाहती हूँ ।"

नयनतारा ने उसकी ठोड़ी छूकर अपना हाथ चूम लिया और फिर हँडिया-सा मुँह बनाकर वह चुपचाप खड़ी हो रही ।

सिद्धेश्वरी की छाती पर से भारी बोझ उतर गया, उन्होंने स्नेह से विगलित होकर नयनतारा की तरह छोटी बहू की ठोड़ी छूकर बहू से कहा,"इस पगली की बात पर कभी गुस्सा मत हुआ करो, मझली बहू । यही मुझको ही देख लो न,-कितनी बिगड़ती हूँ, बुरी-भली बक-झक करती हूँ; परन्तु, पल भर न देख पाऊँ तो छाती के भीतर जैसे कोई गोदने-सा लगता है ।-इतना दूध तो न पिया जायगा बहन ।"

"पिया जायगा,-पी लो ।"

सिद्धेश्वरी ने आगे बहस न करके जबरदस्ती सबका सब दूध पीकर कहा, "अभी तुरन्त लल्ला को बुलाकर आशीर्वाद दे शैल।"

"अभी देती हूँ " कहकर, शैलजा हँसती हुई खाली कटोरा लेकर बाहर चली गयी।

3

अतुल अपनी जिन्दगी में ऐसा लज्जित और अप्रतिभ कभी नहीं हुआ। बचपन से ही लाड़-प्यार में पला हुआ है; माँ- बाप उसकी इच्छा और रूचि के विरूद्ध कभी कुछ नहीं करते। आज सबके सामने इतने जबरदस्त अपमान ने उसके सारे शरीर में आग-सी लगा दी। वह बाहर गया और नये कोट को जमीन पर पटककर उल्लू-सा मुँह बनाकर बैठ गया।

आज हरिचरण की सारी सहानुभूति थी अतुल के साथ। कारण, उसी की वकालत करते हुए वह लांछित हुआ था,—इसी से वह भी उसके पास आकर मुँह भारी करके बैठ रहा। मन में इच्छा थी कि उसे सान्तवना दे; परन्तु समयोपयोगी एक भी बात उसे जब ढूंढ़े न मिली तो वह चुपचाप बैठा रहा। मगर अतुल का तो अब चुप बैठा रहना हो नहीं सकता। कारण, अपमान ही एक मात्र इस समय उसके लिए क्षोभ का विषय नही था, वह विदेश से बहुत-सी फैशन, बहुत से कोट-पैण्ट नेक्टाई वगैरह लेकर घर आया है, नाना प्रकार से उसने अपना आसन बहुत ऊँचा उठाया है; आज छोटी चाची के तिरस्कार के एक धक्के से अकस्मात् उसे टूटते-फूटते गडमड होते देख वह उद्वेग से चंचल हो उठा। वह हरी-भइया को लक्ष्य करके रोष के साथ बोला,"मैं किसी की परवाह नही करता जी, ये हैं भी अतुलचन्द्र शर्मा,-गुस्सा आने पर फिर छोटी चाची-आची किसी की भी 'केयर नहीं करता !"

हरिचरण ने इधर-उधर ताककर डरते डरते जवाब दिया,"मैं भी नहीं डरता,-चुप,कन्हाई आ रहा है।"इतना कहकर वह इस डर से त्रस्त होकर कि निर्बोध अतुल कहीं उसी के सामने वीरता न दिखा बैठे, उठ खड़ा हुआ।

कन्हाई ने सफेद दरवाजे के बाहर खड़े मुगल बादशाह के नकीब की तरह जोर से आवाज लगाई, "मझले भइया, मझले-भइया, माँ बुला रही है,-जल्दी !"

हरिचरण ने सफेद-फक चेहरे से कहा,"मुझे ? मैंने क्या किया है ? मुझे हरगिज नहीं-जाओ अतुल, छोटी चाची बुला रही हैं तुमको।"

कन्हाई ने प्रभुतव के स्वर में कहा, "दोनों ही को, दोनों ही को अभी !ऐं, सँझले भइया, तुम्हारा नया कोट धरती पर किसने डाल दिया ?" इसके जवाब में सँझले भइया के मुँह की तरफ देखा और मझले भइया सँझले और बड़े ताकने लगे। किसी के भी मुँह से आवाज नही निकली। कन्हाई जमीन पर पड़े हुए कोट को उठाकर कुर्सी के हथेले पर रखकर चला गया।

हरिचरण ने सूखे कण्ठ से कहा,"मुझे और डर ही किस बात का है ? मैंने तो कुछ कहा नहीं,—तुम्हीं ने कहा है कि मैं छोटी चाची की 'केयर'नही करता—"

"मैंने अकेले नहीं कहा, तुमने भी कहा है-"कहता हुआ अतुल गर्व के साथ घर के भीतर चल दिया। अभिप्राय यह कि जरूरत पड़ने पर वह सच बात प्रकट कर देगा।

हरिचरण का चेहा और भी खराब हो गया। एक तो छोटी चाची क्यों बुला रही हैं सो मालूम नहीं; उस पर बेशऊर अतुल क्या कह देगा, इसका भी अन्दाजा लगाना कठिन है। एक बार सोचाए, वह भी पीछे से जा पहुँचे और सब तरह की शिकायतो का बाकयदा प्रतिवाद करे। परन्तु कोई भी बात उसे अपने बूते की होने का विश्वास नही हुआ। इधर हाजिरी का वक्त भी नजदीक है,-कन्हाई सम्मन दे गया है, और अबकी जरूर वारण्ट लेकर आयेगा। हरिचरण फिलहाल आत्म-रक्षा का और कोई अच्छा उपाय न खोज पाकर लोटा हाथ में लेकर जल्दी-जल्दी एक खास स्थान की ओर चल दिया। छोटी चाची से घर-भर के लोग शेर की तरह डरते हैं।

अतुल ने भीतर जाकर मालूम किया छोटी चाची निरामिष-रसोईघर मे हैं। वह छाती फुलाकर दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। कारण इस घर के अन्यान्य लड़को की तरह उसे इस छोटी चाची को पहचानने का मौका न मिला था। स्त्रियाँ भी इस्पात की तरह सख्त हो सकती हैं, यह उसे मालूम नही था। साथ ही, साधारण दुर्बलचित और मृदु-स्वभाव के आत्मीय जनों द्वारा ही प्रश्रय मिलते रहने से माँ, चाची, ताई आदि गुरूजनों के सम्बन्ध मे उसकी एक अद्‌भुत धारणा हो गयी थी कि इन लोगो के मुँह के सामने सिर्फ कड़ा जवाब दे सकने से ही काम बन जाता है। अर्थात्, अपनी इच्छा खूब जोर से प्रकट करना चाहिए और तभी वे उसमें अपनी राय दे देते है, अन्यथा नही देते। जो लड़का ऐसा नही कर सकता उसे हमेशा ठगाना पड़ता है। यहाँ आकर जब उसने देखा कि हरिचरण के पोशाक वगैरह ठीक नही हैं तब गुप्त रीति से यह तरकीब उसने सिखा दी थी। फिर भी, अभी तुरंत अपने बारे मे कोई भी तरकीब उसे नही सूझी; छोटी चाची की फटकार खाकर कड़ा जवाब देना तो बहुत दूर की बात है किसी तरह का मामूली जवाब तक उसकी जबान पर न आया था ,-हतबुद्धि की भाँति वह बाहर चला आया था। इसी से अब लौटकर वह अपने अपमान का कौड़ी-२ बदला चुका लेने की गरज से इस तरह जान हथेली पर रखकर दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। इस जगह से शैलजा के चेहरे का कुछ हिस्सा साफ दिखाई दे रहा था. यहाँ तक कि मुँह उठाते ही अतुल पर उनकी नजर पड़ जाती। पर रसोई में लगी रहने से उन्हें नउसके पैरो की आहट सुनाई दी, और न मुँह उठाकर उधर उन्होंने देखा ही। मगर आज अतुल ने छोटी चाची को अच्छी तरह देख लिया। देखा क्षण-भर ही, फिर भी, उसने अनुभव किया कि यह मुँह उसकी माँ जैसा नही है और ताई के जैसा भी नहीं,- इस चेहरे के सामने खड़े होकर अपना अभिप्राय जोरों से व्यक्त करने जैसी शक्ति और किसी में चाहे होया न हो, पर उसके गले मे तो नही है। उसकी फूली हुई छाती अपने आप सिकुड़ गयी और वह चुपचाप खड़ा रहा। उसे इतनी भी हिम्मत न हुई कि किसी तरह की आहट करके भी चाची की दृष्टि इधर को आकर्षित करे।

नील किसी काम से इधर आ रही थी। सहसा अतुल भइया के पैरों की तरफ निगाह पड़ते ही वह दाँतो तले जीभ दबाकर ठिठकर के खड़ी हो गयी और वही से भय से व्याकुल होकर बार-बार उसे इशारा करने लगी कि यह जूते पहनकर होने की जगह नही है।

छोटी चाची के झुके हुए चेहरे की ओर कनखियो से देखकर अतुल के भीतर कांटे-से

उठ खड़े हुए। एक बार सोचा कि चुपचाप वहाँ से खिसक जाय, फिर सोचा कि जूते खोलकर वहीं से आँगन में फेंक दे। परन्तु, छोटी बहन के सामने डरने के लक्षण प्रकट करने में उसे अन्यन्त शरम सी आने लगी। इस मनाही को वह वास्तव में जानता था, और न अपनी हठ से उसने उसका उल्लंघन ही किया था; परन्तु माता-पिता से लगातार अवतरित और असंगत प्रश्रय पाते रहने के कारण उसका अभिमान इतना ज्यादा सूक्ष्म और तीव्र हो गया था कि कोई काम कर डालने के बाद फिर डर से पीछे कदम रखने में उसका सिर कटता था। डर से चेहरा फक पड़ जाने पर भी और वहाँ खड़े रहने में अपना सर्वनाश जानकर भी, अभिमानी दुर्योधन की तरह वह सूच्यग्र भूमि न छोड़ सका।

शैलजा ने मुँह उठाया। वह स्नेह के साथ मृदु हँसकर बोली,"अतुल, तू आ गया? ठहर बेटा,-यह क्या रे, जूता पहने? नीचे उतर-नीचे उत्तर—.।

घर का और कोई लड़का ऐसी दशा में शैलजा के हाथ से यदि इतनी आसानी से छुटकारा पा जाता तो चट से भाग कर जान बचा लेता; पर, अतुल गरदन नीची किये गुम-सा खड़ा रहा।

शैलजा ने उठकर कहा,"जूते पहनकर यहाँ नहीं आते अतुल, नीचे जा।"

अतुल ने सूखे मुँह से क्षीण स्वर में कहा, "मैं तो चौखट के बाहर खड़ा हूँ,-यहाँ क्या दोष है?"

शैलजा ने कड़ाई के साथ कहा, "दोष है, जा।"

अतुल फिर भी नहीं हिला; वह मानस-चक्षुओं से देखने लगा—हरिचरण, कन्हाई, विपिन वगैरह ओट में छुपे हुए उसकी बेइज्जती का मजा ले रहे हैं। इसी से बदजात घोड़े की तरह गरदन टेढी करके बोला,"हम लोग चुचड़ा में तो जूते पहने ही रसोईघर में जाते है,-यहाँ चौखट के बाहर खड़े होने में कोई दोष नहीं।

इस हिमाकत को देखकर शैलजा असह्य आश्चर्य से स्तब्ध होकर खड़ी रही। सिर्फ उसकी आँखों में मानो चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं।

ठीक इसी समय हरिचरण का बड़ा भाई मणीचन्द्र डम्बल और मुद्‌गर भाँजकर पसीने से लथपथ बाहर जा रहा था; शैलजा की आँखो की तरफ देखकर उसने आश्चर्य के साथ पूछा "क्या हुआ, चाची जी?"

मारे क्रोध के शैलजा के मुँह से स्पष्ट बात नहीं निकली। नीला खड़ी थी, उसने अतुल के पैरों की तरफ उँगली करके कहा,"अतुल भइया जूते पहने खड़े हैं यहाँ,—किसी तरह उतर नहीं रहे हैं।"

मणीचन्द्र ने जोर से कहा,"ए; नीचे उतर।"

अतुल उसी तरह जिद के स्वर में बोला, "यहाँ खड़े होने में दोष क्या है? छोटी चाची को मैं देखे नहीं सुहाता इसी से सिर्फ 'जा जा' करती है।

मणीचन्द्र ने ऊपर उछलकर अतुल के गाल पर तड़ाक से एक प्रचण्ड तमाचा जड़ दिया और कहा,'छोटी चाची' नहीं 'छोटी चाचीजी,'-करती है'नहीं करतीं हैं' कहना है,-नीच कहीं के!"

एक तो वैसे ही मणीचन्द्र पहलवान ठहरा, और फिर तमाचे का वजन भी ठीक न रख सका,-नतीजा यह हुआ कि अतुल की आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह वहाँ

कर वहीं बैठ गया।

मणीचन्द्र बहुत ही अप्रतिभ हुआ। इतने जोर से मारने का न उसका इरादा ही था और न इसकी जरूरत ही थी। व्यग्र होकर उसने झुककर दोनों हाथ पकड़ के अतुल को उठाकर ज्यों ही खड़ा किया। त्यों ही वह क्रोधोन्मत्त चीते की तरह उससे लिपट पड़ा और नोंच-खरोंचकर, दातों से काट-काटकर, ऐसे ऐसे झूठे रिश्तों का नाम ले लेकर पुकारने लगा जिनका कि होना हिन्दू समाज में रहकर चचेरे भाइयों में बिल्कुल सम्भव है। मणीचन्द्र आश्चर्य से दंग और हतबुद्धि- सा रह गया। वह मेडिकल कालेज में ऊँचे क्लास में पढ़ता है और उमर में छोटे भाइयों से काफी बड़ा है। वे बड़े के सामने खड़े होकर आँख उठाकर बात तक नहीं कर सकते, इस घर में हमेशा से ऐसा ही वह देखता आया है। कोई उस तरह की अकथ्य और अश्रव्य गाली-गलौच भी मुँह से निकाल सकता है, यह उसकी कल्पना के भी बाहर की बात थी। अब तो उसे हिताहित का ज्ञान शेष न रहा,-उसने अतुल की गरदन पकड़कर जोर से पक्के चबूतरे पर पटक दिया और लात मारते-मारते उसे ऊपर से आंगन में ढकेल दिया। कन्हाई, विपिन, पटल वगेरह जोर जोर से चीत्कार कर उठे। मणीन्द्र की माँ सिद्धेश्वरी संध्या छोड़कर उठ आयी, मझली बहू एकान्त कमरे में बैठी दो-एक 'सन्देश' मुँह में डालकर पानी पीने की तैयारी कर रही थीं शोर सुनकर बाहर आके जो देखा तो वह एकबारगी नीली पड़ गयीं। मुँह का सन्देश फेंककर इस तरह रोती हुई लड़के पर औंधी पड़ गयी जैसे कोई मर गया हो। सब मिलाकर ऐसा गोलमाल हो गया कि बाहर से मालिक लोग काम काज छोड़कर भीतर आ पहुंचे। शैलजा रसोईघर से मुह निकालकर मणीन्द्र से "मणि तू बाहर जा, कहकर फिर अपने काम से लग गयी। मणि चुपके से बाहर चला गया। उसके पिता भी मझली बहू की उन्मत्त भंगिमा देखकर मारे शरम के वहां से चल दिये।

जब यह महामारी का मामला जरा कुछ शांत हुआ तब हरीश ने लड़के से पूछा। अतुल ने रोते-रोते छोटी चाची पर सारा दोषारोपण करते हुए कहा, "उसने बड़े भइया को मारने के लिए सिखा दिया था"-इत्यादि इत्यादि। हरीश ने चिल्लाकर कहा,"छोटी बहू, मनी को तुमने खून कर डालने के लिए सिखा दिया था, क्यों ?"

नीला ने रसाई-घर के भीतर से छोटी चाची की तरफ से जबाब दिया, "अतुल भइया बात नहीं सुनते थे और बड़े भइया को इन्होंने गाली दी है, इसी से—

नयनतारा ने लड़के की तरफ से कहा, "तो मैं भी कह दूं बहू- तुम्हारे हुकम से उसे मारा जा रहा था, इसी से उसने गालियां दी होगी नहीं तो, गाली देने वाला लड़का नहीं है मेरा अतुल।

"हां सो नहीं है, कहकर समर्थन करते हुए हरीश ने और भी क्रुद्ध स्वर में पूछा,"तू अपनी छोटी चाची से पूछ तो नीला, वे हैं कौन जो अतुल को मारने का हुकम देती हैं ? बात जब उसने नहीं सुनी तब हम लोगों से शिकायत क्यों नहीं की ? हम लोगों के मौजूद रहते हुए वे दण्ड देने क्यों चलीं ?

नीला ने इन तीन प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं दिया। सिद्धेश्वरी अब तक बरामदे के एक किनारे हारी-थकी-सी चुपचाप बैठी हुई थीं। उनके बीमार शरीर के लिए यह उत्तेजना बहुत ज्यादा हो गयी थी। एक तो वे इस गृहस्थी में बाल-बच्चों को

पाल-पोसकर बड़ा करने के सिवा साधारणत: और किसी विषय में कुछ दखल नहीं देना चाहती थी; कारण उन्होंने मन-ही-मन ऐसी धारणा बना ली थी कि भगवान ने इस घर के विषय में न्याय नहीं किया। उन्हें बड़ी बहू और गृहणी बनाकर भी उसके योग्य बुद्धि नहीं दी और शैलेजा को सबसे छोटी और छोटी बहू बनाकर भी ढेर की ढेर बुद्धि दे दी है। हिसाब करने में, चिट्ठी-पत्री लिखने में, बातचीत करने में, रोग शोक के समय चारों तरफ निगाह रखने में, सब पर शासन करने में, रसोई आदि बनाने में, परोसने में, घर के सजावट कने में उसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता। वे अक्सर कहा करतीं कि अगर मेरी शैलजा कहीं मर्द होती तो अब तक जज हो जाती।

उसी शैलजा को जब मझले बाबू खरी खरी-खोटी सुनाने लगे तो शायद भगवान उनके माथे में सहसा गृहिणी के योग्य कर्तव्य बुद्धि ठूस गये। सिद्धशवेरी ने जरा कुछ रूखे स्वर कह डाला, "ठीक तो है लालाजी, अगर यही बात है तो तुम फिर हम लोगों से शिकायत न करके बहू पर खुद ही क्यों शासन कर रहे हो? मां मौजूद हैं, मैं जिन्दा हूं-बहू बेटी पर शासन करना होगा तो हम लोग करेंगी। तुम मरद आदमी हो, जेठ हो,-यह कैसी बात है,-जाओ, बाहर जाओ। लोग सुन्ंगे तो क्या कहेंगे?"

हरीश शर्मिन्दा होकर बोले, "तुम सब तरफ निगाह रख सकतीं तो चिता ही किस बात की थी, भाभीजी। तब क्या कोई किसी को घर में जान से मार डाल सकता था?" यह कहकर वे बाहर जाना ही चाहते थे कि उनकी स्त्री ने उनको टोक्कर कहा,"अच्छी बात तो है, खड़े-खडे देख लो न, वे किस तरह बहू शासन करती हैं!

हरीश इस बात का जवाब दिये बिना बाहर चले गये।

4

पाँच दिन बाद सबेरे से ही मझली बहू की चीज बस्त बंधने लगी। सिद्धेश्वरी इस बात को जान गयी और दरवाजे के बाहर आकर खड़ी हो गयी। मिनट-भर चुपचाप देखते रहने के बाद बोली,"आज यह सब क्या हो रहा है, मझली बहू?"

नयनतारा ने उदासीनता के साथ जवाब दिया, "देख ही तो रही हो।"

"सो तो देख रही हूं कहां जाना होगा?

नयनतारा ने उसी तरह कहा, "जहां हो।

"फिर भी, कहां कहो तो सही?

"कैसे कहूं जीजी, कहां जायेंगे? वे घर ठीक करने गये हैं, वगैर लौटे तो कुछ कह नहीं सकती।"

"तुम्हारे जेठजी को मालूम है?"

"उन्हें मालूम कराने से क्या होगा? जिनको मालूम करना जरूरी है,वे छोटी बहू जी सब जानती हैं। ओट में से झांककर एक बार देख भी गयी हैं।

नयनतारा ने यह झूठ कहा था। शैलजा को सबेरे से दम लेने की भी फुरसत नहीं होती, उसे कुछ भी मालूम नही था।

सिद्धेश्वेरी ने क्षण भर मौन रहकर कहा, "देखो मझली बहू अपने जेठजी की मान-मर्यादा तुम लोगों ने अभी तक समझी नहीं, मगर बाहर वालों से पूछो तो सुनोगी,

जन्म जन्मांतर की बड़ी तपस्या से ही ऐसे जेठ मिलते हैं, नहीं तो नहीं मिलते।

नयनतारा सहसा उदीप्त हो उठी। बोली "हम लोग क्या वह बात जानते नहीं, जीजी ? हम दोनों दिन-रात कहते रहते हैं, सिर्फ जेठ ही नहीं, ऐसी जिठानी भी बड़ी पुण्य से ही मिलती हैं। तुम्हारे घर तो हम लोग घर-द्वार झाड़ बुहारकर नौकरों की तरह भी रह सकते हैं, पर यहां तो अब एक घड़ी भी नहीं।"

आज नयनतारा के कण्ठस्वर में ऐसी कुछ आंतरिकता का आभास सिद्धेश्वरी को मिला कि वे आर्द्र हो गयीं। बोलीं , "यह मेरा नहीं, मझली बहू, तुम्हीं लोगों का घर है। मैं हरगिज तुम लोगों को और कहीं नहीं जाने दे सकती।"

नयनतारा ने गरदन हिलाकर करूण कण्ठ से कहा,"अगर भगवान ने कभी ऐसा दिन दिखाया, जीजी, तो तुम्हारे पास रहूँगी; पर यहाँ तुम एक दिन भी रहने के लिए मत कहो। मेरा अतुल सबकी ऑखों का काँटा हो गया है यहाँ; आज्ञा दो, उसे लेकर हम लोग चले जायें।"

सिद्धेश्वरी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा,"यह कैसी बात कहती हो मझली बहू ? अतुल हम लोगों का अपना लड़का है— ।"

बात खतम होने तक भी नयनतारा धीरज न रख सकी। कह उठी, "कोई बात नहीं रख सकती हूँ, इसीलिए तो उनकी फटकारें खाते-खाते मरी जाती हूँ जीजी ! जब कुछ हुआ तब दैया-मैया करके रो-पीट लेती हूँ; किन्तु घड़ी-भर बाद ही मैं वही गंगाजल का गंगाजल !एक भी बात तो मुझे याद नहीं रहती। मैं तो सब-कुछ भूल ही गयी थी; लेकिन-गुस्सा नही होने दूँगी, तुम्हें जीजी, तुम चाहे जितना कहो, अपनी छोटी बहू मामूली औरत नहीं है। घर भर में उसने, सबको सिखा दिया है इसी से कोई मेरे अतुल से बोलता तक नही। बच्चे को सूखा-सा मुँह लिये डोलते देखकर ही मैंन पूछा और जाना कि बात क्या है। नहीं जीजी, यहाँ अब हम लोगों के रहने से काम नहीं चलेगा। एक घर में रहते हुए बच्चा मेरा मन-ही-मन इस तरह दुःख शोक से तड़पता फिरेगा तो बीमार पड़ जायगा। इससे तो और कहीं जाकर रहने में ही भलाई है। उसकी भी छाती ठंडी हो, और मैं भी दम ले सकूँ।"यह कहते कहते लड़के के दुःख से नयनतारा की आँखो से दो बूँद आँसू ढलक पड़े जिसने सिद्धेश्वरी को भी गला दिया। किसी के बच्चे का कोई दुःख उनसे सहा न जाता था। अपने आँचल से मझली बहू के आँसू पोंछकर सिद्धेश्वरी चुप हो रहीं। बिना कुछ शब्द निकाले इतनी बड़ी कठिन सजा देने का इतना सहज कौशल भी संसार में हो सकता है, इसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। एक लम्बी साँस लेकर वे बोलीं,"आहा, बच्चा मेरा ! घर में क्या कोई भी उसंसे बात नहीं करता, मझली बहू ?"

नयनतारा ने भी एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, "पूछ देखो न जीजी !"

हरिचरण को वहीं बुलाकर सिद्धेश्वरी ने पूछा। हरिचरण ने तेजी के साथ उसी वक्त जवाब दिया,"उस नीच के साथ कौन बात करेगा माँ ? बड़े भइया को जो मुँह में आता है सो कहता है और छोटी चाचीजी को गालियाँ देता है।"

सिद्धेश्वरी से सहसा कुछ जवाब देते न बना। थोड़ी देर बाद वे बोली," जो हो गया सो हो गया, उसका तो अब उपाय ही क्या है हरि, जाओ पास बुलाकर बोल-चाल करो उससे सब।"

हरिचरण ने सिर हिलाते हुए कहा,"उसके साथ बोलने-चालने वालों की कमी नही हैं माँ !मुहल्ले के अस्तबलों में बहुत से गाड़ीवान हैं, वहीं जाये, बहुत से यार-दोस्त मिल जायँगे उसे वहाँ ।"

नयनतारा जल-भुनकर बोली,"तेरी जबान भी तो कुछ कम नहीं चलती हरी, तू ऐसी बातें हमारे सम्बन्ध में कहता है ? अच्छा, यही सही भला । हम लोग गाड़ीवानों के साथ ही मेल-जोल करेंगे । उठो जीजी, चीज-वस्तु सब नौकर बाँध-बूँधकर तैयार कर ले ।"

हरिचरण ने मां की तरफ देखकर कहा, "अतुल सबके सामने खड़ा होकर अपने कान पकड़े, नाक रगड़े, तब हम लोग उससे बात करेंगे । नही तो छोटी चाची,-नहीं, माँ, ऐसे हम लोग नही बोल-चाल कर सकते ।" इतना कहकर और किसी तर्क-वितर्क की राह न देखकर वह कमरे से बाहर चला गया ।

सिद्धेश्वरी उदास होकर बैठी रहीं । मझली बहू ने मृदु कण्ठ से कहा,"पर छोटी बहू अगर एक दफे लड़कों को बुलाकर कह दे तो सारा झगड़ा निबट जाय ।"

सिद्धेश्वरी ने सिर हिलाकर कहा,"हाँ, सो तो निबट जाय ।"

मझली बहू ने कहा,"अब तुम्हीं देख लो, जीजी । ये सब लड़के बड़े होकर तुम्हें मानेंगे ? या चाहेंगे ? भविष्य की बात तो कही नहीं जा सकती-पर अभी तो तुम्हारे लड़के-बाले पराये हुए जा रहे हैं । मेरे अतुल-उतुल को तुम और चाहो जो भी कहो, पर अपनी माँ के लिए वह जान देता है । मैं कह दूँ तो उनकी मजाल क्या कि वे इस तरह सिर हिलाकर ताव दिखाकर चले जायँ !इतनी ज्यादती लेकिन अच्छी नहीं जीजी ।"

सिद्धेश्वरी इन सब बातों में शायद चित्त न दे सकीं; निरीह भाव से उन्होंने उत्तर दिया,"सो तो है ही, तभी तो इस घर के मनी से लेकर पटल तब सबके सब उसी शैल के बस में हैं । वह जो कहेगी, जो करेगी, सो ही होगा, मुझे तो कोई कुछ समझता ही नहीं ।"

"यह क्या अच्छा है ?"

सिद्धेश्वरी ने मुँह उठाकर कहा,"क्या ?-अरी ओ नीला, अपनी चाची को जरा बुला देना बिटिया ।"

नीला किसी काम से इधर आ रही थी, लौट गयी । नयनतारा और कुछ नहीं बोली । सिद्धेश्वरी भी उत्सुकता के साथ बाट देखने लगीं ।

शैलजा के कमरे में घुसते ही वे कह उठीं,"चीज-वस्तु सब बँध गयी है,—अभी तो फिर ये सब चल दें क्या ?"

शैलजा को कुछ भी मालूम न था, वह जरा डर सी गयी; और बोली,"क्यों ?"

सिद्धेश्वरी ने कहा,"और नहीं तो क्या,-कैसा पत्थर का कलेजा है तेरा शैल ! तेरे हुक्म से कोई अतुल के साथ खेलता नही, कोई बोलता तक नहीं,-बच्चे के दिन कैसे कटें, बता तो सही ? और अपने लड़के की दिन-रात सूखती हुई सूरत को देखते हुए मां-बाप से भी कैसे रहा जाय यहाँ ? तो फिर, क्या तू इन लोगों को इस घर में रहने नहीं देना चाहती ?"

नयनतारा ने चुटकी लेते हुए कहा,"तब तो फिर छोटी बहू को सब ओर से आराम ही आराम हो जाएगा ।"

शैलजा ने यह बात कान पर ही नहीं दी और सिद्धेश्वरी से कहा, ",ऐसे लड़के के

साथ मैं अपने घर के किसी को हरगिज मिलने-जुलने नहीं दे सकती, जीजी। वह इतना बिगड़ गया है कि कुछ कहने की बात नहीं।"

अब तो नयनतारा से और न सहा गया। वह क्रुद्ध सर्पिणी की तरह सिर उठाकर फुफकार उठी, "अभागी, माँ के मुँह पर तू इस तरह लड़के की बुराई कर रही है! दूर हो जा मेरे कमरे से। जीभ तेरी गल जाय।"

"मैं अपनी इच्छा से कभी कमरे मे पैर नही रखती, मझली जीजी। पर, तुमने इसी तरह अपने लड़के को चौपट कर दिया है।" यह कहकर शैलजा शान्त भाव से कमरे से निकल गयी।

सिद्धेश्वरी बहुत देर तक विह्वल की भाँति बैठी रही। क्या करें, क्या कहे, मानों कुछ भी सोच न सकी।

नयनतारा सहसा रो पड़ी बोली, "हमारी माया-ममता सब छोड़ दो, जीजी, हम लोग चले जाते हैं। ये एक पेट के भाई है, इसी से तुम हमको इस तरह खीच-तानकर एक साथ रखना चाहती हो; पर, छोटी बहू की जरा भी इच्छा नहीं कि हम लोग इस घर में रहें।"

सिद्धेश्वरी ने इस बात का जवाब देकर कहा,"वे लोग जैसा कहते हैं, अतुल वैसा ही क्यों नही करता ? उसने भी तो अच्छा काम नहीं किया है, मझली बहू।"

"मैं क्या, जीजी, कह रही हूँ कि उसने अच्छा काम किया है ? समझ-बूझ हो तो क्या कोई बड़े भाई को गाली-गलौज दे ? अच्छा, मैं उसकी तरफ से तुम सबके पाँवो पर नाक रगड़ती हूँ।" यह कहकर नयनतारा ने जमीन पर जोर से अपनी नाक रगड दी और फिर मुँह उठाकर कहा, "उसे तुम सब माफ करो जीजी, मुँह देखकर मेरी छाती फटी जाती है।" इसके बाद नयनतारा शायद और एकबार नाक रगडने जा रही थी कि सिद्धेश्वरी ने हाथ बढाकर उसे रोक दिया और खुद भी आँखें पोछ ली।"

दोपहर को रसोईघर मे बैठकर सिद्धेश्वरी जब बहुत कह-सुनकर, तर्क-वितर्क करके भी, शैलजा को राजी न कर सकी तो गुस्से मे आकर बोली, "अपने मन की बात खोल के कहती क्यों नही शैल, मझली बहू जाय यहाँ से ?"

प्रत्युत्तर मे शैलजा ने एक बार मुँह उठाकर देख भर लिया। उस चितवन ने सिद्धेश्वरी को और भी क्रुद्ध कर दिया। वे बोलीं, "अपनी माँ के पेट के भाई को अलग करे दें और तुम्हें लेकर रहे तब दूसरे लोग हमारे मुँह पर कालिख पोतें! हमारी घर-गृहस्थी में सबसे बनाकर न चल सको तो जहाँ सुभीता हो वहाँ तुम लोग चले जाओ। मुझसे अब नही सहन होता। उन लोगों की अपेक्षा तुम लोग तो मेरे ज्यादा अपने हो नही।"यह कहकर सिद्धेश्वरी वहाँ से उठके खड़ी हो गयी। उन्हें शायद मन-ही-मन आशा थी कि अब शैलजा नरम पड़ जायेगी। परन्तु जब वह एक भी बात का जवाब न देकर चुपचाप चमचा-करछुली चलाती हुई रसोई मे लगी रही तब वे सचमुच ही महाक्रोध के साथ अन्यत्र चली गयी।

दोपहर को बड़े बाबू जब भोजन करने बैठे तब सिद्धेश्वरी ने पंखे की बयार करते-करते दुःख और अभिमान से भरकर इसी बात का जिक्र छेड़ दिया। बोली,"देखती हूँ कि मझली बहू वगैरह का तो अब इस घर में रहना मुश्किल है। आज सबेरे से ही उन लोगो की चीज-वस्तु की बाँधा-बूँधी हो रही है।"

गिरीश ने मुँह उठाकर पूछा,"क्यो ?"

सिद्धेश्वरी ने कहा, "और नही तो क्या । एक तो ऐसे ही छोटी बहू से रत्ती-भर बनती नही, उस पर छोटी बहू ने घर के सब लड़के-बच्चो को सिखा दिया है कि कोई अतुल से बोले चाले तक नही । वह बेचारा इन कई दिनो मे सूख के मानो आधा रह गया है—"

इसी समय शैलजा दूध का कटोरा हाथ मे लिये दरवाजे के पास आ खड़ी हुई । वह अपने वस्त्रो को फिर से एक बार अच्छी तरह सँभालकर भीतर आयी और थाली के समीप कटोरा रखकर बाहर चली गयी ।

सिद्धेश्वरी ने उसे सुनाते हुए कहा, "यह जो छोटी बहू—" इतना कहते ही उन्होने देखा कि अपना नाम सुनकर शैलजा ओट मे जाकर खडी हो गयी है । उस पक्ष का दोष चाहे कितना ही हो, पर अतुल और उसकी मा के दुख से सिद्धेश्वरी का मातृ-हृदय विगलित हो गया था । किसी तरह यह मिट-मिटा जाय तो उनकी जान मे जान आ जाये, परन्तु शैलजा किसी तरह समझौता करना नही चाहती, इसी कारण उनकी देह जली जा रही थी । इसीलिए आज उसे सजा दिलावाने के लिए उन्होने कमर बाँध ली थी । बोली, "यह जो शैल भाई-भाइयो मे अभी से मनमुटाव पैदा किये दे रही है, बड़े होने पर तो ये लोग लट्ठमार मार-पीट करते फिरेगे, सो क्या अच्छी बात होगी ?"

बड़े बाबू ने कौर मुँह मे देते हुए कहा,"बहुत बुरी बात होगी ।"

सिद्धेश्वरी कहने लगी, "उसी कारण तो मनी ने अतुल को इस तरह मारा-पीटा । अच्छा उसने भी पीटा है और गाली दी है बस, हिसाब चुक गया, अब फिर क्यो लड़को को उससे बोलने-चालने की मनाही कर दी ? आज तुम मनी को बुलाकर कह देना कि वे अतुल से बोल-चाल करे, नही तो इन लोगो के चले जाने से मुहल्ले के लोग हमारे मुँह पर कालिख लगायेगे । और बात भी सच है, छोटी बहू के लिए तुम कुछ अपने सगे भाई और बहू को ता छोड़ नही सकोगे ।"

"सो तो नही होगा,"कहकर वे भोजन करने लगे ।

"अच्छा, छोटे लालाजी क्या कभी कुछ रोजगार करने की फिकर नही करेगे ? क्या इसी तरह सब दिन बिता देगे ?"

पति का प्रसग छिड़ते ही शैलजा कान पर हाथ रखकर जल्दी से चली गयी । जेठजी ने क्या जवाब दिया, यह सुनने की वह राह ने देख सकी । कान लगाकर सब बाते वह कभी नही सुनती; और न सुनना चाहती ही है । कारण मन-ही-मन उसे इस बात की काफी आशका है कि उसके पति के विषय मे जो आलोचना होगी वह सिवा अप्रिय के और कुछ नही हो सकती । यद्यपि सत्य से वह आजीवान प्रेम करती आयी है, वह चाहे प्रिय हो या अप्रिय, उसे कहने और सुनने मे उसने कभी मुँह नही फेरा । परन्तु यह कहना कठिन है कि पति के विषय मे कैसे वह अपने इस स्वभाव को लाँघ गयी ।

सिद्धेश्वरी ने चाहे जितने क्रोध मे आकर पति से शिकायत करना क्यो न शुरू किया हो, पर शैलजा को जल्दी से प्रस्थान करते देखकर उनको होश हो आया कि कुछ ज्यादती हो गयी है । पति के सम्बन्ध मे खोचा दिये जाने पर शैल के दुख और अभिमान की सीमा नही रहती, इस बात को वे जानती थी ।

स्त्री को चुप हो जाते देखकर बड़े बाबू मुँह उठाकर निहारा और कहा, "मै खूब अच्छी

तरह डाँट दूँगा।" इसके बाद भोजन समाप्त करके पान खाने के समय के भीतर ही वे सब भूल गये।

वास्तव में गिरीश का स्वभाव विचित्र ही किस्म का था। अदालत और मुकदमों के सिवा कोई भी बात उनके मन में स्थान नहीं पाती थी। घर में क्या हो रहा है, कौन आता है, कौन जाता है, क्या खर्च होता है, लड़के-बाले क्या कर रहे हैं आदि किसी भी बात की वे खोजखबर नही लेते थे। रूपये पैदा करते है और भली-बुरी सभी बातों में'हूँ, हाँ' कहकर जो भी हो, कोई एक राय देकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया करते हैं।

लिहाजा बड़े बाबू 'डांट दूँगा' कहकर जब घर के मुखिया का कर्त्तव्य समाप्त करके बाहर चल गये तब सिद्धेश्वरी ने न तो कुछ कहा ही और न यही पूछा कि किसे डाँट देंगें, क्यों डाँट देंगे?

नयनतारा बगल के कमरे में कान लगाये सब सुन रही थी जेठ और जिठानी का मन्तव्य सुनकर वह पुलकित से वहां से चली गयी किंतु कुछ ही मिनट बाद वापस आकर जिठानी से बोली, "ऐसी क्यों बैठी हो जीजी-अबेर हो गयी है,जो खाया जा सके चलकर कुछ खा पी लो।

"ग्यारह भी क्या कम है, जीजी? तुम्हारी बीमारी की देह में तो नौ बजे के भीतर ही खा-पी लेना चाहिए।"

सिद्धेश्वरी को इस समय खाने पीने की बात जरा भी अच्छी नही लग रही थी। वे बोलीं, "सो होने दो मझली बहू, मैं इतनी जल्दी कभी नही, खाती- मुझे जरा देर है।"

नयनतारा ने छोड़ा नहीं, पास जाकर हाथ पकड़ लिया और अपने स्वर में उत्कण्ठा उंडेलते हुए कहा, इसीलिए तो पित्त चढ़कर देह की ऐसी हालत हो गयी है। मेरे हाथ में रसोईघर होता तो क्या मैं नौ बज जाने देती? तुम न जीओगी तो और किसी का क्या बिगड़ता है जीजी हम ही लोगों का सत्यानाश है।उठो चलो, जो हो, तुम्हे थोड़ा बहुत खिलाकर निश्चिंत होऊ।"

नयनतारा को यहां आये एक महीने से ज्यादा होने आया है। जिठानी के लिए रोज इस तरह की दारूण अस्थिरता भोगते हुए भी अब तक उसने क्यों नही अपने को सुस्थिर करने की चेष्टा की, सिद्धेश्वरी मन-ही-मन इसका कारण समझ गयी। परंतु कैतववाद की (धूर्तता और छल) कुछ ऐसी महिमा है कि सब कुछ समझते हुए भी आर्द्र चित्त से वे कहने लगी तुम मेरी अपनी हो, इसीलए यह सब कह रही हो मझली बहू! नही तो कौन है मेरा अपना, बताओ?"

नयनतारा हाथ पकड़कर सिद्धेश्वरी को रसोईघर में ले गयी और उसने अपने हाथ से जगह करके, पीढा बिछाकर, उन्हें बिठाके महाराजिन से थाली मंगावाकर अपने हाथ से उनके सामने रख दी।

निरामिष रसोईघर की तरफ शैलजा रसोई बना रही थी, मझली बहू ने नीला को बुलाकर कहा, "अपनी छोटी चाची से बोल, उस रसोई में क्या बना है सो दे जाय।"

मिनट भर बाद शैलजा आकर साग-तरकारी वगैरह परोसकर चुपचाप चली जा रही थी,-इतने में सिद्धेश्वरी ने मझली बहू को लक्ष्य करके रोगी के स्वर मे कराहते हुए कहा, तुम सब एक साथ क्यों नही बैठ गयी, मझली बहू?

मझली बहू ने कहा,"हम लोग तो तुम्हारी तरह मरने नहीं बैठी जीजी। तुम खा लो, मैं तुम्हारी ही थाली में बैठ जाऊंगी।"फिर शैलजा की तरफ कनखियों से देखकर अपेक्षाकत ऊंचे स्वर में कहा, "नहीं जीजी, अपने जीते जी मैं तुम्हें इस तरह धोखा देकर भागने नहीं दूंगी, कहे देती हूं।" इसके बाद जरा देर चुप रहकर और छोटी बहू कितनी दूरी पर है, यह देखते हुए कहा, "ये दोनों जने जैसे एक पेट के सगे भाई हैं, हम दोनों भी तो उसी तरह दो बहनें हैं। चाहे जहां, चाहे जितनी दूर भी रहूं जीजी, रक्त के आकर्षण से मैं जितनी तुम्हारे लिए रो-रो मरूंगी, क्या और कोई उतना रोयेगी? और लोग तो करेंगीं अपने भले के लिए, पर मैं करूँगी भीतर से। तुमने अभी जो कहा न कि मेरे सिवा तुम्हारी और कोई सचमुच की अपनी नहीं है, सो इस बात को कभी किसी दिन भूल न जाना जीजी!

सिद्धेश्वरी ने विगलित-कण्ठ, "यह क्या भूलने की बात है, मझली बहू से कहा इतने दिन तक तुम्हें पहचान नहीं सकी बहिन, शायद उसी की सजा भगवान मुझे दे रहे हैं।

मझली बहू ने आंचल से अपने आंखों के आंसू पोंछते हुए कहा, "सजा जो कुछ भगवान् को देनी हो तो मुझ ही को दें, जीजी। सब दोष मेरा है, मैंने ही तुम्हें नहीं पहचाना था।" जरा ठहरकर फिर कहा, और आज यदि जान भी सकी कि हम लोग तुम्हारे पांव की धूल के लायक भी नही हैं, तो भी जताऊं कैसे जीजी इस बात को? तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी सेवा कर सकूं भगवान ने वह दिन तो मुझे दिया ही नही। हम लोग तो छोटी बहू की आंखो के कांटे हो रहे हैं।

सिद्धेश्वरी उदीप्त कण्ठ से कह उठी, "तो वह अपने बाल-बच्चों को साथ लेकर देश के घर में जाकर रहे। मैं उसकी सात पीढ़ी को दूध भात खिलाऊं, है क्या अपना सत्यानाश कराने के लिए? चचेरा भाई, भौजाई और उनके लड़के-बाले. यही तो रिश्ता है? बहुत खिला-पिला चुकी, बहुत पहना-उढ़ा चुकी, अब नही। नौकर-नौकरानियों की तरह मुंह बन्द करके मेरी गृहस्थी रह सके तो रह, नही तो चली जाय।"

सिद्धेश्वरी को इस बात का स्वप्न में भी ख्याल न था कि पास ही चौखट पकड़े शैलजा खड़ी है। सहसा उसके आचल की चौड़ी लाल किनारी प्रदीप्त अग्नि-शिखा की तरह सिद्धेश्वरी के आँखों के सामने जल उठते ही, उन्होंने गरदन बढ़ाकर देखा, ठीक पास कमरे की चौखट थामे वह स्तब्ध होकर खड़ी खड़ी अब तक की सब बातें सुन रही है। उसी वक्त मारे डर के पल-भर में उनकी भोजन रुचि जाती रही और उन्हें लगा कि इस मझली बहू को उसकी समस्त आत्मीयता के साथ विलुप्त करके अगर वे अन्यत्र कही भाग जा सके तो जान बच जाय। मझली बहू ने अत्यन्त उद्विग्न स्वर में कहा,"यह क्या जीजी, भात सिर्फ इधर-उधर कर रही हो, खाती क्यो नही ?" सिद्धेश्वरी ने रुद्ध स्वर से कहा,"अब नही।" मझली बहू ने कहा, "मेरे सिर की कसम है जीजी, दो कौर और खा लो— ।"

उसकी बात खतम होने के पहले ही सिद्धेश्वरी जलके कह उठी,"क्यो वृथा इतना कह रही हो मझली बहू, मैं नही खाऊंगी, तुम जाओ मेरे सामने से।" यह कहकर सहसा वे सामने से थाली हटा उठकर चल दी।

नयनतारा मुंह बायें काठ की पुतली की तरह देखती रह गयी; उसके मुंह से एक बात

तक न निकली। परन्तु विह्वल होकर अपना नुकसान कर ले, ऐसी स्त्री वह नहीं हैं। सिद्धेश्वरी उठकर जहां हाथ धोने बैठी थीं वहां जाकर और उनका हाथ थमाकर उसने विनीत कण्ठ से कहा,"बिना समझे अगर कोई कसूर की बात कही हो जीजी, तो मैं माफी मांगती हूं। तुम इतनी कमजोरी की हालत में अगर उपवास किये रहोगी तो मैं सच कहती हूं, तुम्हारे पैरों पर सिर पटककर मर जाऊंगी।"

सिद्धेश्वरी अपने निकट आप ही लज्जित हो रही थी। वापस आकर जितना खाया गया, उतना खाकर उठ गयीं।

बाद में अपने कमरे में बैठकर अत्यन्त असन्तुष्ट भाव से सोचने लगीं, मैंने आज इतनी चोट शैलेजा को पहुंचाई कैसे ? इसके अनिवार्य दण्ड-स्वरूप शैलजा अति कठोर उपवास अभी से ही शुरू कर देगी, इसमें उन्हें रंचमात्र सन्देह न रहा; मगर दोपहर को उन्होंने जब नीला से पूछा तब मालूम हुआ कि चाची रोटी खाने बैठी है। उस समय उन्हें कितना आनन्द हुआ, कहा नही जा सकता। परन्तु साथ ही उनके आश्चर्य का भी ठिकाना न रहा। शैलेजा अपनी हमेशा की आदत को छोड़कर कैसे अचानक ऐसी शान्त और सहनशील हो गयी, इसका वे किसी तरह निर्णय न कर सकी।

गिरीश और हरीश दोनों भाई अदालत से लौकर शाम को एक साथ जल-पान करने बैठे। सिद्धेश्वरी पास ही उदास चेहरे से बैठी थी। आज उनका शरीर-मन कुछ भी अच्छा नही था।

गृहिणी के चेहरे की ओर देखते ही गिरीश को सबेरे की बात याद आ गयी। और सब बातें चाहे याद न रही हों, पर रमेश को डॉट देना है यह बात उन्हें याद पड़ गयी। दरवाजे के पास नीला खड़ी थी। उसी समय उन्होने हुक्म दिया,"अपने छोटे चाचा को तो बुला ला नीला।"

सिद्धेश्वरी ने उत्कण्ठित होकर कहा,"उनकी इस समय क्यो बुला रहे हो ?"

"क्यों ? उसे अच्छी तरह डांट देना जरूरी है। बैठे-बैठे वह बिल्कुल ही जानवर हो गया ह।"

हरीश ने अंग्रेजी में कहा,"निठल्ला दिमाग शैतान का कारखाना होता है।" फिर सिद्धेश्वरी की तरफ देखकर कहा,"नहीं, नही भाभीजी, उसे तुम ज्यादा सिर न चढ़ाओ, अब तो वह लड़का नहीं रहा।"

सिद्धेश्वरी ने कुछ जबाव नही दिया, वे गुस्से-भरे चेहरे से चुपचाप बैठी रही।

रमेश उस समय घर पर ही था। बड़े भाई के बुलाने पर धीरे से उनके कमरे मे आ खड़ा हुआ। गिरीश उसके मुंह की ओर देखते ही कह उठे,"अतुल के संग तू लड़ा क्यों था रे ?"

रमेश ने आश्चर्य के साथ कहा,"मै लड़ा हूं !"

गिरीश ने क्रोध भरे स्वर मे कहा,"अलतब लड़ा है !" फिर स्त्री की ओर देखते हुए बोले,"बड़ी बहू कहती हैं कि जो तेरे मुंह में आया, सो ही उसे गालियां दी है तूने ! वे क्या मुझसे झूठ कहेंगी ?"

रमेश अवाक् होकर सिद्धेश्वरी के चेहरे की तरफ देखता रह गया।

सेद्धेश्वरी गरज उठी,"तुम सठिया गये हो क्या ? मैंने कब कहा कि छोटे लालाजी

ने अतुल को गालियां दी हैं?"

हरीश ने भूल सुधार करते हुए धीरे से कहा,"नहीं, नहीं, छोटी बहू ने।"

तब गिरीश ने कहा,"छोटी बहू भी क्यों गाली दे, कहो न?"

सिद्धेश्वरी ने उसी तरह क्रोध के साथ अस्वीकार करते हुए कहा," वह भी क्यों देने लगी अतुल को गाली? उसने नहीं दी। और अगर दी भी हो तो उससे मैं कहूंगी, तुम छोटे लालाजी को क्यों खोंचा दे रहे हो?"

गिरीश ने कहा, "अच्छा यही मान लिया, मगर तू अभागा ऐसा निकम्मा है कि घास-भूस की दलाली करके मेरे चार हजार रुपये उड़ा दिये, और बाग-बाजार के उन खान लोगों को देख, जो इसी की दलाली में करोड़पति हो गये हैं।

हरीश ने आश्चर्य में डूबकर कहा, "घास-भुस की दलाली?"

रमेश ने कहा, "जी नहीं, पाट की।"

गिरीश ने गुस्से में आकर कहा,"वे मेरे मुवक्विल हैं, मैं नही जानता और तू जानता है? घास-भूस की दलाली करके ही वे बड़े आदमी हुए हैं। विलायत को जहाज के जहाज घास-भुस भेजा करते हैं।"

हरीश और रमेश दोनों ही चुप रहे। गिरीश ने उनके चेहरे की तरफ देखकर कहा,"अच्छा, मान लिया, पाटकी ही सही। इस पाटकी दलाली करके क्या तू महीने में सौ दो सौ भी नही कमा सकता? तुम लोगों को मैं हमेशा तो इस तरह बैठे-बैठे खिला नही सकूंगा। आदमी जिस जमीन पर गिरता है, उठने के लिए उसे उसी का सहारा लेना होता है। एक बार चार हजार गये, तो गये, कुछ परवाह नहीं,-और चार हजार ले जा। उससे भी न चले तो और चार हजार सही। पर यह नहीं हो सकता कि मैं मेहनत कर करके मरता रहूं और तुम बैठे-बैठे खाया करो।"

हरीश ने मन-ही-मन अत्यन्त उत्कण्ठित होकर मृदु कण्ठ से कहा,"सब काम सीखना पड़ता है।पाटकी दलाली ऐसे ही थोड़े आ जाती है! बार-बार इतने रुपये बिगाड़ना तो ठीक नहीं है।"

गिरीश ने उसी वक्त अनुमोदन करते हुए कहा, "हरगिज नहीं। मैं पाटकी दलाली-वलाली नहीं जानता, तुम्हें घास की दलाली कल से शुरू करनी होगी। कल सबेरे मैं बैंक पर आठ हजार रूपये का चेक दूँगा। चार हजार रूपये का घास खरीदना, और चार हजार ज़मा रखना। जब ये चार हजार बिगड़ जायँ तभी उनमें हाथ लगाना,-उसके पहले नही। समझे? मैं तुम लोगों को बैठे-बैठे नहीं खिला सकता, जाओ।"

रमेश चुपचाप चला गया। हरीश ने सिर हिलाते हुए कहा,"ये आठों हजार रूपये भी पानी में गये, समझ लीजिए। क्या कहती हो भाभीजी?"

सिद्धेश्वरी चुप रहीं। जवाब न पाकर हरीश ने भाई की तरफ देखकर कहा,"रूपये सचमुच ही उसे देंगे क्या?"

गिरीश ने विस्मय के साथ कहा,"सचमुच ही कैसे?"

हरीश ने कहा,"अभी उस दिन तो चार हजार रूपये पर पानी फेरा ही है; अब और आठ हजार उसे पानी में डालने के लिए देंगे, इस बात की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।"

गिरीश ने कहा,"तो तुम कहो न, क्या करने को कहते हो ?"

हरीश ने कहा,"रमेश रोजगार-ओजगार का जानता ही क्या है भइया ?आठ हजार दीजिए और चाहे आठ लाख दीजिए। वह आठ पैसे भी वापस लौटाकर नहीं ला सकता। इस बात को मैं शर्त बदकर कह सकता हूँ। इतने रूपये पैदा करके इकट्ठे करने में कितना समय लगता हैं, जरा सोचकर तो देखिए।

गिरीश ने उसी वक्त अनुमोदन करते हुए कहा, "हाँ हाँ, ठीक तो है। ठीक कह रहे हो। उसे रूपये देने के माने ही है पानी में फेंक देना। ठीक तो है ! वह क्या कोई ओदमी में आदमी है ?"

हरीश उत्साह पाकर कहने लगा," इससे बल्कि अच्छा यही है कि उसे कोई नौकरी-औकरी तलाश कर दी जाय, वही करे। जिसकी जो योग्यता हो, उसी के अनुसार उसे काम करना चाहिए। यह जो लड़कों को पढ़ाने के लिए पच्चीस रूपये माहवारी मास्टर को देने होते है,-कम से कम यह काम तो उससे हो सकता है। इतने रूपये गृहस्थी के बचाकर भी तो वह हमारी सहायता कर सकता है। क्यों भाभीजी है न यही बात ?

मगर भाभीजी के जवाब देने के पहले ही गिरीश ने खुश होकर कहा,"ठीक है, ठीक बात कही है तुमने हरीश। गिलहरी की सहायता लेकर रामचन्द्रजी ने समुन्द्र बाँध दिया था।" फिर स्त्री की ओर देखकर कहा,"देखा बड़ी बहू, हरीश ने ठीक समझा है। मैं शुरू से ही देख रहा हूँ न, बचपन ही से इसकी रूपये-पैसे के मामले में बड़ी तेज बुद्धि है। आग का यह जितना सोच सकता है, उतना और कोई नहीं। यह कुछ नहीं कहता तो मैं तो इतने रूपये बिगाड़ ही बैठा था। कल से ही रमेश लड़कों को पढ़ाना शुरू कर दे। अखबार पढ़-पढ़कर वक्त बिगाड़ने की जरूरत नहीं।"

सिद्धेश्वरी ने कहा,"तो रूपये उसे नहीं दोगे क्या ?"

"हरगिज नहीं,"तुम क्या कहता हो, मैं फिर भी उसे रूपये दूँ ?

"तो ऐसी बात कहीं ही क्यों ?"

हरीश ने कहा,"कहने से ही क्या दे देने पड़ते है ? इसके कोई मानें नहीं भाभीजी। मैं भी तो भइया का सहोदर भाई हूँ, मेरी भी तो कोई राय लेनी चाहिए। गृहस्थी के रूपये बिगाड़ना मुझे भी तो अखरता है ?"

"यही तो तुम्हारी असल बात है, लालाजी।" कहकर सिद्धेश्वरी गुस्सा होकर उठ गयीं।

सिद्धेश्वरी की सेवा का भार नयनतारा ने अपने ऊपर ले लिया था। वह सेवा ऐसी ठोस और पूर्ण है कि उसकी किसी भी संघ में से किसी को पास फटकने तक का मौका का नहीं मिल सकता। सिद्धेश्वरी ने इतनी सेवा अपनी जिन्दगी में और किसी से भी कभी न पायी थी। फिर भी क्यों, उनका अशान्त मन हरदम किसी न किसी बहाने झगड़ा करने को तैयार हो रहा था, इसका रहस्य सिर्फ अन्तर्यामी ही जानते हैं। उस दिन सबेरे सिद्धेश्वरी छह महीने के रोगी की तरह गिरती-पड़ती रसोई-घर के बरामदे में जाकर धप से बैठ गयी। एक गहरी साँस लेकर थके हुए दुर्बल कण्ठ से शायद सामने की दीवार को लक्ष्य करके कहने लगी, "अपनी कोई है तो मझली बहू। वह न होती तो मुझे शायद सड़-सड़कर मरना पड़ता। ऐसी सेवा-टहल तो मेरी अपनी माँ बहन भी शायद नहीं कर

सकती।"

शैलजा रसोईघर के भीतर रसोई बना रही थी, उसने सब सुन लिया। इधर कई दिन से वह न तो बड़ी जिठानी के कमरे में ही जाती है और न उनसे बोलती ही है। सब भी चुप बनी रहीं।

सिद्धेश्वरी ने फिर शुरू कर दिया,"और गैरों को खिलाना-पिलाना तो सिर्फ पाप का फल भोगना, राख में घी डालना है। समय पर कोई कुछ काम नहीं आता। और मेरी यह मझली बहू-बात मुँह से निकलने की देर नहीं कि चटसे 'हाँ' कहरकर चली आती है। मैं जरा पैदल चलती हूँ, तो उसका कलेजा फटता है। मेरी फूटी तकदीर कि ऐसी अपनी को भी मैंने दूसरों की बातें सुनकर गैर समझ रक्खा था।"

शैलजा की चूड़ियों की आवाज, करछुल-चम्मच का शब्द, सब उनके कानों में प्रवेश कर रहा है। इतने पास मौजूद रहते हुए भी जब उसने इतने बड़े असत्य अभियोग का कोई जवाब नहीं दिया तब तो उनके अधैर्य की सीमा नहीं रही। उनका मंद कण्ठस्वर एक क्षण में सवाल और सतेज हो उठा; वे बोलीं,"मां के यहाँ से एक चिट्ठी आयी है, उसे किसी से जरा पढ़वाके सुन लूँ, सो भी मेरे नसीब में नहीं । गैरों को खिलाऊँ-पिलाऊँ मैं आखिर किसके लिए?"

नीला छोटी चाची के पास बैठी काम में मदद दे रही थी; वह वहीं से बोली,"वह चिट्ठी तो मझली चाचीजी ने तुम्हें दो-तीन बार पढ़के सुना दी है मां, फिर नयी चिट्ठी और कब आयी?"

"तू सब बात में पुरखिनपना मत दिखलाया कर नीला!"कहकर लड़की को डाँटकर फिर बोलीं,"चिट्ठी सुनने से ही हो गया, बस?उसका जवाब नहीं देना है क्या? क्या तेरी छोटी चाची मर गयी है, जो मैं दूसरे मुहल्ले से आदमी बुलाकर जवाब लिखवाऊँ?"

नीला ने भी गुस्से में आकर कहा,"चिट्ठी लिखवाने के लिए क्या और कोई आदमी नही है जो तुम आज संक्रान्ति के दिन चाची को मार रही हो?"

आज संक्रान्ति है, इस बात की सिद्धेश्वरी को खबर नहीं थी। वे एक क्षण में ही एकबारगी फक पड़ गयी, बोलीं,"तैंने तो गजब कर दिया नीला?मरें दुशमन! मरने की बात मैंने तुझसे कब कही री?मेरी पेट की लड़की मेरा मुँह बन्द कर रही है! जिसको व्याह कर घर लायी और गोदी में खिलाकर बड़ा किया, वह मेरी छाँह भी नही छूतीं! इतनी बीमारी भोगती हूँ, फिर भी मृत्यु नहीं आती! आज से अगर मैं एक बूँद भी दवा पीऊँ तो मुझे बड़ी से बड़ी—"

रूलाई से सिद्धेश्वरी का गला रुंध गया। वे आँचल से आँखें पोंछती हुई अपने कमरे में जाकर एकदम मुरदा-सी होकर बिछौने पर पड़ रहीं।

नयनतारा बगल के बरामदे में खिड़की की ओट में खड़ी-खड़ी सब देख रही थी। अब वह धीरे से सिद्धेश्वरी के कमरे में जाकर उनके पाँयते बैठ गयी और फिर आहिस्ते से बोली,"एक चिठ्ठी का जवाब लिखवाने के लिए उसकी खुशामद करने क्यों गयी जीजी? मुझे आज्ञा देती तो मैं एक छोड़ दस चिट्ठियों का जवाब लिख देती।"

सिद्धेश्वरी कुछ बोलीं नहीं, करवट बदलके दीवार की तरफ मुँह करके रह गयीं।

नयनतारा ने जरा चुप रहकर पूछा,"तो क्या अभी जवाब लिखूँ जीजी?"

प्रकट नहीं होता। वह चुपचाप उठ गयी।

करीब दो ढ़ाई बजे सिद्धेश्वरी ने लड़की को बुलाकर चुपके से पूछा,"तेरी छोटी चाची ने रोटी खा ली री ?"

नीला नेआश्चर्य के साथ कहा,"खायेंगी क्यों नहीं ? रोज जैसे खाती है, वैसे ही तो खायी है।"

सिद्धेश्वरी 'हूँ' करके चुप हो रहीं।

हम पहले ही कह चुके है कि शैलजा हमेशा से भी अत्यन्त अभिमानी है। मामूली-से कारण पर वह खाना बन्द कर देती थी और इसी बात पर सिद्धेश्वरी की परेशानी का अन्त नही था। हाथ पकड़कर, खुशामद करके, पीठ और सिर-पर हाथ फेरकर नानाप्रकार से सिद्धेश्वरी को उसे मनाकर प्रसन्न करना पड़ता था। परंतु आज वही शैलजा, खाने पीने के बारे में, इतना तिरस्कार होने पर भी, क्यों रंच मात्र भी क्रोध प्रकट नहीं कर रही है, इसका कोई कारण ही वे स्थिर नही कर सकीं। उसका यह व्यवहार उन्हें जितना ही अपरिचित और अस्वाभाविक-सा लगने लगा, उतना ही वे भीतर से मारे भय के व्याकुल होने लगीं। किसी तरह प्रकट रूप से एक बार झगडा हो जाये तो उनकी जान मे जान आ जाये। मगर शैलजा उसके किनारे मे भी नही फटकती। सबेरे से लेकर रात तक वह अपना निर्दिष्ट काम करती रहती है। उसके आचरण से घर का और कोई कुछ जान ही नही सकता। जिन्होंने दस वर्ष की उमर से उसे सिखा-पढ़ाकर आदमी बनाया है, सिर्फ वे ही क्षण-क्षण इस बात का अनुभव कर रही है कि शैलजा के चारो तरफ एक निर्मम उदासीनता का घना मेघ प्रतिदिन पूंजीभूत हो होकर उसे सिर्फ धुँधली और मुश्किल से दिखाई देने वाली बनाये दे रहा है।

नीला ने कहा,"मां, मैं जाऊँ ?"

मां ने पूछा, "कहाँ, बोल ?"

नीला चुपकी खड़ी रही।

सिद्धेश्वरी तब मारे क्रोध के उठके बैठ गयीं और चिल्लाकर बोली,"कहाँ जाना है तुझे, कह तो सही ? छोटी चाची के साथ ऐसा तेरा क्या हो गया है री, जो मेरे पास घड़ी-भर भी नहीं टिक सकती ? बैठी रह हरामजादी, चुपचाप यही बैठी रह। तुझे भी नही जाना होगा ।"इतना कहकर वे खुद ही धप-से बिस्तर पर पड़ रही और उन्होने दूसरी ओर करवट बदल ली।

नयनतारा ने दबे पाँव कमरे में आकर स्नेह के साथ अनुयोग के स्वर में कहा,"छिः बेटी, तुम बड़ी हो गयी हो, दो दिन बाद ससुर का घर बसाने जाओगी, अभी जितने दिन बन सके, मां-बाप की सेवा कर लो। मां के पास बैठो उठो; साथ-साथ रहकर दो-चार अच्छी बातें सीख लो; इस समय क्या ऐरे-गैरे के साथ दिन-भर बिताना ठीक है ? जाओ, पास बैठकर घड़ी-दो-घड़ी पाँव पर हाथ ही फेर दो, जीजी सो जायँ जरा। रूग्ण शरीर ठहरा; बहुत देर से जग रही हैं।"

नीला मझली चाची से प्रसन्न नहीं थी। मुँह उठाकर उत्तप्त कण्ठ से बोली,"घर मे ऐरे-गैरे और किसके साथ दिन-भर बिताती हूँ मझली चाची ? तुम छोटी चाची की बात कह रही हो क्या ?"

उसका रुष्ट और आरक्त चेहरा देखकर नयनतारा-विस्मित और नाराज होकर बोली,"मैंने किसी की बात नहीं कही नीला, मैं सिर्फ कह रही हूँ कि तुम्हें अपनी कमजोर मां की सेवा-टहल करनी चाहिए।"

सिद्धेश्वरी ने मुँह बिना फेरे ही कहा,"यह सेवा टहल करेगी ! बल्कि मैं मर जाऊँ, तो इनकी जान बचे।"

नयनतरा ने कहा,"यह तो खैर ठीक, अभी बच्चा है, इससे भले-बुरे का ज्ञान नहीं, पर छोटी बहू तो बच्ची नहीं है ! उसे तो कहना चाहिए कि बेटी, दो घड़ी मां के पास जाकर बैठ। वह खुद तो आती ही नहीं, और लड़की को भी नहीं आने देती।"

नीला कुछ जवाब देना चाहती थी, पर किसी तरह उसे दबाकर मुँह भारी करके चुपचाप ही खड़ी रही।

सिद्धेश्वरी ने मुँह फेरकर कहा,"तुमसे सच कह रही हूँ, मझली बहू, मेरी तबीयत नहीं करती कि शैलजा का मुँह भी देखूँ। वह तो जैसे मेरी दोनों आँखों के लिए विष हो गयी है।"

नयनतारा ने कहा,"ऐसी बात मत कहो, जीजी। तुम नाराज हो जाओगी तो उसके लिए खड़े होने की भी जगह नहीं, इस बात का तो ध्यान रखना ही होगा। हाँ, भली याद आ गयी। इस महीने में उन्हें पॉच सौ रूपये मिले हैं, उनमें से फुटकर कुछ रूपये अपने पास रखकर बाकी उन्होने तुम्हें दे देने के लिए कहा है, सो ये लो जीजी।" यह कहकर नयनतारा ने अपने आचल की गॉठ खोलकर पॉच नोट निकालकर जिठानी को दे दिये।

उदास चेहरे से सिद्धेश्वरी ने उन्हें हाथ बढ़ाकर ग्रहण कर लिया और लड़की से कहा,"नीला, जा अपनी छोटी चाची को बुला ला, जिससे वह आकर लोहे के सन्दूक में रुपये रख दे।"

नयनतारा का चेहरा स्याह पड़ गया। इस रुपये देने की बात को लेकर उसने अपनी कल्पना में जो उज्जवल चित्र खीच रक्खे थे, वे सब पूँछकर एका एक हवा हो गये। सिद्धेश्वरी के चेहरे पर आंनद की रेखा तक नहीं दिखाई दी। इतना ही नहीं, रूपये उठाकर रखने के लिए अन्त मे छोटी बहू को ही बुलाया गया। सन्दूक की चाबी भी उसी के पास है ! वास्तव में इन रूपयों के दिये जाने का एक गुप्त इतिहास था। हरीश की देने की बिल्कुल इच्छा नही थी, सिर्फ नयनतारा ही एक जबरदस्त चाल चलने की गरज से पति को बार-बार कोंच-कोंचकर ये रूपये निकलवा लायी थी। अब सिद्धेश्वरी के इस निष्पृह आचरण से रूपये तो उसके पानी मे गये ही, ऊपर से मारे क्रोध और क्षोभ के ऐसी तबीयत होने लगी कि अपना सिर फोड़ डाले।

शैलजा आ उपस्थित हुई। छह दिन बाद उसने बड़ी जिठानी के मुँह की ओर देखकर स्वाभाविक भाव से पूछा,"जीजी, मुझे बुलाया था क्या ?"

शैलजा के सिर्फ इन दो ही शब्दों के प्रश्न ने सिद्धेश्वरी के कानों में अपरिमित सुधा उँडेल दी। वे लहमें-भर में विगलित-चित्त होकर उठ बैठीं, बोलीं,"हाँ बहन, बुला तो रही

थी। बहुत से रूपये बाहर पड़े हुए हैं, इसी से नीला से कहा कि जा बेटी, अपनी चाची को जरा बुला ला, रूपये उठाकर सन्दूक में रख दे। यह लो।"इतना कहकर उन्होंने शैलजा के खुले हुए दाहिने हाथ पर कुछ नोट रख दिये। आज उन्हें ऐसी इच्छा भी न हुई जो कि ये कब किससे मिले हैं।

शैलजा अपने आँचल में बँधी चाबी से सन्दूक खोलकर धीरे-से रूपये रखने लगी। यह नयनतारा के लिए असह्य हो उठा। फिर भी भीतर का चंचल किसी तरह से दबाकर, जरा सूखी हँसी हँसकर वह बोलीं,"इसी से तुम्हारे देवर कल मुझसे कह रहे थे, जीजी, कोई चचेरे या सौतेले भाई नहीं, अपने मां-जाये बड़े भाई हैं। उनका खाऊँगा-पहनूँगा नहीं तो और जाऊँगा कहाँ? फिर भी महीने-महीने इस तरह पाँच-छह सौ रूपये भी अगर भइया को सहायता दे सकूँ तो बहुत उपकार हो। क्यों जीजी, है कि नहीं?"

सिद्धेश्वरी का हास्यपूर्ण चेहरा गम्भीर हो उठा। वे कुछ उत्तर न देकर शैलजा के मुँह की ओर देखती रहीं। नयनतारा शायद उनकी गम्भीरता का कारण न समझ सकी। बोली,"श्रीरामचन्द्र ने गिलहरी की सहायता से समुन्द्र बाँधा था। इसी से वे जब-तब कहा करते हैं कि बड़ी भाभी मुँह खोलकर किसी से कुछ माँगती नही, पर इसी से क्या हम लोगों को अपने आप कुछ न सोचना चाहिए? जिसकी जितनी शक्ति हो उसे काम-धन्धा करके उतनी सहायता करनी चाहिए। नहीं तो बैठे-बैठे सिर्फ खानदान का खानदान खाये, पीये, पहने,घूमे, और सोवे,-ऐसा करने से कहीं चल सकता है? तुम्हें भी तो हरी-मनी के लिए कुछ इकट्ठा कर जाना चाहिए। लोगों के लिए ही सर्वस्व उड़ा देने से तो तुम्हारा काम चलेगा नहीं। ठीक है कि नहीं, सच्ची तो कहो जीजी?"

सिद्धेश्वरी ने मुँह भारी करके कहा,"सो तो ठीक ही है!"

शैलजा ने संदूक बन्द करके बड़ी जिठानी के सामने आकर रिंग से चाबी निकालकर उनके बिस्तर पर रख दी और वह चुपचाप वहाँ से जाने लगी। सिद्धेश्वरी क्रोध में आग-बबूला हो उठीं, तुरंत ही अपने को सँभालकर तीक्ष्ण धीरे भाव से बोली,"यह क्या हो रहा है छोटी बहू?"

शैलजा मुँह फेरकर खड़ी हो गई और बोली,"कई दिनो से सोच रही थी जीजी, यह चाबी अब मेरे पास रहना ठीक नहीं। अभाव से ही आदमी का चरित्र नष्ट होता है और मेरे चारों तरफ अभाव ही अभाव है; बुद्धि-भ्रष्ट होते देर ही कितनी लगती है,-क्यों मझली जीजी?"

नयनतारा ने कहा, "मैं तो तुम्हारी किसी भी बात में नही पड़ती छोटी बहू, मुझे झूठमूठ लपेटती हो?"

सिद्धेश्वरी ने पूछा,"बुद्धि भ्रष्ट अब तक क्यों नहीं हुई, सुन सकती हूँ क्या?"

शैलजा ने कहा,"कोई बात अब तक हुई नहीं, इसलिए कभी न होगी इसके कोई माने नहीं। ऐसे ही तो तुम लोगों का हम सिर्फ खा रहे हैं, पहन रहे हैं न तो पैसे से कुछ सहायता कर सकते है और न देह से करते बनता है मगर, इससे क्या हमेशा इसी तरह करते रहना अच्छा है?"

सिद्धेश्वरी का चेहरा मारे रोष के सुर्ख हो उठा। वे बोली,"इतनी भली कब से हो

गई री ? इतना भले-बुरे का विचार अब तक तुम लोगों में कहाँ था ?"

शैलजा ने अविचलित स्वर में कहा, 'क्यों गुस्सा होकर देह को नष्ट कर रहीहो,' *जीजी ? तुम्हें भी अब हम लोगों के साथ अच्छा नहीं लग रहा है और मुझे भी अब अच्छा नहीं लगता ।"*

मारे क्रोध के सिद्धेश्वरी के मुँह से बात नही निकली ।

नयनतारा ने उनकी तरफ से पूछा,"मान लिया कि जीजी को अच्छा नही लग सकता; मगर, तुम्हें अच्छा क्यों नही लगता, छोटी बहू ?"

शैलजा इसका जवाब बिना दिये ही बाहर चली जा रही थी, इतने में सिद्धेश्वरी जोर से चिल्लाकर बोल उठीं,"कहती जा जलमुँही, कब तू बिदा होगी यहाँ से, मैं प्रसाद, बटवाऊँगी । मेरी सोने की घर-गृहस्थी लड़ाई-झगड़े से बिल्कुल जला कर खाक कर दी । कितने रूपये तैंने मेरे चुराये है, उनका हिसाब दिये जा ।"

शैलजा मुँह कर खड़ी हो गयी । उसका चेहरा और आँखें अग्नि-काण्ड की तरह क्षण-भर में प्रदीप्त हो उठीं; परन्तु दूसरे ही क्षण वह मुँह फेरकर चुपचाप चली गयी ।

सिद्धेश्वरी पेड़ की टूटी हुई शाखा की तरह बिछौने पर लोट-लोटकर रोने लगीं,"अभागी को मैंने इतने छोटेपन से पाल-पोसकर बड़ा किया मझली बहू, सो आज मेरा इस तरह अपमान करके चली गयी ! आने दो; उनको घर आने दो,उसे आज अगर मैंने आंगन के बीच जिन्दा न गड़वा दिया तो मेरा नाम सिद्धेश्वरी नहीं ।"

7

सिद्धेश्वरी के स्वभाव में एक बड़ा खतरनाक दोष था,—उनके विश्वास की रीढ़ नहीं थी । आज का दृढ़ विश्वास कल मामूली-सा कारण मिलने पर शिथिल हो सकता था । शैलजा पर वे हमेशा से एकान्त विश्वास करती आयी हैं, परन्तु, इधर कुछ ही दिनों के भीतर नयनतारा ने जब से उनके कान भर दिये हैं तब से उन्हें संदेह होने लगा है कि बात ठीक है,शैलजा ने अपने हाथ में रूपये जमा कर रक्खें हैं और उन रूपयों का मूल कहाँ है, इसका अनुमान करने में भी उन्हें कोई कठिनाई नही हुई । फिर भी वह पति और बच्चों को लेकर इस शहर में कहीं अलग मकान लेकर रहने का साहस हरगिज नही कर सकेगी, सो भी वे जानती थी ।

रात को बड़े बाबू अपने बाहर वाले कमरे में बैठे, आंखों पर चश्मा चढ़ाये गैस की बत्ती के उजाले में ध्यान से जरूरी मुकदमों के कागजात देख रहे थे । सिद्धेश्वरी ने उनके कमरे मे घुसते ही चट से काम की बात छेड़ दी । बोलीं,"तुम्हारे इतने परिश्रम करने से क्या फायदा है, मुझे बता सकते हो ?सिर्फ सूअरों के झुंडु को खिलाने-पिलाने के लिए ही दिन-रात मेहनत कर-करके क्यों जान दे रहे हो ?"

गिरीश के कान तक शायद सिर्फ खिलाने-पिलाने की बात ही पहुँची थी, उन्होंने मुँह ऊपर उठाये वगैर ही कहा,"नही, अब देर नहीं है । इतना-सा देखकर ही चलता हूँ खाने, चलो ।"

सिद्धेश्वरी ने गुस्सा होकर कहा,"खाने की बात तुमसे कह कौन रहा है ! मैं कहती

हूँ, छोटी बहू और लालाजी खूब अच्छी तरह तैयारी करके घर से जा रहे हैं। इतने दिन तो इन लोगों के लिए किया-कराया सो सब यों ही गया, इसकी भी कुछ खबर सुनी है?

गिरीश कुछ सचेतन होकर बोले, "हूँ सुनी क्यों नहीं! छोटी बहू से अच्छी तरह से तैयारी करने के लिए कह दो—साथ में कौन-कौन जा रहा है? मनि से..."मुकदमें के कागजातों के बीच बात यहीं तक असमाप्त ही रह गयी ।

सिद्धेश्वरी मारे क्रोध के चिल्ला उठीं,"मेरी क्या एक भी बात तुम्हारे कान में नहीं जाती? मैं क्या कह रही हूँ, और तुम क्या जवाब दे रहे हो? छोटी बहू वगैरह घर छोड़कर जा रहे हैं!"

डाँट खाकर गिरीश चौंक पड़े, पूछा, "कहाँ जा रहे हैं?"

सिद्धेश्वरी ने उसी तरह ऊँचे स्वर में जवाब दिया,"कहाँ ज़ा रहे हैं,-सो मैं क्या जानूँ?"

गिरीश ने कहा, "पता लिखकर रख लो न?"

सिद्धेश्वरी मारे क्षोभ और अभिमान के पागल-सी होकर माथे पर हाथ मारकर कहने लगी,"फूटी तकदीर मेरी! मैं जाऊँगी उनका ठिकाना लिखने? मेरी ऐसी फूटी तकदीर न होती तो तुम्हारे पाले पड़ती ही क्यों? बाप-माँ ने हाथ-पाँव बाँधकर मुझे गंगा में क्यों न बहा दिया?" कहते-कहते वे रो पड़ीं। बाप-माँ ने उन्हें एक अपात्र के हाथ सौंप दिया, आज तैंतीस वर्ष बाद उस दुर्घटना का पता लगने पर उनके उद्वेग और पश्चाताप ही सीमा न रही। बोलीं, "आज अगर तुम्हारी आँखें मिच जायँ तो मैं तो किसी तरह कही दासी-वृति करके गुजर कर लूँगी, और सो तो मुझे करना ही होगा, यह मे खूब अच्छी तरह जानती हूँ, पर मेरे मनी-हरी का कहाँ ठिकाना होगा, -"कहते-कहते सिद्धेश्वरी की रुकी हुई रुलाई ने अब इतनी देर में छुटकारा पाकर आँखों से एकबारगी आँसुओं की धारा बहा दी।

मुकद्दमें के जरूरी कागजात गिरीश के मगज से गायब हो गये। स्त्री के आकस्मिक और अत्युग्र रुदन से विचलित होकर उन्होंने क्रुद्ध गम्भीर कण्ठ से आवाज दी,"हरी!"

हरी बगल के कमरे में पढ़ रहा था, हड़बडाकर भागा चला आया।

गिरीश ने खूब जोर से धमकाकर कहा, "फिर अगर तूने किसी से झगड़ा किया तो घोड़े के चाबुक से पीठ की चमड़ी उधेड दूँगा। हरामजादा कही का, पढ़ने का नाम नहीं, दिन-रात सिर्फ खेलना और लड़ना। मनि कहाँ है?"

पिता से डाँट-फटकार खाना लड़के जानते न थे। हरी डर के मारे हतबुद्धि-सा होकर बोला, "मालूम नहीं।"

"मालूम नहीं? तुम लोगों की शरारत मैं जानता नहीं, क्यों? मेरी सब निगाह रहती है सो जानते हो? कौन तुम लोगों को पढ़ाता है? बुला उसे।"

हरी ने अव्यक्त कण्ठ से कहा, "हमारे स्कूल के थर्ड-मास्टर धीरेन बाबू सबेरे पढ़ा जाते है।"

गिरीश ने पूछाख, "क्यों, सबेरे क्यों? रात को क्यों नही पढ़ाते? मैं नहीं चाहता ऐसा मास्टर। कल से दूसरा आदमी पढ़ायेगा। जा, मन लगाकर पढ़ जाकर, हरामजादा, बदमाश कहीं का!"

हरी सूखे मुरझाये हुए मुँह से माँ की ओर एक बार देखकर धीरे से चला गया।

गिरीश ने स्त्री की तरफ देखकर कहा,"देखी आजकल के मास्टरों की हालत? सिर्फ

रूपया लेंगे और धोखा देंगे। रमेश से कह देना, कल ही इस प्राण-बाबू को जवाब देकर दूसरा मास्टर रख लिया जाये। उसने सोच रक्खा होगा, मेरी आँखों में धूल झोंककर बच जायगा !"

सिद्धेश्वरी ने कोई बात नहीं कही। वे पति के मुँह की तरफ सिर्फ क्रोध-भरी तीव्र दृष्टि फेंककर चुपचाप बाहर चली गयीं।

यह सोचकर कि मैंने अपना कर्तव्य सुचारू-रूप से समाप्त कर दिया है, प्रसन्नचित्त से उसी वक्त गिरीश अपने कागजातो में फिर मशगूल हो गये।

रूपया नामक चीज दुनिया में आवश्यक वस्तु है, यह बात सिद्धेश्वरी जानती न हों, तो बात नहीं। मगर, उस तरफ इतने दिनों से उनका कोई ध्यान ही नहीं था। लेकिन, लाभ भी एक छूत की बीमारी है। नयनतारा की छूत लग जाने से सिद्धेश्वरी के शरीर और मन में भी यह बीमारी धीरे-धीरे व्याप्त होती जा रही थी।

आज ही खाने पीने के बाद शैलजा इस घर से बिदा लेगी, इस अफवाह से सिद्धेश्वरी का कलेजा फाड़कर एक लम्बी रूलाई बाहर निकलने के लिए उमड़ी आ रही थी। वे उसे किसी तरह रोककर बुखार के बहाने से बिस्तर पर पड़ी थीं। नयनतारा आकर उनके पास बैठ गयी। दोपहर हाथ लगाकर बुखार की गरमी का अनुभव करके उसने आंशका प्रक्ट की और डाक्टर बुलाना चाहिए या नहीं, सो पूछा।

सिद्धेश्वरी ने दूसरी ओर मुँह फेरकर संक्षेप मे कहा, "नहीं।"

नयनतारा ने नाराजी का कारण ताड़कर उचित दवा दी। जरा देर चुप रहकर उसने धीरे से कहा,"इसी से मैं सोच रही थी जीजी, लोग कैसे अपने पास इतने रूपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपने मुहल्ले के यदुनाथ बाबू, गोपाल बाबू, हरनारायण बाबू, इनमें से किसी का भी अपने जेठजी से आधा भी काम नही चलता। फिर भी, इनमें से किसी के पास भी पॉच लाख रूपये से कम बैंक में जमा नहीं होंगे। उनकी स्त्रियों के हाथ में भी दस-बीस हजार से कम पूँजी न होगी।"

सिद्धेश्वरी ने कुछ आकृष्ट होकर कहा, "कैसे जाना तुमने मझली बहू?"

नयनतारा ने कहा, "इन्होंने बैंक के साहब से पूछा था। वे सब इनके मित्र हैं न !कल गोपाल बाबू की स्त्री ने मेरी बात पर अविश्वास करके कहा था, ऐसा कहीं हो सकता है मझली बहू कि तुम्हारी जीजी के पास में रूपये न हों? कुछ नहीं, तो भी—"

सिद्धेश्वरी अपना बुखार भूलकर चट से उठकर बैठ गयी और नयनतारा के सामने चावी का गुच्छा झन्न-से फेंककर बोली, "बकस-अकस सब तुम अपने हाथ से खोल के देख लो न मझली बहू,—घर-गिरस्थी के खर्च के सिवा कहीं कुछ अगर छिपा-सिपा एक पैसा भी दीख पड़े ! जो कुछ करती थी, सो छोटी बहू। मुझे क्या एक बात भी कहने का मौका था? ऐसे मालिक के हाथ पड़ी हूँ, मझली बहू, कि कभी एक पैसे का भी मुँह न देख सकी ! वैसी ही सजा भी पायी है। अब वह सर्वस्व लिये चली जा रही है,—क्या कर सकती हूँ उसका? मेरे हाथ में अगर रूपया होता तो सब घर ही में रहता कि इस तरह पानी में जाता,—तुम्हीं बताओ ना मझली बहू?"

मझली बहू ने सिर हिलाते हुए कहा,'सो ठीक ही है, जीजी।"

सिद्धेश्वरी का मन शैलेजा के विरुद्ध फिर कठोर हो उठा। इतने दिन खुद ही शैलेजा

का पाल-पोसकर बड़ा किया, अपने संदूक की चाबी उसे सौंपकर खुद छोटी बनकर और गृहस्थी में उसे बड़ा बना कर रखा, इस बात को अब वह बिल्कुल भूल ही गयी। बोलीं, "एक आदमी कमाने वाला है, और इतनी बड़ी गृहस्थी उसके सिर पर है। उनको भी दोष कैसे दिया जाए, सो बताओ?"

नयनतारा ने अनुमोदन करते हुए कहा,"सो तो सभी देख रहे हैं, जीजी।"

जरा चुप रहकर नयनतारा धीरे धीरे कहने लगी,"हमारे गांव के एक नन्दलाल हैं जो आफिस में क्लर्की का काम करते थे। छोटे भाई को आदमी बनाने और पढ़ाने-लिखाने में, उसके लड़के-बालों की ब्याह-शादियों में, खर्च करके अपने पास एक कानी कौड़ी भी उन्होंने नहीं रखी, अगर बड़ी बहू कुछ कहती तो उसे डांटकर कहते—"

सिद्धेश्वरी बीच में ही टोककर बोल उठीं,"ठीक मेरी ही दशा थी, और क्या!"

नयनतारा कहने लगी,"सो तो थी ही। बड़ी बहू को डांट बताकर नन्दबाबू कहते,'तुम्हें फिकर किस बात की है? तुम्हारा नरेन तो है। उसे खूब पढ़ा-लिखाकर वकील कर दिया है, बुढ़ापे में वही हम लोगों को देखेगा-भालेगा। मन में सोच लो, वह तुम्हारा देवर नहीं लड़का है।' पर ऐसा कलजुग है, जीजी, उसी नन्दलाल की आंखों में 'मोतिया बिन्द' हो जाने से जब वह अंधा हो गया और नौकरी चली गयी, तब नरेन वकील ने,—खास सहोदर भाई होकर भी, भइया को रुपये उधार देकर, सूद और मूल मिलाकर उसके पैतृक मकान का हिस्सा तक नीलाम करके ले लिया। अब वह बेचारा भीख मांग के पेट भरता है और रो-रोकर कहता है कि स्त्री की बात न मानने से ही उसकी ऐसी हालत हुई है,—और वह कोई चचेरा सौतेला भाई नहीं, खास सगा अपना भाई था।"

सिद्धेश्वरी मन-ही-मन सिहर उठीं बोली, "कह क्या रही हो मझली बहू?"

नयनतारा ने कहा,"झूठ नहीं कहती, जीजी, इस बात को देश-भर के लोग जानते हैं।"

सिद्धेश्वरी फिर कुछ नहीं बोली। इससे पहले एक बार उनका मन हुआ था कि शैलजा को बुलाकर जाने की मनाई कर दें; और बारबार इस बात को भी वह तरह तरह से सोच रही थीं कि क्या करने से उसका जाना रुक सकता है; मगर अब नन्दलाल की दुरवस्था के इतिहास से उनका अन्तःकरण एकबारगी विकल हो उठा। शैलेजा को रोकने का फिर उन्हें उत्साह नहीं रहा।

गिरीश उस समय अदालत जाने की तैयारी करके जा ही रहे थे कि रमेश ने आकर कहा,"मैं देश के घर में जाकर रहने की सोच रहा हूं।"

"क्यों?"

रमेश ने कहा,"कोई नहीं रहेगा तो घर-द्वार-टूट-फूटकर खंडहर हो जाएगा और जमीन जगह तालाब वगैरह भी खराब हो जाएंगे। यहां मेरा कोई काम भी नही है, इसी से कह रहा हूं।"

अच्छी बात है! अच्छी बात है! कहकर गिरीश ने प्रसन्न होकर सम्मति दे दी।

छोटे भाई की प्रार्थना के भीतर कितना गृह-विच्छेद और कितना मनोमालिन्य छिपा हुआ है, इसकी उस भले आदमी को कुछ भी खबर न थी। उनके अदालत चले जाने के बाद ही शैलजा ने बड़ी जिठानी के कमरे की चौखट के पास जाकर उन्हें घुटने टेककर प्रणाम किया, और सिर्फ एक मामूली-सा ट्रंक मात्र साथ लेकर वह दोनों लड़कों का हाथ

पकड़ के घर से बाहर निकल गयी।

सिद्धेश्वरी बिस्तर पर काठ होकर पड़ी रही, और नयनतारा अपने ऊपर के मंज़िल के कमरे में जाकर खिड़की खोल कर देखने लगी।

8

दो बड़े-बड़े पलंग एक साथ मिलाकर सिद्धेश्वरी के बिछौने होते थे। इतने बड़े बिस्तर पर भी उन्हें स्थानाभाव के कारण संकुचित होकर कष्ट के साथ रात बितानी पड़ती थी। इस विषय को लेकर वे नाराज होने से भी न चूकती थीं और घर के सब लड़कों को एक संग अपने पास सुलाये बगैर भी उन्हें चैन न पड़ता था। सारी रात उन्हें सावधान रहना पड़ता था और कई बार उठना पड़ता था। किसी दिन भी स्वास्थ्य और निश्चिन्त मन से वे नहीं सो सकती थीं। साथ ही इन सब उपद्रवों से बचाने का अधिकार भी वे शैलजा या और किसी को न देती थीं। उनकी ऐसी बीमारी की हालत में भी किसी लड़के के लिए ताईजी के बिछौने के सिवा और कहीं सोने का स्थान नहीं था। कन्हाई का सोना खराब है, उसके लिए इतनी जगह चाहिए; छोटका अक्सर एक कसूर कर डालता है, उसके लिए मोमजामा बिछाने की व्यवस्था थी; विपिन सोते में चक्के की तरह घूम जाता है, उसके लिए दूसरे तरह की व्यवस्था थी; पटल को ढाई तीन बजे के वक्त भूख लगा करती है, उसके लिए सिरहाने के पास खाने की तैयारी रखनी पड़ती थीं, छोटे की के छाती पर कन्हाई ने पैर तो नही रक्खें है, पटेल की नाक विपिन के घुटनों तले दब तो नहीं गयी है, यह सब देखते देखते और बकझक करते-करते ही उनकी रात बीतती थी। आज सोते समय बिछौने पर इतनी जगह खाली पड़ी रहेगी, शैलजा के जाते समय सिद्धेश्वरी को इस बात का होश नहीं था। नयनतारा के करोड़ों सिरकी कसमें दिलाने पर वे रात को नीचे के कमरे से खा-पीकर ऊपर आ रही थीं, सहसा शैलजा के कमरे की तरफ निगाह पड़ते ही उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे उनकी छाती पर किसी ने मुगरे से मारा हो। कमरे के भीतर बत्ती नहीं जली थीं, दरवाजे दोनो खुले पड़े थे, सिद्धेश्वरी मुँह फेरकर जल्दी से अपने कमरे में आ पहुँचीं। बिछौने की तरफ देखा, थोड़ी-सी जगह में विपिन और छोटका सो रहे हैं, बाकी बिस्तर तप्त मरूभूमि की तरह खाँव-२ कर रहा है। अपने थोड़े से निर्दिष्ट स्थान में वे आँख मींचकर चुपचाप पड़ रहीं, परन्तु उन मिची हुई आंखों के किनारों से जो गरम-गरम आँसू बहते रहे, उनसे तकिया भींजने लगा। घर के लड़कों के खाने-पीने के मामले में उन्हें हमेशा से बहम रहता था। इस विषय में अपने सिवा वे और किसी का भी विश्वास न करती थीं। उनका यह बँधा हुआ संस्कार कि खुद उनके बगैर मौजूद रहे, लड़के तरह तरह के बहाना बना कर कम खाते हैं। उनके सिवा और किसी में यह बूता नहीं कि कोई इस बात को पकड़ सके। दैववश अगर उनकी अनुपस्थिति में किसी लड़के ने खा लिया, वे स्वयं खाते न देख सकीं तो उससे जिरह करके, उसके पेट पर हाथ लगाकर अनुभव करके, नाना प्रकार से साबित करने की कोशिश किया करतीं कि उसने हरगिज पूरी खुराक नही खायी है और इस गलती के सुधार के लिए उस लड़के को उसी वक्त उनके ऑखों के सामने खड़े होकर एक कटोरा दूध पीना पड़ता। शैलजा लड़कों

की तरफ से कभी-कभी लड़ जाती थी और जबरदस्ती खिलाने की हानियों पर बहस करने लगती थी। परन्तु सिद्धेश्वरी को भीतर से गुस्सा दिला देने के सिवा उसका और कोई फल न होता था। जब कभी किसी लड़के की तरफ देखतीं तो उन्हें यही मालूम होता कि लड़का झटका जा रहा है ! इन सब बातों से उनकी उत्कंठा और अशांति का अन्त न था।

आज बिस्तर पर पड़े-पड़े उनको रह-रहकर यही ख्याल आने लगा कि देश के घर में अनेक प्रकार की विशृंखलताओं में शायद कन्हाई का पेट नहीं भरा और पटल तो जरूर ही बिना खाये-पीये सो गया है। शायद उसे जगाकर कोई खिलायेगा भी नहीं, शायद बेचारा रात-भर भूखा तड़फड़ाता रहेगा। कल्पना में जैसे-जैसे उन्हें ये सब दुर्घटनाएँ स्पष्ट दिखाई देने लगीं, वैसे क्रोध, दुःख और वेदना से उनकी छाती फटने लगी। पास के कमरे में गिरीश मजे से सो रहे थे। जब उनसे सहा न गया, तब बहुत रात बीते वे पति के बिस्तर के पास जा पहुँचीं। देह पर हाथ लगाकर उन्होंने जगाकर पूछा,—"अच्छा, मान लिया कि पटल को शैल ले जा सकती है, लेकिन, कन्हाई तो उसके पेट का लड़का नहीं, तब उस पर उसका क्या जोर है ?"

गिरीश ने नींद की झोंक में ही जवाब दिया,"कुछ नहीं।"

सिद्धेश्वरी आशान्वित होकर पलंग के एक किनारे बैठ गयी, बोलीं, "ऐसी दशा में अगर हम नालिश कर दें तो उसे सजा हो सकती है ? हो सकती है या नहीं, ठीक बताओ ?"

गिरीश ने बिना किसी संदेह के कह दिया,"जरूर हो सकती है।"

सिद्धेश्वरी आशा और आनन्द से उत्तेजित हो उठीं। फिर पूछा,"सो तो हुआ; पर पटल के बारे में तो सोचो,—उसे तो मैंनें ही पाल-पोसकर बड़ा किया है। हाकिम को अगर समझाकर कहा जाये कि मेरे बिना वह रह नहीं सकता और ऐसा भी हो सकता है कि मेरी याद कर-करके वह सख्त बीमार पड़ जाये तो हाकिम क्या यह राय नही देंगें कि वह अपनी ताई के पास ही रहे ? वाह ! तुम तो नाक बजाने लगे ! मेरी बात शायद सुनी ही नहीं !"-यह कहकर सिद्धेश्वरी ने पति के पैर पकड़कर जोर से हिला दिये।

गिरीश ने जागकर, "हरगिज नहीं।"

सिद्धेश्वरी गुस्से में आकर कहने लगीं,"क्यों नहीं ? माँ होने से ही वह लड़के को मार डालेगी, महारानी विक्टोरिया का कोई ऐसा हुक्म नहीं है ! कल ही अगर मझले देवर जी से वकील की चिट्ठी दिलवा दूँ तो फिर क्या हो ?" यह कहकर सिद्धेश्वरी उत्तर की आशा में कुछ देर खड़ी रहकर प्रत्युत्तर में नाक बजने की आवाज सुनकर गुस्सा होकर चल दीं।

रात-भर उन्हें जरा भी नींद नहीं आयी। कब सबेरा हो और कब हरीश के जरिये वकील की चिट्ठी भेजकर लड़के का दावा करें,-चिट्ठी पाकर किस तरह डरकर और पछताकर कन्हाई और पटल को वे लोग यहाँ पहुँचा जायँ, इन्हीं सब आशाओं और आकाश-कुसुमों की कल्पनाओं ने उन्हें रात-भर जगाये रखा।

सबेरा होते-न-होते उन्होंने हरीश के दरवाजे का कड़ा हिलाकर पुकारा,"मझले लालाजी, उठो ?"

हरीश ने घबराकर दरवाजा खोल दिया और आश्चर्य से देखा।

सिद्धेश्वरी ने कहा,"देरी करने से काम नहीं चलेगा, अभी तुरंत छोटे लालाजी के नाम वकील की चिट्ठी लिखकर दरवान के हाथ भिजवा देनी होगी। तुम खूब अच्छी तरह लिख दो कि चौबीस घंटे के अन्दर जवाब न मिला तो नालिश कर दी जायगी।"

हरीश को इस विषय में उत्तेजित करना व्यर्थ था। उसने उसी वक्त राजी होकर धीमे गले से पूछा,"बात क्या है भाभीजी ? बैठ जाओ, बैठ जाओ, क्या क्या ले गया है ? दावा जरा-कुछ ज्यादा का होना चाहिए ? समझीं कि नहीं ?"

सिद्धेश्वरी ने खाट पर आसन ग्रहण करके दोनों आँखें फाड़कर अपना दावा विस्तार से कह सुनाया।

सुनकर हरीश का हर्षोज्जवल चेहरा स्याह पड़ गया। बोला,"तुम क्या पागल हो गयी हो, भाभी ? मैं समझ बैठा कि और कोई बात होगी। अपने लड़कों को वे लोग लिवा ले गये हैं, इसमें तुम क्या कर सकती हो ?"

सिद्धेश्वरी को विश्वास नहीं हुआ। कहने लगीं,"तुम्हारे भइया ने तो कहा है कि नालिश करने से उनको सजा हो जाएगी।"

हरीश ने कहा, "भइया ऐसी बात कह ही नहीं सकते। तुमसे मजाक किया होगा।"

सिद्धेश्वरी ने गुस्सा होकर कहा,"इतनी उमर हो चुकी, हँसी मजाक किसे कहते है, सो क्या मैं समझती नहीं लालाजी ? तुम्हारे ही मन में जब नहीं है कि लड़कों को मैं अपने पास रखूँ, तब साफ-साफ क्यों नही कहते ?"

हरीश ने लज्जित होकर अनवेक प्रकार से समझाने की कोशिश की कि इस दावे को अदालत मंजूर नहीं करेगी। बल्कि इससे और कोई नया दावा खड़ा करके उन्हें काबू किया जा सकता है। हम लोगों के लिए वही करना उचित है।

सिद्धेश्वरी मारे क्रोध के उठ खड़ी हो गयी और बोलीं,"तुम अपना 'उचित' अपने ही पास धरे रखो लालाजी, मेरे तीन पन तो बीत चुके, एक रह गया है, सो इसके लिए झूठा दावा-आवा नहीं कर सकती। परलोक में मेरी तरफ से तुम तो जवाब देने जाओगे नहीं। तुम न लिखों, मैं मनी को भेजकर नरेन बाबू से लिखवा मँगाती हूँ।"इतना कहकर वे उठकर चल दीं।

दूसरे दिन सबेरे से ही किसी एक बाजार-खर्च के हिसाब के बारे में सिद्धेश्वरी घर के मुनीम गणेश चक्रवर्ती से बहस कर रही थीं। वह बेचारा नाना प्रकार से समझाने की कोशिश कर रहा था कि बारह गंडे रूपयों पर और भी दो रूपये खर्च हो जाने से पूरे पचास रूपये खर्च हो गये हैं। मगर इस कार्य में गृहिणी नवीन दीक्षित हुई थीं। उनकी नूतन धारणा हो गयी थी कि उन्हें बेवकूफ बना सभी लोग रूपये चुराते है, लिहाजा गणेश ने भी रूपये चुराये हैं इसमें कोई शक नही !वे बहस कर रही थीं—

"पचास रूपये तो एक आंचल भर रूपये होते हैं, गणेश । मैं पढ़ी-लिखी नहीं, सो इसलिए क्या तुम मुझे ऐसे ही समझा दोगे कि बारह गंडे रूपयों से सिर्फ दो रूपये और अधिक खर्च हुए सो पचास के पचास रूपये सब खर्च हो गये ? और कुछ भी नहीं बचे ? मैं क्या इतनी बेवकूफ हूँ ?"

गणेश ने व्याकुल होकर कहा,"मांजी दीदी को बुलाकर न हो तो— ।"

"नीला को बुलाकर हिसाब किताब समझना होगा ? वह मुझसे ज्यादा समझेगी ? नहीं गणेश, यह सब अच्छी बात नहीं है। शैल नहीं है, इसीसे जैसा जी में आयेगा, तुम लोग हिसाब दे दोगे-सो नहीं हो सकता, कहे देती हूँ। न वह जाती, न मुझे इतना झझट उठाना पड़ता। मुँहजली को दस साल की उम्र में बहू बनाकर घर लायी, पाल-पोसकर इतनी बड़ी की अब वह मिजाज दिखाकर घर के दो-दो लड़कों को साथ लेकर बाहर निकल गयी। सो चली न जाये, मैं भी खबर रख रही हूँ। कन्हाई-पटल की किसी दिन जरा भी तबीयत खराब सुनी मैंने कि फिर देखूँगी कि कैसे वह उन्हें रखती है !-तुम अभी जाओ, दोपहर को आकर ठीक याद करके हिसाब बता जाना कि इतने रूपये कहाँ गये उनका क्या किया ?" इतना कहकर गणेश को उन्होंने बिदा कर दिया।

वह बेचारा हतबुद्धि-सा होकर बाहर चल गया।

मझली बहू ने आकर कहा, "जीजी, कह नहीं सकती, पर मैंने भी गृहस्थी चलायी है, कौड़ी-कौड़ी का सारा हिसाब रखा है। छोटी बहू नहीं है, इसलिए तुम इतना झँझट उठाओगी और मैं बैठी-२ देखा करूँगी, यह ठीक नही। मेरे सामने चालाकी करके हिसाब में गड़बड़ी करने की किसी में हिम्मत नहीं।

सिद्धेश्वरी ने कहा,"यह तो अच्छी बात है, मझली बहू। मुझे इतनी कमजोरी की हालत में क्या इतना झंझट उठाना अच्छा लगता है ! शैल थी, जहाँ का जितना रूपया आता था, उसका हिसाब रखना, खर्च करना, बैंक में भिजवाना, सब-कुछ वही किया करती थी । यह सब काम क्या मुझसे हो सकता है ? अच्छी बात है, अब से तुम्हीं सब किया करो, मझली बहू।" इतना कहके चाबी लेकिन उन्होंने अपने ही आँचल में बॉध ली।

दिन बीतने लगे। नयनतारा हजार तरकीबें करके भी लोहे के संदूक की चाबी अपने आँचल में न बाँध सकी। नयनतारा अत्यन्त कुशल और चतुर है, बहुत कुछ आगे की सोचकर काम कर सकती है। पर इस मामले में उससे एक जबरदस्त गलती हो गयी। उसने अपने स्वार्थ के लिए एक निरीह सीधे-सादे आदमी के मन में संदेह का ऐसा बीज बो दिया जिसके पकने का समय आने पर फल-भोग से वह अपने को भी न बचा सकी। वह जैसे अपने शत्रु-पक्ष पर संदेह करना सीख जाता है, वैसे ही मित्र-पक्ष से भी उसका विश्वास उठ जाता है; लिहाजा सिद्धेश्वरी जिस क्षण में छोटी बहू पर से विश्वास खो बैठीं, उसी क्षण से मझली बहू पर भी संदेह करना सीख गयी।

9

किसी कमी के लिए—फिर चाहे वह कितनी ही बड़ी या जबरदस्त क्यों न हो, आदमी हमेशा शोक नहीं कर सकता। सिद्धेश्वरी के लिए भी शय्या की शून्यता क्रमश: पूर्ण होने लगी। शैलजा के कमरे की तरफ उनसे पाँव भी न रखा जाता था; पर अब उस बरामदे को वे आसानी से पार कर जाती हैं। उसका ख्याल भी नहीं आता। कन्हाई और पटल की विविध उपायों से खबर पाने के लिए वे दिन-रात उत्कंठित रहा करती थीं,-अब उस उत्कंठा में से आधी दूर हो चुकी है। इस तरह सुख-दु:ख में एक साल बीत गया।

उस दिन सहसा सिद्धेश्वरी के कान में भनक पड़ी कि गाँव की जमीन जायदाद के बारे में आज छह महीने से छोटे देवर के साथ उन लोगों का मुकदमा चल रहा है और मुकद्दमा चला रहे हैं हरीश खुद। दीवानी में तो मामला चल ही रहा है,—इस बीच में दो-एक फौजदारी मामले भी हो गये हैं !खबर सुनकर सिद्धेश्वरी डर और चिंता के मारे मर गयी।

पति से पूरा कुतूहल मिटाने लायक समाचार मिलना मुश्किल जानकर वे शाम के वक्त हरीश के पास पहुँची। उनसे पूछा,"क्यों लालाजी, छोटे लालाजी तुम्हारे भइया से मुकद्दमा लड़ा रहे हैं ?"

हरीश ने जरा ऊँचे दर्जे की हँसी हँसकर कहा, "हो तो यही रहा है भाभीजी !"

सिद्धेश्वरी का चेहरा फक पड़ गया बोलीं, " मुझे तो विश्वास नहीं होता लालाजी, अब भी तो चन्द्र-सूर्य निकलते हैं !"

नयनतारा खाट के एक किनारे बैठी खेदी को सुला रही थी, मृदु कण्ठ से कह उठी, "सो तो निकलते ही हैं, जीजी। और इन्हीं छोटे देवर को तुम हजार रूपये रोजगार के लिए दिया करती थीं। वे सब तब तो गये नहीं, जा रहे है अब !"

सिद्धेश्वरी ने दु:सह आश्चर्य से कुछ देर तक मौन रहकर पूछा,—"मुकद्दमा क्यों किया जा रहा है ?"

हरीश ने कहा, "क्यों ? देखा कि मुकद्दमा वगैर किये कोई चारा ही नहीं। अपने गाँव की सम्पत्ति ही तो असली सम्पत्ति है। देखा कि हमारे बाद अपने मनी-हरी-विपिन छोटका कट्ठे-भर जमीन जायदाद तो पाने से रहे, वहाँ के घर तक में भी शायद घुसने नहीं पायेंगे। समझ लो ना भाभी, देश में जो कुछ है, उस सब पर तो वह कब्जा करके बैठ ही गया है। मालगुजारी वगैरह वसूल कर रहा है खाता-पीता है, एक पैसा तक देने का नाम नहीं लेता। जमीन-जायदाद जो कुछ है, सो सब भइया की ही बनायी तो है, फिर भी, उनकी चिट्ठी का जवाब तक उसने नहीं दिया। ऐसा नमकहराम है रमेश। मैं भी उस मकान से उसे निकालकर ही छोड़ूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

सिद्धेश्वरी फिर कुछ देर चुप रहकर बोलीं, "अच्छा, वे भी बाल-बच्चे लेकर कहाँ जायेगें ?"

हरीश ने कहा, "इस बात से तो हम लोगों को कोई मतलब नहीं, भाभी।"

सिद्धेश्वरी ने पूछा, "तुम्हारे भइया ने क्या कहा है ?"

हरीश ने कहा, "भइया कहीं अगर ऐसे होते तो फिर चिन्ता ही क्या थी भाभी। जब आँखों मे उँगली देकर दिखा दिया कि रमेश उन्हीं का खा-पीकर उन्हीं के रूपये से उन्हीं की जमीन-जायदाद को लेकर फसाद कर रहा है, तब कहीं उन्होंने अपनी राय दी। फौजदारी में रमेश तो भइया को ही फँसाने की कोशिश में था। बड़ी मुश्किल से उन्हें बचा पाया है।"

नयनतारा ने फुसफुसाते हुए कहा, "अच्छा, मान लो कि छोटे लालाजी ही कसूरवार हैं, पर मैं तो सिर्फ यही सोचती हूँ जीजी, कि छोटी बहू ने कैसे इस मामले में राय दे दी ? हम लोग सब दुष्ट हो सकते हैं, बुरे हो सकते हैं, पर वह तो अपने बड़े जेठजी को जानती

हैं। उन्हें जेल भिजवाने से उसे क्या सुख मिल जाता?"

सिद्धेश्वरी बारम्बार ऊपर से नीचे तक सिहर उठीं। फिर उन्होंने एक बात भी नहीं की और उठकर बाहर चल दीं।

वहाँ से चलकर वे पति के कमरे में गयीं। गिरीश बाकायदा काम में मशगूल थे। मुँह उठाकर स्त्री के चेहरे की तरफ देखते ही आज उसकी अस्वाभाविक पाण्डुरता उनकी निगाह में भी पड़ गयी। हाथ के कागजात रखकर उन्होंने कहा, "आज कब बुखार आया?"

सिद्धेश्वरी ने अभिमान-भरे स्वर में कहा, "गनीमत है, पूछा तो सही!"

गिरीश ने व्यस्त होकर कहा, "खूब! पूछता नहीं तो क्या करता हूँ? परसों ही तो मनि को बुलाकर पूछा था कि अपनी माँ को दवा-अवा देता है? सो आजकल के लड़के ऐसे हो गये है कि मां-बाप तक को नहीं मानते।"

सिद्धेश्वरी नाराज होकर बोलीं, "बुढ़ापे में झूठ तो मत बोला करो। पन्द्रह दिन हो गये मनि अपनी बुआ के यहाँ इलाहाबाद गया है और तुमने उससे पूछ लिया परसों! कभी जो बात की नहीं, सो क्या अब करोगे? खैर जाने दो, मैं इसके लिए नहीं आयी। मैं आई हूँ यह जानने के लिए कि ममला क्या है? छोटे लालाजी से मुकद्दमा किस बात का चल रहा है?"-

गिरीश बड़े जोर मे खफा हो पड़े, "वह तो चोर है! चोर है एकदम कंगाल हो गया है! जमीन-जायदाद सब नष्ट कर डाली है। उसे निकाल-बाहर किये बिना देखता हूँ कि अपना कल्याण नही सब बरबाद करके सत्यानाश कर डाला है!"

सिद्धेश्वरी ने प्रश्न किया, "अच्छा, सो तो कर दिया है, पर मामले-मुकदमे तो ऐसे होते नही, खर्च के लिए तो रूपया चाहिए? छोटे लालाजी को रूपया मिल कहाँ से रहा है?"

हरीश उतरकर लड़कों के पढ़ने के कमरे में जा रहा था, भइया के उच्च कण्ठ से आकृष्ट होकर धीरे से उनके कमरे में घुस आया। उसी ने जवाब दिया, "रूपये की बात तो अभी तुरंत मझली बहू ने बता न दी, भाभी! पाटकी दलाली के बहाने भइया से चार हजार रूपये लिये थे, वे तो पास मैं हैं ही; उनके सिवा, छोटी बहू के हाथ में ही तो अब तक रूपये पैसे सब रहते थे, समझ देखो न!"

गिरीश फिर उत्तेजित हो उठे, "मेरा सर्वस्व ले गया है-क्या कुछ भी बाकी छोडा है, हरीश! वह तो एकदम हिताहित ज्ञान शून्य नंगा हो गया है। शुक्रवार के दिन कोर्ट में आकर बोला, "घर-द्वार सबकी मरम्मत कराना है, पाँच सौ रूपये चाहिए।"

हरीश दंग रह गया, बोला, "कहते क्या हो भइया? हिम्मत तो कम नहीं है!"

गिरीश ने कहा, "हिम्मत की न पूछो। एकदम लम्बी-चौड़ी फर्द पेश कर दी, यहाँ मरम्मत कराना है, वहां गँथनी कराना है, इसे बिना बदले काम नही चलने का, उसे बिना बनवाये गुजर ही नहीं। सिर्फ इतना ही नहीं, घर-गृहस्थी में तंगी है, जोड़े के कपड़े खरीदने है, धान और आलू खरीद के रखने हैं, इसी तरह ही हजारों जरूरतें दिखाकर और भी तीन सौ रूपये की जरूरत बतायी।"

हरीश ने अपने असह्य क्रोध को किसी तरह दबाते हुए कहा, 'निर्लज्ज कहीं का ! फिर इसके बाद ?"

गिरीश ने कहा, "ठीक कहा तुमने, ठीक ऐसा ही है !अभागे के हया-शरम तो एकबारगी रही ही नहीं, जरा भी नहीं । सब मिलाकर आठ सौ रूपये ले लिये तब कहीं पीछा छोड़ा ।"

"ले गया ?आपने दे दिये ?"

गिरीश ने कहा, "नही तो क्या छोड़ देता ? लेकर ही तो टला !"

हरीश का सारा चेहरा पहले तो आग-सा हो उठा, फिर दूसरे ही क्षण छाया की तरह हो गया । वह स्तब्ध होकर कुछ देर बैठा रहा, फिर बोला, "तो फिर मामला-मुकदमा करने से फायदा क्या है भइया ?"

गिरीश ने उसी क्षण कहा, "कुछ नही, कुछ नहीं । अपनी गृहस्थी भी चला सके, अभागे में इतनी भी शक्ति नही हैं,-ऐसा भोंदू है । दिन-रात ताश-चौसर खेलना, खाना-पीना और सोना, बस । आदमी जैसे शिव की मूर्ति स्थापन करते है न, हम लोगों का भी वही हुआ है, समझे न हरीश !"फिर अपनी रसिकता से आप ही मस्त होकर हो-हो करके उन्होंने हॅस के घर भर दिया !

हरीश से और न सहा गया, वह उठकर चुपचाप चल दिया । दाँत पीसता हुआ कहता गया. "अच्छा मैं अकेला ही देखता हूँ ।"

माघ महीने की सुदी सप्तमी को मुकद्दमे का दिन था । उसके दो दिन पहले एक जातीय कन्या के ब्याह के मौके पर कन्या के पिता ने गिरीश को आ पकड़ा, "भाई साहब, आप मौजूद रहकर मेरी लड़की का ब्याह कर दीजिए, मेरी यह बड़ी इच्छा है । आपको कम से कम एक दिन के लिए देश जाना ही होगा ।"

'ना'शब्द तो गिरीश के मुँह से निकल ही कैसे सकता था ! वे उसी वक्त राजी होकर बोले, "जाऊँगा क्यों नही भाई साहब, जरूर जाऊँगा ।"

कन्या का पिता निश्चिंत होकर चला गया । परन्तु इस 'जरूर' शब्द के वास्तविक अर्थ यथासमय क्या होगे, इस बात को सबसे ज्यादा समझती थी सिद्धेश्वरी । लिहाजा वचन देने की बात को गिरीश भले ही भूल गये हों, पर वे नही भूली ।

उस तारीख को सबेरे गिरीश मानों आसमान से गिरकर बोले, "कहती क्या हो !आज तो मेरा वह जयपुर का मुक— ।"

"नही, सो नही हो सकता । तुम्हें जाना ही होगा । वकील होने के बाद से झूठ ही तो बोलते आ रहे हो, आज एक बात तो रख दो । परलोक का डर क्या तुम्हें जरा भी नहीं है ?"

गिरीश ने कुण्ठित होकर कहा, "परलोक ? सो ठीक है, पर ।"

"नहीं, इस तरह काम नहीं चलेगा, तुम्हे जाना है-जाओ ।"

अतएव गिरीश को देश जाना ही पड़ा ।

जाते समय सिद्धेश्वरी ने उनसे अत्यन्त कोमल स्वर में कहा, "दोनों लड़कों

को—"और यह कहकर वे सहसा रो दीं।

"अच्छा अच्छा, सो देखा जाएगा।" कहते हुए गिरीश घर से चल दिये। परन्तु, देखा क्या जायगा, सो पति-पत्नी में इस बात को किसी ने नहीं समझा। नयनतारा ने सिद्धेश्वरी को इशारा करके एकान्त में बुलाकर कहा-"उस घर में कुछ खाने-पीने की मनाई क्यों नहीं कर दी जेठजी से।"

सिद्धेश्वरी ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों?"

नयनतारा ने चेहरे को विकृत-गम्भीर बनाकर कहा, "कुछ कहा थोड़े ही जा सकता है!"

सिद्धेश्वरी की आँखों से तब भी आँसू बह रहे थे, आंचल से उन्हें पोंछकर वे जरा चुप रहके बोलीं, "सो तुम कर सकती हो मझली बहू"शैल का गला काटकर फेंक दिया जाय तो वह ऐसा नहीं कर सकती, यह मैं जानती हूँ। कहकर वे जल्दी से चली गई।

दो-एक दिन पहले से ही मुकदमें की पैरवी के लिए सदर जाने के लिए रमेश तैयारी कर रहा था। शैल वहाँ नहीं थी। वह पूजा घर में अपना अंतिम जेवर खोलकर, घुटने टेके, गले में आंचल डाल के हाथ जोड़कर मन ही मन कह रही थी, 'भगवान, अब तो कुछ बचा नहीं, अब जैसे भी हो, मुझे निष्कृति दो। मेरे बच्चे खाये बगैर भूखों मर रहे हैं, मेरे पति दुश्चिन्ता से कंकाल हो गये हैं, हड्डी निकल आयी है।"

"ओ रे कन्हाई,-ओ रे पटल-"

शैलजा चौंक उठी, यह तो उसके जेठजी की आवाज है। खिडकी में से देखा, वे ही तो हैं। सपेद बाल, सपेद काली मूँछें, वही शान्त स्निग्ध सौम्य मूर्ति !हमेशा से जैसी देखती आई है, ठीक वैसा ही, कही भी किसी अंग में जैसे जरा भी परिवर्तन घटित नही हुआ। कन्हाई पढ़ाई छोड़कर दौड़ा आया और पॉव छूए। पटल खेल छोड़कर हॉफता आ पहुँचा। उसे उन्होंने गोद में उठा लिया।

नरेन ने तुरंत भीतर से निकलकर प्रणाम किया, पैरों की धूल ली।

गिरीश ने कहा, "अब इतने वक्त कहॉ जाना होगा?"

रमेश ने कुण्ठित और अस्पष्ट स्वर में कहा, "जिले को-"

गिरीश पलक मारते ही बारूद की तरह भक से जल उठे, " अभागा नालायक कही का, मेरा ही खायेगा-पहनेगा और मुझसे ही मुकदमा लड़ेगा?तुझे मैं एक दमड़ी की भी जमीन-जायदाद नहीं देने का,—दूर हो मेरे घर से, अभी जा यहॉ से,-एक मिनट की भी देर मत कर, इन्हीं कपड़ों से निकल जा।"

रमेश ने न तो कोई बात कही और न मुँह उठाकर भाई की तरफ देखा ही; जैसे खड़ा था वैसे ही बाहर निकल गया। भइया की जैसी वह भक्ति और सम्मान करता था, वैसे ही उन्हें पहचानता भी था। इस तिरस्कार की निस्सारता का पूरा-पूरा अनुभव करके वह उसी वक्त चुपचाप चला गया।

तब शैलजा ने आकर दूर से गले मे आँचल डालकर प्रणाम किया।

गिरीश ने आशीर्वाद देकर कहा, "आओ आओ बेटी, आओ ।"उनके इस स्वर में न तो कोई गरमी थी, न जलन। बाहर से कोई अपरिचित आता तो नहीं कह सकता कि

यही आदमी क्षण-भर पहले इस तरह चिल्ला रहा था।

गिरीश की निगाह में कभी कोई बात नहीं आया करती, मगर आज, मालूम नही कैसे, उनकी दृष्टि शक्ति को आश्चर्य निपुणता प्राप्त हो गयी। वे शैलजा को देखकर बोले, "तुम्हारे शरीर पर गहने क्यो नही दीख रहे है, छोटी बहू?"

छोटी बहू सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही।

गिरीश का कण्ठस्वर फिर एक एक पर्दा ऊँचा चढ़ने लगा, "उसी अभागे सूअर ने बेच खाया है! गहने किसके है? मेरे है! उसे मै जेल भिजवाकर छोड़ूँगा।" इत्यादि-इत्यादि।

बाइस तारींख को मुकद्दमे की पेशी का दिन था। शाम के वक्त हरीश स्याह चेहरा लिये हुगली की अदालत से घर लौट आया और कपड़े-लत्ते बिना उतारे ही बिस्तर पर पड़ रहा।

नयनतारा रूआसी होकर हजारो प्रश्न करने लगी; खबर पाकर सिद्धेश्वरी भी दौड़ी आयी। मगर हरीश आते ही करवट लेकर इस तरह चुपचाप पड रहा कि फिर उसके मुँह से कोई भी कुछ जवाब न निकलवा सका।

मुकद्दमे मे हार हो गयी है, इसमे मे तो किसी को कोई सन्देह रहा ही नही। दोनो देवरानी-जिठानी बराबर समझाने लगी-मुकदमे मे हार-जीत तो होती, इसके सिवा अभी तो हाईकोर्ट है, विलायत मे अपील करना है, अभी से ऐसे हाथ-पैर ढीले कर बैठने की तो कोई वजह नही।

परन्तु आश्चर्य यह कि इन दोनो स्त्रियो को जितनी आशा थी, जितना भरोसा था, खुद वकील होकर भी हरीश मे उसका क्षणमात्र न दिखा।

जब असह्य हो उठा तब सिद्धेश्वरी ने हरीश को हिलाकर कहा, "लालाजी मे कहती हूँ कि तुम लोगो की हार नहीं होगी। जितना रूपया लगे मै दूँगी, तुम हाईकोर्ट लडो। मैं आशीर्वाद देती हूँ, तुम अवश्य जीतोगे।"

इतनी देर मे हरीश ने करवट बदलकर सिर हिलाते हुए कहा, "नही भाभीजी, सो अब नहीं हो सकता, सब खतम हो चुका है। हाइकोर्ट जाओ चाहे विलायत लड़ो, अब कोई रास्ता नहीं है। जायदाद सब भइया के नाम से खरीदी हुई थी। वहाँ ब्याह मे गये थे, सो वे अपना सर्वस्व छोटी बहू के नाम दान कर आये है, रजिस्ट्री तक हो चुकी है। देश की तरफ तो अब मुँह करने का भी रास्ता नही रहा।"

देवरानी-जिठानी दोनो की दोनो एक दूसरे की तरफ देखती पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रह गयी।

शाम के बाद गिरीश के अदालत से लौट आने पर जो काण्ड हुआ उसका तो वर्णन ही नही हो सकता। ज्ञान-हीन पागलपन कहकर उनका तिरस्कार करने मे किसी ने कसर नही छोड़ी।

मगर गिरीश सबके विरूद्ध खड़े होकर क्रम से समझाने लगे कि इसके सिवा और कोई रास्ता ही न था। अभागा, बदमाश, नालायक छोटी बहू का जेवर बेचकर खा गया।

और जरा देर होती तो मकान की ईंट-लकड़ी तक बेचकर खा जाता, देश का सात पीढ़ी का घर-द्वार तक लुप्त हो जाता। सब बातों पर विशेष विचार करके ही मैं मुखर्जी-वंश की बोझ से लदी हुई डूबती नाव की 'निष्कृति' कर आया हूँ, उसे बचाने की तजवीज कर आया हूँ।



मूल बांग्ला : चरित्रहीन
प्रथम प्रकाशन : नवम्बर सन् 1917

चरित्रहीन

चरित्रहीन

1

पश्चिम के एक बड़े शहर की बात है। शीत ऋतु आना ही चाहती थी। परमहंस रामकृष्ण के एक शिष्य किसी अनुष्ठान के लिए सहायता पाने के आशा से चन्दा इकट्ठा करने आए हुए थे। उनके उपदेश के लिए एक बड़ी सभा बुलाई जाये और उसका सभापति उपेन्द्र बाबू को बनाया जाये—इसी प्रस्ताव को लेकर प्रातःकाल कालेज के छात्रों का एक समूह उपेन्द्र के घर जा पहुँचा।

उपेन्द्र ने पूछा—'पर कौन-सा सदनुष्ठान है, जरा मैं भी तो सुनूं।'

छात्रों ने कहा—'यह तो अभी मालूम नहीं हुआ है। स्वामी जी ने उसे केवल इतना ही कहा है कि सभा में ही उस विषय को वे विस्तार से समझायेंगे। इसलिए सभा बुलाई जा रही है।'

उपेन्द्र ने और कोई प्रश्न नहीं किया। वे सहमत हो गए। ऐसा करना उनके स्वभाव का एक अंग ही बना गया था। विश्वविद्यालय की परीक्षाएं उन्होंने ऐसे सम्मान के साथ पास की थी कि विद्यार्थी-समाज उनको बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। इसे वे भी जानते थे। इसी से किसी भी काम-काज के आ पड़ने पर उपेन्द्र मोहवश उनके अनुरोध टाल सकते थे। विश्वविद्यालय की सरस्वती के कृपापात्र होने के बाद कचहरी की लक्ष्मी की सेवा मे लग जाने पर भी बच्चों के जिमनास्टिक के अखाड़े से लेकर फुटबाल, क्रिकेट और डिबेटिंग क्लब तक के ऊंचे स्थान पर उन्हें ही बैठना पड़ता था। पर आज लोग जिस सभा के सभापतित्व का प्रस्ताव लेकर आये थे उसमें जाकर सभापति के आसन पर चुपचाप बैठ जाना तो नहीं था, कुछ-न-कुछ बोलना अवश्य था। एक आदमी की ओर संकेत करके बोला—'अरे भाई, सभा में कुछ बोलना तो पड़ेगा ही। किसी सभा के उद्देश्य के सम्बन्ध में बिल्कुल अन्धकार मे रहकर उसका सभापतित्व करना क्या अच्छा होगा? मैं तो ठीक नहीं समझता। तुम्हारा क्या विचार है ?'

उनका प्रश्न बहुत ही उचित था, लेकिन उनमे से किसी को कुछ पता न था। बाहरी आंगन मे , फूलो से लदे हुए एक पुराने उड़हुल के वृक्ष के पास विद्यार्थियों का वह दल उपेन्द्र को मध्य मे बैठाकर, जब संसार के सब सदनुष्ठानों और सत्कार्यो की सूची बनाने मे रत था, उसी समय दिवाकर के कमरे से एक आदमी ने चुपचाप सबकी आंखें बचाकर बाहर निकलना चाहा।

दिवाकर उपेन्द्र का ममेरा भाई है। बचपन मे माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण

मामा के ही घर पला था। बाहर एक छोटी कोठरी थी, उसमें दिन को पढ़ता और रात को सोता था। आयु उन्नीस वर्ष की थी। एफ० ए० पास कर बी० ए० में पढ़ रहा था।

उपेन्द्र की दृष्टि इस कन्नी काटकर भागने वाले पर पड़ते ही उन्होंने पुकार कर कहा—'सतीश, खूब, चुपके-चुपके भागे जा रहे हो, इधर आओ—'इतने दिन कहां थे भाई?'

संकोच दूर कर सतीश ने मुस्कराते हुए कहा—'यहां नहीं था। इलाहाबाद चाचा के यहां गया था।' वह कुछ और कहना ही चाहता था कि इतने में एक फ्रेंचकट दाढ़ी और अल्बर्टफैशन के बालों वाला चश्माधारी युवक एक आंख मींचकर और दांतों को बाहर निकालकर बोल उठा—'क्यों? क्या अबके मन को कुछ गहरी चोट लगी है?'

इस साल भी वह एन्ट्रेन्स में नहीं भेजा गया था, यह बात सभी जानते थे। इसी से वह बात बड़ी भद्दी और बेढंगी लगी। सबने लज्जा से सर नीचा कर लिया। उसका यह व्यंग तीर किसी को भी अच्छा न लगा। कहीं से जरा भी सहारा न पाकर चुटकी लेने वाले को चुप हो जाना पड़ा। पर सतीश ने उसके बदले मुस्कराते हुए कहा—'भूपति बाबू, जिसके मन होता है, उसे ही चोट भी लगती है। पर पास करने की आशा कहिए या इच्छा, मैंने तो सभी छोड़ दी, जब अपना होश सम्भाला, केवल पिताजी नहीं छोड़ सकते थे। इसी से यदि मानसिक क्लेश के कारण किसी को घर-बार छोड़ने की आवश्यकता थी, तो उन्हीं को थी, पर वे तो आनन्द से बैठे वकालत करते हैं। मगर भैया उपेन्द्र, चाहे जो कहिए, अबकी उनकी भी आंखें खुली हैं।'

सब के सब हंस पड़े। वैसे इसमें हंसी की कोई बात न थी, लेकिन भूपति बाबू की भद्दी हंसी सतीश बाबू का मन नहीं दुखा सकी, इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उपेन्द्र ने पूछा—'तो इस बार तुमने पढ़ना-लिखना बिल्कुल त्याग ही दिया?'

सतीश ने कहा—'मैंने उसे पकड़ा कब था जो आज छोड़ दिया? सच कहता हूँ भैया, मैंने किसी दिन लिखने-पढ़ने के झमेले को मोल लेना नहीं चाहा, और अब तो उस बवाल से मेरा पिंड एकदम ही छूट गया। अब ऐसे स्थान पर जाकर रहूंगा। जहां स्कूल-पाठशाला का नाम-निशान तक न हो।'

उपेन्द्र ने कहा—'लेकिन कुछ तो करना चाहिए, आदमी बिल्कुल बेकार नहीं रह सकता और न बेकार रहना उचित ही है।'

सतीश ने कहा—'नहीं, बेकार नहीं रहूंगा। इलाहाबाद से एक नया विचार लेकर आया हूं। एक बार अच्छी तरह से प्रयत्न करूंगा, देखूंगा कहां तक सफलता मिलती है।'

वह कौन सा विचार लेकर आया है, यह सुनने के लिए सब उसके मुंह की ओर देखने लगे। यह देख, वह लज्जा से सिर नीचा कर बोला—'मेरे गांव में मलेरिया के ही समान हैजा भी भीषण रूप में फैला मिलता है। कभी-कभी तो पांच-सात गांवों तक में एक भी डॉक्टर नहीं मिलता। मैं वहां जाकर होमियोपैथिक डाक्टरी शुरू कर दूंगा। मेरी मां मृत्यु के पहले ही कई हजार रूपये दे गई हैं। वे रूपये मेरे पास ही हैं। उन्हीं से अपने घर पर एक डिसपेन्सरी खोल दूंगा। भैया हंसी की बात नहीं है। तुम देखते रहना, मैं अवश्य करूंगा। पिताजी को भी मैंने मना लिया है। उनसे मैंने कहा है कि महीने-दो-महीने बाद कलकत्ते जाकर होमियोपैथिक स्कूल में भर्ती हो जाऊंगा।'

उपेन्द्र ने पूछा—'महीने-दो-महीने बाद क्यों?'

सतीश ने कहा—'कुछ काम है। दक्खिन टोले के नव नाट्यसमाज में से कुछ आदमियों ने निकल कर एक पृथक् दल स्थापित किया है। हमारे विपिन बाबू उसके मुखिया हैं। तार पर तार भेजकर उन्होंने ही मुझे बुलाया है। मैंने उन्हें वचन दे दिया है कि उनकी कंसर्ट पार्टी का पूरा प्रबन्ध कर-कराके ही मैं दूसरे किसी काम में हाथ डाल सकूंगा।'

यह सुनकर सभी जोर से हंस पड़े। सतीश भी हंसने लगा। जब हंसी का फव्वारा कुछ धीमा पड़ा, तब सतीश ने कहा—'बंशी बजाने वाले की कमी थी, उसी के लिए दिवाकर के पास आया था, यदि वह थियेटर का रात का काम चला दे, तो फिर मुझे अधिक भटकना न पड़े।'

उपेन्द्र ने पूछा—'वह क्या कहता है?'

सतीश ने कहा—'कहेगा क्या? परीक्षा का रोना रोता है। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि लोगों की दो साल की पढ़ाई एक ही रात की लापरवाही में कैसे नष्ट हो सकती है? मैं तो कहूंगा कि वास्तव में जिनकी पढ़ाई एक रात में नष्ट हो जाती है, उनको पढ़ना-लिखना ही छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार पास होने में जो मान समझते हों, समझें, मैं तो कुछ नहीं समझता। भैया, तुम अप्रसन्न नहीं होगे। मैं तुम्हें जितना जानता हूं, उसका चौथाई भी ये लोग नहीं जानते। जिमनास्टिक के अखाड़े से लेकर फुटबाल और क्रिकेट के मैदान तक बहुत दिन तुम्हारा शिष्य रहा हूं, तुम्हारे साथ-साथ घूमकर बहुत दिन, बहुत प्रकार तुम्हारा समय नष्ट होते देखा है, बहुत सी परीक्षाएँ देते भी तुम्हें देखा और भली-भांति पास कर छात्रवृत्ति पाते भी देखा, लेकिन किसी दिन तुम्हें परीक्षा की दुहाई देते नहीं देखा।'

उपेन्द्र ने बातों के सिलसिले को यहीं समाप्त करने की इच्छा से कहा—'लेकिन सतीश, मैं तो बंशी बजाना नहीं जानता।'

सतीश ने कहा—'मैं भी कई बार सोचता हूं कि तुमने इस कला को नहीं सीखा, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। खैर, यह तो बताओ कि तुम्हारी इस दोपहर की सभा का उद्देश्य क्या है?'

जाड़े की धूप पीठ तो सह सकती थी, पर सबने सिर पर चादर लपेट रखी थी। दिन कितना चढ़ चुका है, इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं था। सतीश की बात सुन, समय की ओर देख, सबके सब चौंककर उठ के खड़े हो गये। चलने के पहले भूपति ने पूछा—'हां तो उपेन्द्र बाबू, क्या कहते हैं?'

उपेन्द्र ने कहा—'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन स्वामी जी का उद्देश्य यदि पहले से ज्ञात हो जाता, तो बड़ा अच्छा होता। बिल्कुल मूर्ख के समान कहीं जाते संकोच-सा होता है।'

भूपति ने कहा—'लेकिन उन्होंने तो कुछ भी नही बताया, बल्कि कहा कि जटिल और दुर्बोध विषय को जब तक भलीभांति समझाकर कहने का अवसर न मिले, तब तक उस विषय में कुछ न कहना ही अच्छा है। इसका परिणाम अच्छा न होकर अधिकांश अवसरों पर ठीक नहीं होता।'

चलते-चलते बातें हो रही थीं। सब लोग बाहर आकर सड़क के एक किनारे खड़े हो गये।

सतीश ने पूछा—'आखिर बात क्या है भैया?'

उपेन्द्र को रोक कर भूपति ने कहा—'सतीश बाबू, आपको भी चन्दे की लिस्ट में नाम लिखाना पड़ेगा। आपके प्रश्न का उत्तर इस समय हम लोग ठीक-ठीक नहीं दे सकेंगे। परसों सन्ध्या समय कालेज-हाल में आइयेगा, वहीं स्वामी जी स्वयं सब बातें बतलायेंगे।'

सतीश ने कहा—'तो भूपति बाबू, मैं समझने से बाज आया। परसों हम लोगों का पूरा रिहर्सल होने वाला है। मेरे रहे बिना काम नहीं चलेगा।'

भूपति ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'अंय, आप क्या कहते हैं! नाटक-थियेटर की एक साधारण-सी हानि के भय से आप ऐसे महान् कार्य में सहयोग नहीं देंगे? भाई, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा।'

सतीश—'लोग तो बिना सुने भी बहुत कुछ कहा करते हैं। औरों की बात जाने दीजिए, अपने को ही देखिये। बिना जाने-बूझे इस अनुष्ठान को आपलोग व्यर्थ में ही कितना महत्व दे रहे हैं? यदि मैं उतना महत्व न दे सकूं, तो क्या मैं इसके लिए दोषी करार दिया जा सकता हूँ? मैं तो जो कुछ जानता हूँ, जिस काम की भलाई-बुराई को समझता हूँ, उसकी उपेक्षा करके, उसको नष्ट करके, एक अनिश्चित—काल्पनिक महत्व के पीछे दौड़ना पसन्द नहीं करता।'

उपस्थित छात्रमण्डली में आयु और शिक्षा के विचार से भूपति बाबू ही सबसे बड़े थे। अतः वे ही बातें कर रहे थे। सतीश की बात पर हंसकर वे बोले—'सतीश बाबू, स्वामी जी जैसे महान व्यक्ति अच्छी ही बात कहेंगे। उनका उदेश्य अच्छा ही होगा इस पर विश्वास करना तो कुछ कठिन काम नहीं है।'

सतीश ने कहा—'माना कि किसी के लिए कठिन न हो। देखिए, मैट्रिक पास करना कोई कठिन नहीं है; फिर भी पास करना अलग रहा, तीन-चार वर्षों से मैं उसके पास तक भी फटक न सका। अच्छा यह तो बताइये, क्या आपने इस स्वामी जी को पहले कभी देखा है, अथवा इसके सम्बन्ध में कभी कुछ सुना है?'

सबने अंगीकार किया कि कोई कुछ नहीं जानता। सतीश ने कहा—'गेरूए वस्त्र के सिवा उसके पास और कोई भी सर्टिफिकेट नहीं है, फिर भी आपलोग उसके पीछे मदमत्त हो रहे हैं। मैं अपना काम बिगाड़ कर उनका भाषण सुनना नहीं चाहता, इसलिए आप मुझ पर व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं।'

भूपति ने कहा—'सतीश बाबू, क्यों नाहक पागल हो रहे हो। इन गेरूए कपड़े वालों ने संसार को बहुत कुछ दिया है। खैर, आप इसमें योग देना नहीं चाहते, इससे मैं अप्रसन्न नहीं हूँ, केवल मुझे दुःख है संसार की सारी चीजें सफाई और गवाही को साथ लेकर नही आतीं, इसीलिए यदि उन्हें व्यर्थ समझ कर छोड़ दिया जाये, तो हमें बहुत-सी चीजों से वन्चित रह जाना पड़ेगा। अच्छा आप ही कहिए जब संगीत में सा, रे, गा, मा साधते थे तब आपको उसमें कितना रस मिलता था? उसकी कितनी भलाई-बुराई समझते थे?'

सतीश—'यही तो मैं कहता हू कि यदि संगीत का कोई उन्नत आदर्श मेरे सामने न

होता, यदि मधुर रसास्वादन की आशा मुझे न होती तो इतना कष्ट उठाकर सा, रे, गा, मा कभी न साधता। वकालत में अगर आपको रूपये की इतनी तेज गन्ध न मिली होती तो एक बार फेल होकर ही आप उसके प्रयत्न से बाज आते। बार-बार यों जी तोड़ परिश्रम कर कानून की पुस्तक कभी न रटते सम्भव था कि उपेन्द्र भैया भी इतने दिनों तक किसी स्कूल की मास्टरी पाकर सन्तुष्ट हो गये होते।'

उपेन्द्र हंसने लगे, पर भूपति का मुंह लाल हो गया। ईंट का उत्तर मशीनगन से दिया गया था। यह बात उपस्थित सभी लोग समझ गये।

क्रोध दबाकर भूपति ने कहा—'आपके साथ तर्क करना व्यर्थ है। आप शायद यह भी नहीं जानते है कि किसी वस्तु की भलाई-बुराई कितनी प्रकार से सिद्ध हो सकती है।'

बातों ही बातों में सब लोग धीरे-धीरे सड़क किनारे बैठ गये थे। सतीश खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला—'भूपति बाबू, क्षमा कीजिए। छः प्रकार के 'प्रमाणों' और छत्तीस प्रकार के 'प्रत्यक्षों' की चर्चा इस तीव्र धूप मे नही सही जायेगी। इससे अच्छा तो यह हो कि आप शाम के बाद बाबूजी की बैठक मे पधारे। वहां आधी रात तक वाद-विवाद कर सकते हैं। वहां नित्य ही प्रोफेसर नवीन बाबू, प्रधान गोविन्द बाबू और पुरोहितजी तक इसी प्रकार के विषयो पर आधी रात तक तर्क-वितर्क किया करते हैं। उसक बगल वाले कमरे में मैं रहता हूं। तर्क-वितर्क के दांव-पेंच और दार्शनिक चालो की बातें सुनते-सुनते मेरे कान पक से गये है। कानों के साथ-साथ मेरे ऊपर भी कुछ-कुछ रग चढ़ने लगा है। पर असमय मे पककर और पृथ्वी पर टपक कर मै सियार और कुत्तों के पेट में नही जाना चाहता, इसलिए इस विषय को छोड़कर यदि और कुछ कहना हो तो कहिये, नहीं तो आज्ञा दीजिये, चलूं।'

सतीश के हाथ जोड़कर बिदा मांगने का ढंग देखकर सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े। भूपति बाबू जले हुए तो थे ही, सबकी इस हंसी ने मानो ऊपर नमक डाल दिया। क्रोध के मारे तर्क की डोर हाथ से जाती रही और जो मुंह मे आया कह गये—'तो देखता हूं आप ईश्वर को भी नही मानते।' बात बिल्कुल व्यर्थ थी, एकदम बच्चों की सी हुई, जो भूपति बाबू को भी खटक बिना न रही।

सतीश ने भूपति के तमतमाते हुए चेहरे पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली और फिर उपेन्द्र के मुख की ओर देखकर खिलखिला कर हंस पड़ा। बोला—'भैया, इस बार भूपति बाबू कुशलतापूर्वक लक्ष्य पर पहुंच गये हैं। मेरे जैसे दस-बारह कुत्ते भी अब इनके पास नहीं फटक सकते।' भूपति की ओर देखकर बोला—'शाबाश, भूपति बाबू शाबाश! 'चोर-चोर, के खेल मे दौड़ा न जाये तो 'धूही' छू लेना ही अच्छा है।'

इस तीखे व्यंग-वाणो की चोट से जलकर भूपति उठ खड़े हुए। उपेन्द्र ने उनका हाथ पकड़ लिया, कहा—'भूपति, तुम जरा ठहरो, मैं अभी इसे ठीक करता हूं। क्यों रे सतीश !धूही छूना, लक्ष्य पर पहुंचना, इन सब बातो का क्या अर्थ है। वास्तव में तेरी आदत जैसी संदिग्ध है, उससे यह सन्देह होना बिल्कुल स्वाभाविक है कि तू ईश्वर तक को भी नही मानता।'

सतीश ने आश्चर्य का नाट्य दिखाते हुए कहा—'हाय रे मेरा भाग्य ! मैं ईश्वर को नही मानता ? अवश्य मानता हूं । आधी रात को जब नाटक-थियेटर के अखाड़े से

अवकाश पाकर घर लौटता हूँ तब मुझे श्मशान के पास से होकर आना पड़ता है। कहीं कोई आदमी नहीं रहता। उस शून्य श्मशान को पार करते समय मारे भय के मेरी छाती का खून जम-सा जाता है। तुम भले आदमियों को इसका क्या पता? हंसते हो भैया ! भूत-प्रेत मानता हूँ और ईश्वर नहीं? भला यह सम्भव है?'

उसकी बातों से क्रुद्ध भूपति हंस पड़े। बोले—'सतीश बाबू, क्या भूत से डरने का अर्थ ईश्वर को स्वीकार करना है? क्या आपकी दृष्टि में दोनों बातें एक ही हैं?'

सतीश ने कहा—'बिल्कुल एक। पास-पास रख दीजिए, तो पहचान न पड़े। केवल मेरे लिए नहीं, आपके लिए भी, उपेन्द्र भैया के लिए भी और भी शास्त्रकार हैं उनके लिये भी यही बात हैं। हां, जो दोनों में से किसी एक को भी न माने, तो उसका कहना ही क्या है। लेकिन जहां एक को मान लिया तो सब फिर पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है। मानने के बाद जान नहीं बचती। दुःख में, संकट में, विपदा में, आपदे में कई ओर से सोचकर देखा है, भाषण भी बहुत सुना है, पर जो अन्धकार पहले था, वही आज भी है। छोटा-सा निराकार ब्रह्म मानो या हाथ पैरों वाले तैंतीस करोड़ देवता मानो, चाहे कुछ भी करो, एक के मानते ही दूसरे भी आ उपस्थित होते हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानो जब एक को खींचो तो सबकी सब कड़ियां खिंच आयेंगी। स्वर्ग-नर्क आ जायेगा, अमर आत्मा भी आ जायेगी, फिर तुम श्मशान के उपदेवताओं को धोखा कैसे दोगे? कालीघाट के कंगालों में से एक को चुपके से कुछ देकर क्या तुम अपना पिण्ड औरों से छुड़ा सकते हो? पल भर में अनगिनत भिखारी आकर घेर लेंगे। ऐसी हालत में आप ही बताइये, भूत से डरूं और ईश्वर को न मानूं क्या यह कभी सम्भव है, भूपति बाबू?'

यों कहते हुए उसने ऐसा मुंह बनाया कि उसे देखकर सबके सब ठठाकर हंस पड़े। कुछ दूर पर खड़े दो छोटे-छोटे बच्चे भी जोर से हंस पड़े। रविवार की उदास-फीकी दोपहरी इन सबकी हंसी से गूंज उठी।

उपेन्द्र स्त्री सुरबाला द्वारा भेजा हुआ नौकर दूर खड़ा होकर इतनी देर से अपने आप ही बड़बड़ा रहा था, मुंह फेरकर मुसकाने लगा।

कलह के जो बादल घिर आये थे, इस हास्य की आंधी में वे ऐसे उड़े कि उनका पता ही न चला।

सबके सब बातों में इतने रत हो रहे थे कि किसी को पता तक नहीं चला कि दोपहर कब बीत गई। उधर घर में नौकर-दाइयों ने मारे भूख-प्यास के बहुत देर तक कुड़बुड़ाते रहने के बाद अब चिल्ल-पों मचानी शुरू कर दी। रसोइया महाराज तो अब ऐसी नौकरी को छोड़ आज ही कहीं जाने की घोषणा कर रहे हैं।

2

लगभग तीन महीने बाद की बात है। कलकत्ते के एक मकान में एक दिन सवेरे के समय नींद टूटने पर सतीश ने बिछौने पर इधर-उधर करवट बदलते हुए अचानक यह निश्चय कर डाला, कि आज स्कूल नहीं जाऊंगा। वह होमियोपैथिक स्कूल में पढ़ता था। आज अवकाश मनाने के इस संकल्प ने उसके मन में अमृत की वर्षा की और क्षण भर

में उसके शिथिल शरीर को बलशाली बना दिया। वह प्रसन्नता से उठ बैठा और चिलम भर लाने के लिये शोर करने लगा।

सावित्री घर में आई। वह थोड़ी दूर पर फर्श पर आकर बैठ गई और हंसकर बोली—'नींद टूट गई सरकार की?'

सावित्री इस घर की मजदूरनी है और घर के सारे प्रबन्ध की स्वामिनी भी। उसमें चोरी की आदत न थी, इसलिए खर्च के रूपये-पैसे उसी के हाथ में रहते थे। इकहरा बदन था, रंग गोरा और अंग-अंग सांचे में ढाले हुए से थे। आयु लगभग बाईस-तेईस वर्ष की होगी। लेकिन देखने से इससे भी कम आयु की मालूम होती थी। सावित्री स्वच्छ वस्त्र पहनती, होंठ दोनों ओर पान और तम्बाकू के रस से दिन-रात लाल बनाये रहती थी। वह हंसकर बातचीत करना तो जानती थी, उस हंसी का मूल्य भी ठीक उसी प्रकार समझती थी। गृह-सुख से वंचित डेरे के सभी लोगों पर उसके मन में एक आन्तरिक स्नेह-ममता थी। फिर भी, कोई उसकी प्रशंसा करता तो वह कहती, 'काम न करने के समय में आपलोग मुझे रक्खेंगे क्यों बाबू? इसके अलावा घर जाकर स्त्रियों की निन्दा करके कहेंगे, डेरे पर ऐसी दाई है कि भरपेट दोनों समय खाने को भी नहीं देती। उस लांछना की अपेक्षा थोड़ा-सा परिश्रम अच्छा है।' यह कहकर वह हंसती हुई अपने काम पर चली जाती थी। डेरे मे एक सतीश ही ऐसा था, जो उसका नाम लेकर पुकारता था। कभी-कभी उसके साथ हंसी-मजाक करता और मन में आता तो कभी पुरस्कार भी दे देता था। उसका भी सतीश पर स्नेह कुछ अधिक मात्रा मे था। सारा दिन सभी काम-काजों में व्यस्त रहने पर भी इसीलिए सदा एक आंख और एक कान इस सुगठित सुन्दर युवक की ओर लगाये रहती थी। डेरे पर सभी लोग इस बात को जानते थे। ओर कोई-कोई कौतुक के साथ इसका संकेत करने से भी बाज नही आते थे। सावित्री उत्तर देकर, मुस्कराती हुई काम पर चली जाती थी।

सतीश ने कहा—'हां, नीद खुल गयी।' इतना कहकर तकिये के नीचे उसने एक रूपया निकाल कर उसकी ओर फेंक दिया।

सावित्री ने रूपया उठाकर कहा, 'सुबह ही सुबह किस वस्तु की आवश्यकता हो गई?'

सतीश ने कहा, 'सन्देश ! लेकिन मेरे लिए नहीं। अभी तुम रख लो, रात को अपने बाबू के लिए माल ले जाना।'

सावित्री ने अप्रसन्न होकर रूपये को बिछौने पर फेंककर कहा, 'यह लीजिए अपने रूपये को। मेरा बाबू सन्देश नहीं खाता।'

रूपये को फिर फेंककर अनुरोध के स्वर से सतीश ने कहा—'मेरे सिर की सौगन्ध सावित्री, इस रूपये को तुम किसी प्रकार भी वापस न कर सकोगी। मैंने सचमुच ही तुम्हारे बाबू को सन्देश खाने के लिए दिया है।'

सावित्री ने मुंह उदास बनाकर कहा—'जब तब आप स्त्रियों के समान सिर की सौगन्ध खिलाते रहते हैं, यह बड़ा अन्याय है। बाबू मेरे पास नही हैं। मेरे बाबू आप लोग हैं।';

सतीश ने हंसकर कहा—'अच्छा, दे दो रूपया। लेकिन बताओ, मेरे सिवा कोई और बाबू हो तो मैं उसका सिर खाऊं।'

सावित्री हंसकर बोली—'मेरा बाबू क्या आपकी सौत है जो सिर खा रहे हैं।'

सतीश ने कहा—'मैं उनका सिर खा रहा हूं या वे ही मेरा सिर खा रहे हैं? बल्कि मैं तो उनको सन्देश खिला रहा हूं।'

सावित्री ने अपनी हंसी रोक कर कहा—'नौकर-नौकरानियों के साथ इस प्रकार बातचीत करने से छोटे आदमियों को बढ़ावा मिल जाता है, फिर वे मुंह लगा जाते हैं, जरा समझ-बूझकर बातें करनी होती हैं बाबू, नहीं तो लोग निन्दा करते हैं।' यह कहकर रूपया उठा लिया और फिर कमरे से बाहर चली गई। थोड़ी ही देर बाद फिर लौट कर बोली—'इस समय क्या बनेगा?'

भोजन सम्बन्धी सभी बातों में सतीश एक गुणवान आदमी है इसका परिचय सावित्री पहले ही पा चुकी थी। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल वह एक बार आ जाती थी और सतीश की आज्ञा लेकर चली जाती थी और स्वयं ही खड़ी रहकर महाराज से सभी कामों को खूब अच्छी तरह पूरा करा लेती। इसी समय नौकर तम्बाकू दे गया था, सतीश फिर एक बार करवट लेकर बोला—'जो मन हो वही बनवाओ।'

सावित्री बोली—'देखती हूं क्रोध भी मौजूद है।'

दीवाल की ओर मुंह फेरकर तम्बाकू खींचते हुए सतीश बोला—'पुरूष जो ठहरा, क्रोध क्यों नहीं रहेगा? आज मैं भोजन भी नहीं करूंगा।'

सावित्री बोली—'शायद और कहीं ठिकाना लग गया है। किन्तु कुछ भी सतीश बाबू, स्कूल आपको जाना ही पड़ेगा, कहे देती हूं।'

इतने थोड़े समय के बीच ही नियमित रूप से स्कूल जाने का धन्धा फिर सतीश को भार-सा बन कर दबाता जा रहा था और तरह-तरह के बहाने, तरह-तरह के कारण निकालकर उसने अनुपस्थित होना शुरू कर दिया था। आज उसे बहानेबाजी की पुनरावृत्ति का सूत्रपात होते ही वह समझ गई।

सतीश हड़बड़ाकर उठ बैठा और बनावटी क्रोध के स्वर में बोला—'तुम कार्य के आरम्भ में ही टोको मत।'

सावित्री ने कहा—'यह तो आप कहेंगे ही। लेकिन एन्ट्रेन्स पास करने में चौबीस साल बीत गए, यह डाक्टरी पास करने में चौसठ साल बीत जायेंगे। मैंने एन्ट्रेन्स पास नहीं किया।'

सावित्री हंसने लगी—'इसको भी पास नहीं किया?'

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा—'नहीं। ईर्ष्यालु मास्टरों ने मुझे पास करने के लिए परीक्षा में बैठने नहीं दिया।'

सावित्री ने हंस कर कहा—'तो क्या इसकी भी वही दशा होगी?'

'किसकी?'

'इस डाक्टरी की?'

सतीश ने कहा—'अच्छा सावित्री, गधों के समान जितने लोग हैं वे परीक्षा पास करके क्या करते हैं, क्या तुम बता सकती हो?'

सावित्री हंसी के वेग को दबा कर बोली—'गधों के समान, लेकिन गधे हैं नहीं। जो लोग वास्तव में गधे हैं वे पास ही नहीं कर सकते।'

सतीश ने दरवाजे से झांक कर एक बार देख लिया। फिर स्थिर भाव से बैठ गया और गम्भीर होकर बोला—'यदि कोई सुन लेगा तो सचमुच ही निन्दा करेगा। मेरे मुंह पर ही मुझे गधा कह रही हो।'

हाय रे! कर्मों के दोष से आज सावित्री घर की सेविका है। इसी कारण वे इस आघात को सहकर बोली—'ठीक ही तो है!' यह कह कर वह चली गई।

सतीश फिर आलसी के समान बिछौने पर पड़ गया। उसके मन में कर्मविहीन समूचे दिन का जो चित्र उज्ज्वल होकर उठ रहा था, सावित्री की बातों की चोट से उसका अधिकांश ही मलीन हो गया और मन ही मन जिस व्यथा को लेकर सावित्री स्वयं चली गई, वह भी उसकी छुट्टी के आनन्द को बढ़ा कर नहीं गया। और यद्यपि वह मन-ही-मन समझ गया आज फिर नागा करने से लाभ नहीं होगा, तो भी कुछ न करने का लोभ भी वह छोड़ न सकने का आलस्य भरे चेहरे से बिछौने पर ही लेटा रहा। लेकिन ठीक समय पर स्नान के लिए तकाजा आ गया। लेटे-लेटे बोला—'जल्दी क्या है? आज तो मैं बाहर जाऊंगा नहीं।'

सावित्री ने कमरे में घुस कर कहा—'यह नही हो सकता। आपको स्कूल जाना ही पड़ेगा—जाइए स्नान करके भोजन कीजिए।'

सतीश ने कहा—'तुमको क्या मेरा संरक्षक नियुक्त किया गया है जो हठ कर रही हो। आज मैं पदमेकं न गच्छामि।'

सावित्री तनिक हंसकर बोली—'नही जाना है तो स्नान तो कर लीजिए। आपके आलस्य से नौकर-नौकरानियों को दुःख होता है, इसे क्या आप नहीं देखते?'

सतीश ने कहा—'ये कैसे नौकर-नौकरानियां हैं जो नौ बजते-बजते हर दुःख पाने लगते हैं। इस घर को मुझे बदल ही देना पड़ेगा।'

सावित्री ने हंसकर कहा—'तब तो मुझे भी बदल देना पड़ेगा।' लेकिन तुरन्त ही वह बात को दबा कर बोल उठी—'तब तक आपको इसी घर का नियम मान कर चलना पड़ेगा—स्कूल में भी जाना पड़ेगा। उठिए, दिन चढ़ता जा रहा है।' इतना कहकर सतीश को धोती और अंगोछा स्नानघर मे रख आने के लिए चल पडी।

सतीश नियमित रीति से संध्या-वन्दन किया करता था। आज वह स्नान करके आया और पूजा के आसन पर बैठ कर देर करने लगा। सावित्री दो-तीन बार आकर देख गई और दरवाजे के बाहर से पुकारती हुई बोली—'अब देर क्यों, परोसा हुआ भात ठण्डा होकर पानी-पानी हो रहा है। स्कूल जाना नही पड़ेगा। दो कौर खाकर हमलोगों को तो जरा अवकाश दीजिए।'

सतीश और भी पांच मिनट चुपचाप बैठा रहा, फिर खड़ा होकर बोला—'संध्या-पूजा के समय गड़बड़ी मचाने से जानती हो क्या होता है?'

सावित्री ने कहा—'गंगाजली और पंचपात्र सामने रखकर ढोग रचाने से क्या होता है जानते हो?'

सतीश ने आंखें फैला कर कहा—'मैं ढोग रच रहा था? कदापि नहीं।'

सावित्री कुछ कहने जा रही थी, फिर रूक गई, उसके बाद बोली—'इसे तो आप ही जानते हैं। लेकिन आपको भी तो पहले किसी दिन इतनी देर नहीं होती थी। जाइए, भात

परोस दिया गया हैं।' यह कहकर वह चल दी।

आज जाड़े के सुन्दर दोपहर में डेरा निर्जन और निस्तब्ध था। इस डेरे में रहने वाले सभी नौकरी करते हैं। वे लोग दफ्तर चले गए हैं। रसोइया घूमने गया है, बिहारी बाजार से सौदा लाने गया है। सावित्री की भी कोई आहट-आवाज नहीं सुनाई पड़ती। सतीश ने अपने कमरे में पहले दिवा-निद्रा का व्यर्थ आवाहन किया। फिर उठकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा। सिरहाने की खिड़की बन्द थी। उसको खोल कर सामने की खुली छत की ओर देखते ही उसी क्षण उसने उसको बन्द कर लिया। छत के एक छोर पर बैठ कर सावित्री अपने बाल सुखा रही थी और झुक कर कोई किताब देख रही थी। खिड़की बन्द करने की आवाज से उसने चौक कर माथे पर आंचल डाल कर खड़ी होकर देखा—खिड़की बन्द हो गई थी। थोड़ी देर बाद उसने कमरे में प्रवेश करके कहा—'बाबू, आप मुझे बुला रहे थे?'

सतीश ने कहा—'नहीं।'

'आपके लिए पान और जल ले आऊं।'

सतीश ने सिर हिलाकर कहा—'ले आओ।'

सावित्री ने पान और जल लाकर बिछौने पर रख दिया और फर्श पर बैठते हुए कहा—'जाऊं, आपके लिए तम्बाकू भर लाऊं!'

सतीश ने पूछा—'बिहारी कहां है?'

'बाजार गया है।' कहकर सावित्री चली गई और थोड़ी देर में तम्बाकू भर कर ले आई।' आज व्यर्थ में आपने नागा कर दिया।'

सतीश ने कहा—'ठीक है। मेरा स्वभाव कुछ स्वतन्त्र है, इसलिए बीच-बीच में ऐसा न करने से बीमारी पकड़ लेती है। इसके अलावा मैं विधिवत् डाक्टर बनना भी नही चाहता। इधर-उधर की कुछ बातें सीखकर अपने गांव के मकान पर एक बिन पैसे वाला मुफ्त दवाखाना खोल दूंगा। चिकित्सा के अभाव से गांव के गरीब-दुःखी हैजे की बीमारी से उजड़ते जाते हैं, उन लोगों की चिकित्सा करना ही मेरा उदेश्य है।'

सावित्री ने कहा—'बिना पैसे की चिकित्सा में शायद अच्छी तरह सीखने की आवश्यकता नहीं है? अच्छे डाक्टर केवल बड़े आदमियों के लिए होते हैं और गरीबों के लिए गंवार। लेकिन ऐसा भी होगा कैसे? आपके चले जाने से विपिन बाबू भारी कठिनाई में पड़ जायेंगे।'

विपिन बाबू की चर्चा होने से सतीश लज्जित होकर बोला—'मेरी तरह के मित्र उनको बहुत मिल जायेंगे। इसके अलावा अब मैं वहां जाता भी नहीं।'

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा—'जाते नही हैं! तो फिर उनको गाना-बजाना कौन सिखाता है?'

सतीश ने कहा—'गाना-बजाना क्या मैं सिखाता हूँ?'

सावित्री बोली—'क्या मालूम बाबू, लोग यही कहते हैं।'

'कोई नहीं कहता, वह केवल तुम्हारे मन की गढ़ी बात है।'

'आपको विपिन बाबू का मुसाहिब कहते है यह भी क्या मेरी मन की गढ़ी बात है?'

यह बात सुनकर सतीश आपे से बाहर हो उठा। इसका कारण था विपिन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध। दोपहर के लोगों के चर्चा का विषय होने पर उस चर्चा का फल साधारणतः क्या हो उठता है, इसकी जानकारी उसको थी। कलकत्तावासी विपिन की सांसारिक अवस्था और उसके आमोद-प्रमोद की अत्यधिक सजावट-बनावट के बीच परदेशी सतीश का स्थान नीचे ही उतर आएगा, सतीश के मन का यह उत्कण्ठित सन्देह सावित्री के तीक्ष्ण प्रवाह से बिल्कुल ही उग्रमूर्ति धारणा करके बाहर निकल आया। वह दोनों को सतेज बनाकर गरज उठा—'क्या मुसाहिब हूँ? कौन कहता है, बताओ तो!'

'किसका नाम बताऊं, जाऊं राखाल बाबू का बिछौना धूप में डाल आऊं।'

'बिछौना छोड़ो, नाम बताओ!'

'कुमुदिनी।'—सावित्री ने हंसकर कहा!'

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा—'तुम किस प्रकार जान गई?'

सावित्री बोली—'उन्होंने मुझे काम करने के लिए बुला भेजा था।'

'तुमको ? साहस तो कम नहीं। तुमने क्या कहा?'

'अभी तक मैंने कुछ कहा नही है—सोच रही हूं, वेतन अधिक है, काम कम है, इसलिए लोभ हो रहा है।'

सतीश की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं। उसने कहा—'यह विपिन की करतूत? तुम्हारा नाम वह अक्सर ही लेता रहता है।'

सावित्री ने हंसी को रोक कर कहा—'लेते रहते हैं? तब तो मालूम पड़ता है मेरे ऊपर मन आ गया है?'

सतीश क्रूर दृष्टि डालकर बोला—'सौ रूपये फाइन देने के बाद से लोगों को मैं दबाता नहीं—फिर देख रहा हूँ, कुछ देना पड़ेगा। अच्छा, तुम जाओ!'

सावित्री चल दी। राखाल के बिछौने को धूप में डालकर झटपट वापस आकर खिड़की के सुराख से झांककर उसने देखा—सतीश कुरता पहन चुका है और बक्स में से एक बण्डल नोट जेब में रख रहा है। सावित्री दोनो चोखटों पर हाथ रखकर रास्ता रोककर खड़ी हो गई, बोली—'कहां जाइयेगा?'

'काम है, हट जाओ!'

'क्या काम है सुनूं तो?'

सतीश ने अप्रसन्न होकर कहा—'हटो!'

सावित्री हटी नहीं। हंसकर बोली—'भगवान ने आपको किसी गुण से वंचित नहीं रखा है। इसके पहले भी आप जुर्माना दे चुके हैं।'

सतीश ने आंखें तरेर लीं, कुछ बोला नही।

सावित्री बोली—'यह तो आपका भारी अन्याय है। कहीं मैं काम करूं या न करूं, यह मेरी इच्छा पर है—आप क्यों झगड़ा करना चाहते हैं?'

सतीश बोला—'मैं झगड़ा करूं या न करूं, यह मेरी इच्छा की बात है, तुम क्यों मार्ग रोक रही हो?'

सावित्री ने हाथ जोड़कर कहा—'मेरे आने पर जाइएगा।'

सतीश ज्यों ही लौटकर खटिया पर बैठा, त्यों ही सावित्री ने बाहर आकर दरवाजे

की जंजीर चढ़ा दी। धीरे-धीरे कहती गई—'जब तक आप शांत न होइएगा, दरवाजा न खोलूंगी।'

यह कहकर वह चली गई। बाहर न जा सकने के कारण सतीश अपने कुरते को जमीन पर फेंक कर लेट गया।

विपिन के साथ उसका परिचय इलाहाबाद में हुआ था। कलकत्ते जाकर यथेष्ट घनिष्ठ हो जाने पर भी इस डेरे में उसका जब-तब आना-जाना बढ़ता चला जा रहा था। आज सावित्री की बातों से वह कारण बिल्कुल ही सुस्पष्ट हो उठा। सतीश का मित्र और बड़ा आदमी होने से इस डेरे में उसका बहुत सम्मान था। सतीश की अनुपस्थिति में भी उसके प्रति आदर था जिससे त्रुटि न होने पावे, इसका भार सतीश ने सावित्री को सौंप दिया था। इस आदम-सत्कार को विपिन बाबू पूरी मात्रा में वसूल करते जा रहे थे, यह समाचार डेरे पर लौट आने पर सतीश जब-तब पा रहा था। अपने मन की इस सरल उदारता की तुलना में विपिन की उस भद्दी क्षुधा ने गम्भीर कृतघ्नता की भांति आज उसको बांध दिया और सभी निमंत्रण-आंमत्रण, सौहार्द-घनिष्ठता एक ही पल में उसके लिए विष के समान बन गई। बाहरी तौर से वह चुपचाप बना रहा, लेकिन मर्मान्तिक क्रोध पिंजड़े के बन्द पशु के समान उसके हृदय में इस कोने से उस कोने तक घूमने लगा।

एक घण्टे के बाद वापस आने पर सावित्री ने खिड़की के बाहर से धीरे-धीरे पूछा, 'क्रोध शांत हो गया बाबू?'

सतीश चुप रहा।

दरवाजा खोलकर सावित्री कमरे में आकर बोली, 'अच्छा, यह कैसा अत्याचार है, बताइए न?'

सतीश ने किसी ओर भी न देखकर पूछा, 'अत्याचार?'

सावित्री ने कहा, 'सभी अपनी भलाई खोजते हैं, मैं भी यदि कहीं कोई अच्छा काम पाऊं तो उसमें अप्रसन्न क्यों होते हैं?'

सतीश ने उदास भाव से कहा, 'अप्रसन्न क्यों होऊंगा? तुम्हारी इच्छा होगी तो अवश्य जाओगी।'

'फिर मेरे नये मालिक को मारने-पीटने की तैयारी आप क्यों कर रहे हैं?'

'यदि तुम्हारी वस्तु को कोई धोखा देकर ले जाय, तो तुम क्या करती?'

'लेकिन मैं क्या आपकी वस्तु हूं?' कहकर सावित्री हंस पड़ी।

सतीश ने लजाकर कहा—'धत्! यह बात नहीं हैं; लेकिन...।'

सावित्री ने कहा—'लेकिन की अब आवश्यकता नहीं है, मैं जाऊंगी ही नहीं।'

सतीश का कुरता जमीन पर पड़ा था, सावित्री ने उसको उठा लिया और जेब से नोट का बंडल निकाल लिया। बक्स में चाभी लगी हुई थी, नोटों को अन्दर रखकर ताला बन्द करके चाभी अपने रिंग में पहनती हुई बोली—'मेरे ही पास रहेगी। रूपये की आवश्यकता पड़ने पर मांग लेना।'

सतीश ने कहा—'यदि तुम चोरी करो तो?'

सावित्री हंस पड़ी, आंचल से बंधे हुए चाभियों के गुच्छे को पीठ पर फेंक कर बोली—'मैं चोरी करूंगी तो आपको कोई चोट न पहुंचेगी।'

सतीश सावित्री के चेहरे की ओर थोड़ी देर तक ताकता रहा। इस क्षणकाल की दृष्टि से उसने क्या देख लिया, वही जानता है। चौंक उठने पर वह बोल उठा, 'सावित्री, तुम्हारा घर कहां है?'

'बंगल में।'

'इससे अधिक और कुछ न बताओगी?'

'नहीं।'

'घर कहां है, भले ही न बताओ, जाति क्या है, यह तो बताओ?'

सावित्री ने तनिक हंसकर कहा, 'यही जान लेने से क्या होगा? मेरे हाथ का पकाया भात तो आप खायेंगे नहीं।'

थोड़ी देर तक सोचकर सतीश बोला, 'सम्भव नहीं है। लेकिन जोर लगाकर बिल्कुल 'नहीं' भी मैं नही कह सकता।'

अपनी चमकीली आंखों को सतीश के चेहरे पर निबद्ध करके क्षण-काल के बाद ही वह हंस पड़ी। बालिका के समान सिर हिलाकर अपने कंठस्वर में अनिवर्चनीय सोहाग डालकर बोली, 'नहीं' कह सकते, क्यों, बताइये न?'

सतीश के सिर पर मानों भूत सवार हो गया। उसकी छाती का रक्त उथल-पुथल करने लगा। वह बोल उठा, 'क्यों, मैं जानता नहीं हूं सावित्री लेकिन तुम पकाकर दोगी तो मैं खाऊंगा यह कह देना कठिन है।'

'कठिन है ? अच्छा, यह एक दिन देख लिया जाएगा। ओह! छोड़ो, राखाल बाबू का तकिया धूप में डालना भूल गई।' यह कहकर चल पड़ी।

'एक बात सुनती जाओ।' कहकर सतीश एकाएक सामने की ओर झुक पड़ा और हाथ बढ़ाकर उसके आंचल का छोर उसने पकड़ लिया।

अपनी आंखो से बिजली की वर्षा करके बोला, 'छिः! आ रहीं हूं...'और झटके से आँचल छुड़ा लेने के बाद ओझल हो गई।

अचानक मानो कोई एक काण्ड हो गया। उसका यह अचानक त्रास-युक्त पलायन, दबे हुए कंठ की 'आ रहीं हूं' की आवाज और इस आंख की बिजली ने वज्राग्नि के समान सतीश की समस्त दुर्बद्धि को एक ही पल में जलाकर राख बना डाला। कुत्सित लज्जा के धिक्कार से उसका सारा शरीर शूल से बिंधे हुए सांप की भांति मरोड़-मरोड़कर उठने लगा। उसके मन में यह ध्यान आया कि इस जन्म में वह फिर सावित्री को अपना मुंह न दिखा सकेगा। किसी कारण से वह फिर न आ जाय इस भय से वह उसी क्षण एक रैपर खींच कर तूफान के वेग से बाहर निकल गया। तीन-चार सीढ़ियां बाकी ही थी कि उसी समय सतीश ने सावित्री के कंठ की आवाज फिर सुन ली। वह रसोईघर से दौड़कर चली आई थी और पुकारकर बोल रही थी, 'एक साथ ही खाना खाकर घूमने जाइये बाबू, नहीं तो वापस आने में देर होने से सब कुछ नष्ट हो जायगा।'

मानो सुनाई ही नहीं पड़ा, इस रूख से सतीश बाहर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जिस समय सावित्री रसोई के बारे में पूछने के लिए आई, सतीश ने धीरे से कहा, 'मन में कुछ सोच मत करना।'

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, 'क्या सोच मैं न करूंगी?'

सतीश सिर झुकाकर चुप ही रहा।

मीठी हंसी हंसकर सावित्री ने कहा, 'अच्छा जो कुछ भी हो, मेरे पास समय नहीं हैं—क्या रसोई बनेगी, बताइये न?'

'मैं नहीं जानता—तुम्हारी जो इच्छा हो।

'अच्छा!' कहकर सावित्री चली गई, उसने फिर नहीं पूछा।

दो घंटे के बाद लौटकर बोली—'कैसा काण्ड मचा रखा है, बताइये तो! आज भी 'पादमेक न गच्छामि' ही रहेगा?'

सतीश फिर भी चुप रहा।

सावित्री ने कहा—'नौ बज चुके हैं।'

समय बीत जाने की सूचना से सतीश रत्ती भर भी घबराहट न दिखाकर बोला—'बज जाये, मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।'

आलस्य में व्यर्थ समय नष्ट करना सावित्री बिल्कुल ही देख नहीं सकती थी। इसी करण वह कुछ दिनों से भीतर ही कुपित और असहिष्णु होती जा रही थी। जरा रूखे स्वर कंठ से उसने पूछा—'क्या अच्छा नहीं लग रहा है? पढ़ने जाना?'

सतीश स्वयं भी मन-ही-मन चिढ़ता जा रहा था। उसके चेहरे की ओर देखकर सावित्री यह समझ गई और एक क्षण चुप रहकर अपने कंठ के स्वर को कोमल बनाकर बोली—'लिखना-पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा है। अब शायद किसी औरत का आंचल पकड़कर खींचातानी करना अच्छा लग रहा है। स्कूली जाइये! व्यर्थ उपद्रव मत कीजिये।'

उसके अपमान में यद्यपि हार्दिक स्नेह और कल्याण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था किन्तु बातों के तरीके ने सतीश के समूचे अंग में मानो कांटेदार लता को लपेट दिया। देखते-देखते उसकी आंखें और चेहरा क्रोध से लाल हो उठा वह बोला, 'जो बात मुंह से निकल पड़ती है तुम वही कह डालती हो। आश्रय पा लेने पर केवल कुत्ते ही सिर पर नहीं चढ़ जाते, मनुष्य को भी यह बात याद दिलानी पड़ती है।'

'यह तो है गाली-गलौज!'सावित्री पल भर चुप रही, फिर कंठ स्वर को और धीमा करके बोली, 'पड़ती अवश्य! नहीं तो आपको ही याद दिलाने की क्यों आवश्यकता पड़ती कि यह है भले आदमियों का मकान, वृन्दावन नहीं है।'

इतना कहकर वह वहां से चली गई। आश्चर्य से सतीश स्तम्भित हो रहा। सावित्री उसको इस प्रकार बींध सकती है, इस बात को तो वह अपने मन में स्थान भी नहीं दे सकता था। कुछ देर एक ही दशा में बैठा रहकर वह हठात् उठ खड़ा हुआ और किसी प्रकार स्नान-भोजन करके पढ़ने के बहाने वह बाहर निकल गया।

उस दिन उसका अपमान से आहत मन उसकी प्रवृत्तियों पर शासन करने लगा और वह जितना ही अपने अचिन्तनीय अद्‌भुत व्यवहार का कारण खोज कर न पा सका, उतना ही मन में एक ही बात बार-बार चक्कर काटने लगी, किसलिए उसने आंचल पकड़ लिया था, कौन-सी बात उसको कहने की आवश्यकता पड़ी थी और सावित्री इस तरह भागकर न चली जाती तो वह क्या कहता? क्या करता? इसी प्रकार सारा दिन वह अपने ही हथियार से स्वयं ही घायल होकर संध्या समय गंगाजी के किनारे जाकर निर्जीव की भांति एक पत्थर पर बैठ गया।

कल जिस समय सावित्री के सामने मन ही दुर्बलता अचानक प्रकट हो जाने पर वह लज्जा के मारे मकान से लम्बी सांस भरता हुआ भाग गया था, उस समय लज्जा में मानो कुछ मिठास मिली हुई थी। मानो ओट में रहकर किसी ने उसमें भाग ले लिया था लेकिन आज सावित्री के व्यंग वचन की आग से उस रस की अन्तिम बूंद तक सूख गई और लज्जा बिल्कुल ही शुष्क-कठिन होकर उसके हृदय में बद्धमूल होकर बैठ गई। उस दिन उसके आत्म-सम्मान ने केवल सिर झुका दिया , आज वह उसके कन्धे पर टूट पड़ा और सबसे बढ़कर यह दु:ख चोट पहुँचाने लगा कि इस स्त्री से उसने इतने दिन जितने परिहास किये हैं, उन सभी का आज एक गन्दा अर्थ निकाला जायेगा। कल प्रात:काल तक सचमुच ही परिहासों में व्यंग के अलावा कोई दूसरा अर्थ नहीं था। निर्जन दोपहर के इतने ही असमय के बाद उस बात को तो मुंह में लाने का भी आ उपाय नहीं रहा। आसक्ति बहुत दिनों से छिपी हुई दशा में प्रतीक्षा नहीं करती थी, इस बात पर तो सावित्री किसी प्रकार भी विश्वास न करेगी। वह अकेली—इनके मन में यही बात थी ! लेकिन उसके मन में तो कुछ नहीं था। इस सत्य को समझाकर बता देने का सुअवसर उसको कब मिलेगा ? वह अच्छा लड़का नहीं है, इसकी लज्जा भी उसको खूब अधिक नहीं थी, लेकिन पाखंड की निन्दा वह कैसे सहेगा ? उसने मन-ही-मन कहा—यदि वह चोर है तो चोर के समान सेंध काटते समय ही हाथोंहाथ क्यों न पकड़ लिया गया ? सावित्री मानो मन-ही-मन हंसकर कहेगी—यह साधु जटा-कमण्डल पीठ पर बांधकर त्रिशूल से सेंध काट रहा था, पकड़ा गया है। इस अपवाद की कल्पना उसको जलाने लगी। इसी प्रकार बैठे रहने पर रात कितनी बीत गई, इसको वह जान भी न सका। शीत का कोप होने से जब उसको जाड़ा लगने लगा और उस पार चटकल की घड़ी में जब बारह बज गये, तब सतीश उठ पड़ा और अपने घर की तरफ रवाना हो गया। कुछ क्षण के लिए मानो वह अपने काल्पनिक अंश को भूल गया था, लेकिन चलते-चलते मकान की दूरी जितनी घटने लगी, उसका मन फिर उसी अनुपात से छोटा होने लगा। अंत गली के मोड़ के पास आ जाने पर उसके कदम उठ ही नहीं रहे थे, ऐसी दशा हो गई। धीरे-धीरे किसी प्रकार वह मकान के दरवाजे के सामने आकर चुपचाप खड़ा रहा। कहीं भी कोई जाग रहा है ऐसा मालूम नहीं हुआ और यद्यपि वह जानता था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने घर लौट गई होगी तो भी दरवाजा खटखटाने-पुकारने का साहस उसको नहीं हुआ। भय होने लगा कि कहीं वही आकर दरवाजा न खोल दे। ठीक उसी समय किवाड़ अपने आप खुल गया। एक क्षण सतीश चुप रहा। फिर बोला—'बिहारी है ?'

'हां बाबू।'

'सब खा चुके ?'

'जी हां।'

'नौकरानी चली गई ?'

'जी हां, मुझे बैठे रहने को कहकर वह अभी चली गई।'

यह सुनकर सतीश मानो बच गया। प्रसन्न होकर उसको दरवाजा बन्द करने को कहकर ऊपर चला गया।

बिहारी आकर बोला—'बाबू आपका खाना ?'

'मैं खाकर आया हूं।'

बिहारी ने कहा—'आपके लिए पान और जल मेज पर रखा है।'

'अच्छा—तू जाकर सो रह।'

बिहारी चला गया। सतीश बिस्तर पर लेट कर सो गया।

झगड़ा कर चुकने के बाद सावित्री का भी मन अच्छा नहीं था। सतीश की कटुक्ति का उत्तर देना उचित काम नहीं हुआ है यह बात सारे दोपहर उसको क्लेश देती रही। इसलिए दिन में किसी समय एकान्त में क्षमा याचना कर लेने की आशा भय में परिणत होने लगी। वह जानती थी इस कलकत्ते में विपिन के यहां जाने के सिवा सतीश के लिए और कोई स्थान नहीं हैं। इसीलिए सबसे पहले यह भय उत्पन्न हो गया कि वह उसी दल में सम्मिलित हो गया होगा। क्रमश: रात बढ़ने लगी। सतीश नहीं आया। सन्देह दृढ़ होकर जब विश्वास में परिणत हो उठा, तब प्रतीक्षा करना भी उसके लिए असम्भव हो उठा। वास्तव में उसको घृणा होने लगी कि क्षमा मांगने के लिए वह ऐसे आदमी की बाट देख रही है। इस कारण बिहारी को बैठने को कह कर सावित्री बड़ी रात को घर लौट गई। अपने घर जाकर वह बिस्तर पर लेटी तो रही, लेकिन आंखों में नींद नहीं आई। प्रतीक्षा न कर सकने पर अंधेरा रहते ही वह चल दी। रास्ते में उस समय मारवाडी स्त्रियां गाते-गाते गंगा स्नान करने आ रही थीं। सावित्री ने कहा—'गंगा मैया, जाकर सब अच्छा ही देखूं।'

उसके होंठ कांपने लगे। आंसू से दोनों आंखें भर गई, और इस कल्पित आंशका से अपने सम्पूर्ण मन को परिपूर्ण बनाकर वह राह में तेज कदमों से चलते-चलते हजारों बार मन-ही-मन उच्चारण करने लगी—'सकुशल रहे, जो ही मन करे लेकिन अच्छा रहे।' मकान पर पहुंचने पर पुकारने के बाद बिहारी ने दरवाजा खोलने के साथ ही कहा—'सतीश बाबू बड़ी रात को आये थे, और मालूम नहीं कहां से खाना खाकर आये थे।' यह सूचना पहले ही दे देने की आवश्यकता है यह बात उस बूढ़े से छिपी नहीं थी। सावित्री ऊपर जा रही थी, ठिठकर खड़ी हो गई। माथे को सिकोड़कर उसने पूछा—'शायद बाबू ने खाया नहीं?'

'नहीं, उनका खाना तो ढका हुआ रखा है।'

सावित्री एक 'हूं' कह कर ऊपर चली गई। उसका दुश्चिन्ता से ग्रस्त मन निर्भय होनें के साथ ही फिर ईर्ष्या से जल उठा।

प्रात: दिन चढ़ आने पर जब सतीश की नींद टूटी ठीक उसी समय सावित्री आ खड़ी हुई। उसके मुंह ही ओर देख लेने के साथ ही सतीश ने सिर झुका लिया। कुछ देर बाद सावित्री ने कहा—'क्या रसोई बने, यह जान लेने के लिए आई हूं।'

'रोज जो बनती है वही बनने दो।'

'अच्छा!' कह कर सावित्री जाने को तैयार होते ही फिर खड़ी हो गई, बोली—'लिखने-पढ़ने की तरह ही बाबू को क्या खाना-पीना भी अब अच्छा नहीं लगता?'

सतीश ने धीरे से कहा—'मैं खा आया था।' उसने भय से झूठी बात कह दी। लेकिन कहां, इस बात को भी सावित्री ने घृणा के कारण नहीं पूछा। देर चुप रहकर बोली—'आज दो दिन से आप भागते हुए घूम रहे हैं। किस भय से, जरा सुनूं तो? मेरे कारण यह असुविधा होती हो तो आप मुझे जवाब दे सकते हैं।'

सतीश ने मुंह ऊपर उठाकर कहा—'तुम्हारा अपराध क्या है? इसके अलावा मैं तो जवाब देने का मालिक भी नहीं हूं, यह मकान तो केवल अकेले का नहीं है।'

सावित्री ने कहा—'अकेले का होता तो शायद जवाब दे देते! अच्छा तो मैं स्वयं ही चली जा रही हूं।'

सतीश चुप हो रहा। यह देखकर सावित्री मन-ही-मन और भी जल उठी। बोली—'मेरे जाने से आप प्रसन्न होते हैं? आपके पैरों पर गिरती हूं सतीश बाबू, हां या नहीं, एक उत्तर दीजिये।'

फिर सतीश चुप रहा। सावित्री इस मकान पर अपने लिये कितना अधिकार रखती है इस बात को वह जानता था और इस प्रकार उसके चले जाने से कोई भी बात छिपी न रहेगी। तब सब बातें एक मुंह से दूसरे मुंह में बढ़ते-बढ़ते कैसी घृणित आकृति धारण कर लेगी, इसका निश्चित अनुमान करके वह डर गया। क्षण भर चुप रहकर उसने मीठे स्वर से कहा—'मुझे क्षमा करो सावित्री! जब तक मैं यहां हूं, कम-से-कम तब तक तो तुम कहीं भी मत जाओ!'

कोई और समय होता तो वह तुरन्त माफ कर देती, लेकिन सतीश के सम्बन्ध में वह शायद एक सन्देह मन-ही-मन पोषण कर रही थी, इसलिए इस मृदु कंठस्वर को कपटाचरण समझकर वह निर्दय हो उठी और उसके ही गले का अनुकरण करके वह उसी क्षण बोल उठी—'आप इतना आडम्बर करके क्षमा मांगकर साधु बनने जा रहे हैं किसलिए? मुझ जैसी नीच स्त्री का आंचल पकड़कर यह क्या किया आपने कि लज्जा से बिल्कुल ही मरते जा रहे हैं? इससे अच्छा यह है कि आप अपने घर चले जाइये। लिखना-पढ़ना आपके बस का नही है।'

जो सतीश उग्र स्वभाव के कारण किसी की भी परवाह नहीं करता था, बातों को सह लेना जिसका स्वभाव नहीं था, वह इस समय इतने बड़े अपमान की बात से चुप हो रहा।

उसका अपराधी मन भारी बोझ से दबे हुए बोझ ढोने वाले पशु के समान इस प्रकार निरूपाय दशा मे राह में सिकुड़ कर पड़ा हुआ था कि सावित्री के इस बार निष्ठुर आघात से भी वह किसी प्रकार अपना मस्तक ऊपर उठाकर खड़ा न हो सका। सावित्री चौंक उठी। उसकी स्पर्धा को भी पार कर गई, यह बात उसके अपने कानों में भी जा लगी। बड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गई।

3

आज सावित्री सारे काम-काज तो सामान्यत: ही करती रही पर उसके मन में एक उत्कण्ठा दिन भर बनी रही। सतीश यदि कल के समान आज भी क्रोध करता अथवा एक भी बात का उत्तर देता तो अच्छा था लेकिन उसने कुछ भी नही कहा— गम्भीर, उदास मुख से नित्य की भांति भोजन कर पढ़ने चला गया और ठीक समय पर वापस आ, मौन होकर घर मे बैठा रहा आड़ में सावित्री सब कुछ देखती रही, लेकिन कोई बहाना लेकर भी उसके कमरे में जाने का आज उसे साहस नहीं हुआ। नित्य संध्या के

पहले वह अपने हाथों से उसका कमरा झाड़ बुहार आया करती थी, आज उसने बिहारी को भेज दिया। शाम को रोशनी भी बिहारी ही जला आया।

नित्य इसी समय राखाला बाबू के कमरे में शतरंज का अड्डा जमता है सो वह आज भी जमा और रह-रहकर बात-बात पर हंसी के फौब्बारे छूटने लगे। सामने की खुली छत पर कोई न था। सावित्री ने इधर-उधर देखा। अपने सारे संकोच को उसने बरबस घसीट कर निकाल फेंका और दबे पांवों सतीश के कमरे में आकर खड़ी हो गई। सतीश बिस्तर पर चित्त पड़ा हुआ मानो छत की कड़ियां गिन रहा था। अब वह उठ बैठा, क्षण भर चुप रहकर सावित्री ने पूछा— 'संध्या—वन्दन का सामान ठीक कर दूं।'

सतीश ने कहा—'कर दो।' फिर सावित्री को चुप हो जाना पड़ा। लेकिन दो-चार क्षण बाद वह बोली—'भला सोचिए तो सही। लोग क्या कहेंगे।'

सतीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। सावित्री ने कहा—'आपने मुझे तो रहने को कहा लेकिन आप स्वयं वह क्या कर रहे हैं?

सतीश ने गम्भीर भाव से कहा—'मैं क्या कर रहा हूं? कुछ तो नहीं—हां, केवल मौन हूं।'

सावित्री ने कहा—'यह चुप्पी ही तो बुरी है। जब और कोई चुप नहीं, तब आपके चुप रहने पर ही तर्क होगा। क्या आप यही चाहते हैं?' क्षण भर स्थिर रहकर बोली—'व्यर्थ मुसीबत मोल लेने की कहावत क्यों चरितार्थ करना चाहते हैं? कोई दोष नहीं; कोई बात नहीं, फिर अपराधी का स्वांग क्यों बनाए हुए हैं? इसी पर पांच आदमी कानाफूसी करेंगे, हंसी-मजाक उड़ायेंगे। हो सकता है, कि आप इसे सहन कर लें पर मेरे लिए तो सहना असम्भव होगा। मैं देखती हूं मुझे यहां से शीघ्र ही अब बिदा होना पड़ेगा।'

सतीश ने मन-ही-मन बेचैन-सा होकर कहा—'क्या सचमुच ही मैंने कोई अपराध नहीं किया?'

सावित्री ने कहा—'नहीं—कुछ भी नही। तनिक सोचिए भी तो, आप ही मन साफ हो जाएगा। मेरे साथ आपने जो कुछ किया है, वह तो...' इतना कहकर सावित्री एकाएक रूक गई। जैसे दौड़ता हुआ घोड़ा अचानक किसी गहरी खाई के किनारे पहुंचकर अपने दोनों पांव उठाकर प्राणों की बाजी-सी बदकर अड़ गई। उसकी अचानक इस निस्तब्धता से विस्मित होकर सतीश के सिर उठाते ही आंखें चार हुईं, मारे लज्जा के सावित्री आप ही मर-सी गई। वह कहने चली थी कि उस जैसी स्त्री के प्रति ऐसा अपराध करना कोई लज्जा का विषय नहीं—किन्तु मारे लज्जा के उसका रोम-रोम कांप उठा।

सतीश कुछ कहना चाहता था। सावित्री ने रोक कर कहा—चुप रहिये। जाने दीजिए। झूठ-मूठ तिल को पर्वत बनाकर कष्ट न उठाइये। अरे ओ बिहारी! बाबू की पूजा का स्थान जरा जल्दी से धो दे। मैं बड़ी देर से आसन लिये खड़ी हूं।' बिहारी किसी काम से इसी ओर आ रहा था। तुरन्त ही जल लाने वापस चला गया। सावित्री ने कुछ रूठकर कहा, 'आपके रंग-ढंग और बात-व्यवहारों से दो दिनों से मैं कितनी परेशान हूं, पर आपको एक बार मेरी इस दशा पर आंख उठाकर देखने तक का अवकाश नहीं।'

उसकी इतनी शीघ्रता से कही हुई इन बातों को भली भांति समझने का अवकाश

सतीश को नहीं मिला। फिर उसकी भीतरी ग्लानि मानो साफ हो चली। उसके बाद ही क्षमा-प्राप्त अपराधी की भांति उसने व्यग्र स्वर में कहा, पर क्या मैंने तुम्हारा अपमान नहीं किया, सावित्री ?'

सावित्री ने घबराकर कहा—'आप समझते नहीं तो मैं कैसे समझाऊं? सौ बार—हजार बार कहती हूं, कि आपके उस व्यवहार से मेरा तनिक भी अपमान नहीं हुआ। कृपा कर आप ठिकाने आइये—मन को स्थिर कीजिए। बस, हाथ जोड़कर मैं आपसे यही विनय करती हूं।'

उत्तर में सतीश कुछ कहना ही चाहता था, किन्तु सावित्री भौंहों के इशारे से मना कर झट उठी, बिहारी, आ गया ला !' बिहारी लोटे में जल लाया था। सावित्री ने उससे लोटा लेकर कमरे का एक कोना अच्छी प्रकार धो, आंचल से पोंछकर सतीश से कहा, 'अच्छा, अब आप जाइये, हाथ-पैर धोइये और कपड़े बदलकर संध्या-वन्दन कर लीजिए। अर्घा और आचमनी उस ओर रखी है।' हाथ से दिखा और बातों से सतीश के हृदय के असह्य भार को एकदम हल्का कर सावित्री बिहारी को साथ लेकर धीरे-धीरे बाहर चली गई।

सतीश ने स्वस्थ मन से संध्या-वन्दन समाप्त कर उठते ही देखा कि इसी बीच में कोई चुपचाप आसन बिछाकर भोजन की थाली रख गया है। यद्यपि कमरे में और कोई नहीं था, तो भी उसने समझ लिया, कि वह अकेला नहीं है। आसन पर बैठकर उसने धीरे-धीरे कहा. 'अभी इतना अधिक खा लूंगा तो फिर रात को न खा सकूंगा।' बाहर से उत्तर आया, 'खाने की आवश्यकता भी न होगी। विपिन बाबू के यहां का निमन्त्रण आया हुआ है।'

सतीश हंस पड़ा, बोला, 'जाओ, तंग न करो। मैं कही न जा सकूंगा।' सावित्री ने आड से कहा, 'भला ऐसा भी होता है? बेचारे कह गए हैं, शायद कहीं जाना है, आप तो जानते होगे। आपके न जाने से सब किये-कराये पर पानी फिर जायेगा। 'शायद गाने-बजाने की...।'

'कुछ भी हो,' कहकर और उसकी बातो पर कोई विशेष टीका-टिप्पणी न कर सतीश चुपचाप खाने लगा। खा-पीकर मुंह- हाथ धो, सिरहाने बत्ती रख, चारपाई पर लेट भले विद्यार्थी के समान एक डाक्टरी पुस्तक हाथ में ले पन्ने उलटने लगा, किन्तु पढ़ने में उसका मन न लग सका। उसका चिन्तारहित चित बन्धनमुक्त घोड़े के समान प्रयोजन न रहने पर भी जहां-तहां दौडने लगा।

उस समय ब्राह्मण देवता ने रसोईघर में चूल्हे पर चावल-दाल की हंडिया चढ़ा दी थी और आप बिहारी से गांजा मलवा रहे थे। राखाल बाबू के कमरे में चौपड़ के पासे की खटखटाहट के साथ शोर-गुल बढ़ता जा रहा था। सतीश ने पुकारा, 'सावित्री ?' सावित्री उस समय भी चौखट के बाहर बैठी हुई थी, बोली, 'कहिये।'

सतीश ने कहा, 'विपिन बाबू के निमन्त्रण में जाना महापाप है। बिना समझे जो पाप किया, वह तो किया ही, अब समझ-बूझकर पाप नही करूंगा।'

सावित्री ने बाहर ने पूछा, 'बात क्या है?'

सतीश ने कहा, 'मुझे मालूम है कि उसके गाने-बजाने का प्रबन्ध कहां हो रहा है,

उस स्थान पर जाना ही पाप है।'

सावित्री—'तो ऐसी जगह मत जाइये।'

सतीश ने उतेजित होकर कहा, 'निश्चय ही नहीं जाऊंगा, लेकिन वह सहज ही मुझे छोड़ देगा, ऐसा नहीं जान पड़ता। इसी में तुम्हें पहले से चेताये देता हूं। यदि आये भी तो टाल देना। कह देना मैं घर में नहीं हूं, रात को आऊंगा भी नहीं। समझ गई न?'

सावित्री ने कहा, ' समझ गई।'

सतीश ने एक आवश्यक कर्तव्य का पालन कर निश्चिन्त भाव से सांस ले, क्षण भर चुप रहने के बाद कहा, 'बड़ी तेज ठंडी हवा आ रही है। सावित्री, जरा खिड़की बन्द कर दो।' सावित्री कमरे में आकर खिड़की बन्द करने लगी। सतीश एकटक उसकी ओर देखता रहा। देखते-देखते कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया। प्यार से बोला, 'अच्छा सावित्री ! तुम अपने को नीच स्त्री क्यों मानती हो?'

सावित्री मुड़कर खड़ी हो गयी। बोली, 'जो सच बात है, वह क्यों नहीं कहूंगी?'

सतीश ने कहा, 'यह बात तो सच नहीं। तुम गंगा जी में गर्दन भर पानी में खड़ी होकर कहो तब भी मैं विश्वास नहीं करूंगा।'

सावित्री ने मुस्कराकर कहा, 'क्यों नहीं करेंगे?'

सतीश—'यह मैं नहीं जानता। शायद इसीलिए कि यह सच नहीं है। न तो नीचों के समान तुम्हारा व्यवहार है, न वैसी बात-चीत और न सूरत-शक्ल ही ...हां, तुमने इतना लिखना-पढ़ना कहां सीखा?'

सावित्री पास ही सहम कर बठ गई और हंसकर बोली, 'कितना? जरा सुनूं भी तो।' सतीश उसकी व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत हुआ। खुली पुस्तक उसने एक ओर रख दी, लेकिन फिर ठहर गया। कान खड़े कर वह कुछ आहट लेने लगा। पास ही जूतों की चरमराहट सुनाई पड़ी और क्षणभर बाद ही उसके कमरे के बहुत ही निकट मतवाले कण्ठ की गम्भीर पुकार आई, सतीश बाबू !'

सतीश समझ गया कि विपिन की जमात वाले आ पहुंचे हैं उसे लिवा ले जाने के लिये। आगे-पीछे की कोई बात न सोच उसने झट मुंह से फूंक मारकर रोशनी गुल कर दी और सारा शरीर एक कम्बल से ढंककर सो रहा। थोड़ी दूर पर बैठी हुई सावित्री व्याकुल होकर बोली, 'अरे ! यह क्या किया आपने?'

क्षण भर बाद ही अन्धेरे द्वार के सामने दो मूतियां आकर खड़ी हुईं। एक ने कहा, 'यही तो सतीश बाबू का कमरा है।'

दूसरे ने कहा, 'नौकर ने तो कहा था कि बाबू कमरे में ही हैं।'

पहले ने झुंझलाकर कहा, 'कमरे में तो अंधेरा पड़ा है। भला कोई भलामानस शाम को अंधेरे में बैठा रहता है? तुम भी बस।'

दूसरे ने उत्तर में उसके कान में कुछ कहा, पाकेट से दियासलाई ढूंढ निकाली और कांपते हुए हाथ से रोशनी जलाने लगा।

इधर बिछौने पर सतीश के शरीर का खून पानी हो गया। वह सिर से पैर तक पसीने-पसीने होने लगा। इधर सावित्री मारे लज्जा और घृणा के काठ हो गई।

दियासलाई जल उठी—'यहां कौन बैठा है?'

पहला आदमी घर में घुसकर ज्यों ही दियासलाई जलाने लगा, त्यों ही सावित्री उठ खड़ी हुई।

दूसरे आदमी ने जरा हटकर पूछा, 'सतीश बाबू कहां है?'

सावित्री चुपचाप बिस्तर की ओर संकेत करके बाहर चली गई। उसके जाते ही दोनों ने ठठाकर हंसना शुरू कर दिया। उस हंसी का शब्द और अर्थ सावित्री ने कानों में जा खटका। सतीश कम्बल के भीतर बारम्बार अपने लिए मृत्यु बुलाने लगा।

उन लोगों ने कम्बल खींचकर अलग फेंक दिया और सतीश को जबरदस्ती पकड़ कर ले चले।

जब तक उनकी विकट हास्य-ध्वनि एकदम घर से बाहर निकल वायु-मणडल में न मिल गई, तब तक सावित्री एक अंधेरे कोने में दीवार से सिर लगाकर इस प्रकार खड़ी रही, जैसे उसके सिर पर वज्रपात हुआ हो।

किन्तु घर में किसी को कुछ मालूम न हो सका। रसोईघर में महाराज अभी गांजे का दम लगाना समाप्त कर बिहारी को यह समझ रहे थे कि वेदों ने किस प्रकार इसे मुक्ति देने वाला बतलाया है और एक कमरे में राखाल बाबू का दल इस बात की मीमांसा कर रहा था कि हड्डी का पासा आदमी की चिल्लाहट सुन सकता है या नहीं।

मार्ग में आकर तीनों एक गाड़ी में बैठ गए। उनकी हंसी असह्य हो जाने पर सतीश ने बहुत ही रूखे स्वर में कहा—'या तो आप लोग चुप रहिये, नहीं तो मुझे क्षमा कीजिए, मैं उतर जाता हूं।'

उसकी बात सुन, एक तो 'अच्छी बात है' कहकर बड़ी विकट आवाज में हंस पड़ा और दूसरा अपने साथी को चुप रहने के लिए डांट लगाते हुए उससे भी जोर से हंस उठा। इन शराबियों को समझाना व्यर्थ समझकर सतीश निष्फल क्रोध से खिड़की से मुंह निकाल मार्ग की ओर देखने लगा।

रात को, अंधेरे बरामदे में सावित्री चुपचाप बैठी थी। मालूम होता है, शाम को जो लज्जाजनक घटना हो गई थी, उसका मन अब भी उसकी आलोचना कर रहा था। उसी समय बिहारी आकर खड़ा हुआ और बोला—'सब लोग खा-पी चुके। महाराज तुम्हें जलपान करने को बुला रहे हैं।'

सावित्री ने सिर उठाकर खिन्न मन से कहा—'बिहारी, आज मैं नहीं खाऊंगी।' बिहारी सावित्री को प्रेम की दृष्टि से देखता था। वह उसे मानता भी था। चिन्तित होकर पूछा—'खाओगी क्यों नहीं? तबियत तो अच्छी है?'

'हॉं, तबियत तो अच्छी है, लेकिन खाने को जी नहीं चाहता। जाओ, तुम लोग खाओ-पीओ।'

बिहारी ने कहा—'तो चलो, तुम्हें पहुंचा आऊं।'

सावित्री ने कहा—'अच्छा, चलो। लेकिन हां, बिहारी, एक बात है, सतीश बाबू अभी तक लौटे नहीं हैं; तब तक तुम जागे रह सकोगे?'

बिहारी ने कुछ चौंककर कहा—'मैं! लेकिन मेरी कमर में तो आज फिर दर्द का दौरा आ गया है।'

'तब क्या होगा बिहारी?'

बिहारी ने जरा सोचकर कहा—'यदि आज तुम महाराज को बुलाकर कह दो तो— ।'

सावित्री बोल उठी—'नहीं यह न होगा। बेचारे बाबा जी को इस सर्दी में कष्ट न दूंगी।'

इच्छा न रहने पर भी बिहारी कुछ देर तक चुप रहकर बोला—'अच्छा, न सही, मैं ही रहूंगा। तो चलो, तुम्हें पहुंचा आऊं।'

सावित्री उठ खड़ी हुई, दो-एक कदम चलकर ठहर गई, बोली—'बिहारी, रहने दो । तुम जाओ, खाओ। उसके बाद ही जाऊंगी।'

बिहारी के चले जाने पर सावित्री वापस आकर वहीं बैठ गई और चुपचाप अन्धकारमय आकाश की ओर देखने लगी। आज सतीश के बंधन में उसे बड़ा भय था। उसे शराबियों के हाथ में पड़ते उसने अपनी आंखों देखा था। इससे उसका मन घर जाने को तैयार न हो सका। जिस सतीश के व्यवहारों के कारण सावित्री ने मन-ही-मन अपमान और लांछन सहने के बाद आज सवेरे तक यही निश्चय कर रखा था कि अब मैं यहां का काम छोड़ दूंगी, उसी सतीश के सारे आराधों को भूले बिना और उस पर आने वाली भावी विपत्ति को कोई मार्ग दिए बिना वह घर जाने को किसी प्रकार तैयार न हो सकी। बिहारी के खा-पीकर आने पर उसने कहा—'बिहारी, तुम जाओ, सो रहो, मैं यही रहती हूं।'

बिहारी ने आश्चर्य से पूछा—'घर न जाओगी?'

'बाबू को लौट आने दो। क्या तब मुझे घर पहुंचान न जा सकोगे?'

'क्यों नहीं? अवश्य पहुंचा सकूंगा।'

'तो फिर वही ठीक है। मैं बैठी हूं, तुम जाओ, सोओ।'

बिहारी प्रसन्न होकर चला गया। सावित्री एक चादर ओढकर बैठ गई। वे दोनों शराबी जो कुछ देख गए हैं, उसे अवश्य लोगो के सामने गाते फिरेगे। इसमे उसे लेशमात्र भी संशय नहीं था; और कोई भी इस घटना का दूसरा अर्थ नहीं लगाएगा—इस बात में उसे सन्देह नही रह गया। विपिन को वह जानती थी। वह इस बात को अवश्य सुनेगा और जब उसका यहां आना-जाना होता है, तब यहां के लोग भी यह बात जाने बिना न रहेंगे। इसके बाद फिर सतीश कौन-सा मुंह लेकर एक घड़ी भी यहां रह सकेगा! इस झूठे कलंक की लज्जा वह कैसे सहेगा? संयोगवश जो हुआ वह तो हो ही गया, अपने विषय में वह यहीं तक सोचकर ठहर गई। लेकिन बार-बार सोचकर भी सतीश के सम्बन्ध में उसकी बुद्धि ने कुछ काम न किया।

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी, फिर भी सतीश का पता नही। पास ही किसी पड़ोसी की घड़ी में टन-टन करके दो बज गए। सुनसान गहरी रात में घड़ी की आवाज स्पष्ट सुन पड़ी। छत से ठंडी-ठंडी हवा का झोका-सा आकर उसकी आंखों को नीद से दबाने लगी, तो भी वह दरवाजे पर कान लगाए जागती बैठी रही। जब रात बहुत थोड़ी शेष रह गई, तब एक गाड़ी की घड़-घड़ाहट सुन वह चौंक कर उठ बैठी। उसे मालूम हुआ कि गाड़ी उसी दरवाजे पर आकर लगी है। सावित्री चुपचाप नीचे उतरी और सावधान होकर दरवाजे के पास आ खड़ी हुई। यदि कोई दूसरा ही हो इस भय से उसने सहसा द्वार खोलने का साहस नहीं किया। दूर होने लगी, किसी ने दरवाजा नहीं खटखटाया। जो गाड़ी आई

थी, वह भी वापस चली गई। सहसा सावित्री का हृदय भय से भर गया और तुरन्त सब दुविधा छोड़कर उसने फुर्ती से किवाड़ खोल दिए। सतीश चौखट के सहारे बैठ गया—लुढ़का हुआ-सा पड़ा था। उसका चेहरा पीला पड़ रहा था, आंखें मुंदी हुई थी। उसके कपड़े के कीचड़ और ललाट के एक ओर रक्त की रेखा पास के गैस की रोशनी में स्पष्ट देखते ही सावित्री रो पड़ी। साथ-ही-साथ वह उसके सामने आ, घुटने टेक और दोनों हाथों से सतीश का मुंह ऊपर उठाकर बोली—'बाबूजी, ऊपर चलिए।'

सतीश ने सिर हिलाकर कहा—'नही, मजे में हूं।'

सावित्री ने आंखें पोंछ कर कहा—'कही चोट लगी है?'

'नहीं, मजे मे हूं। छोड़ दो मुझे।'

सतीश ने फिर सिर हिलाकर कहा—'नही, न जाऊगा, मजे मे हूं।'

सावित्री ने जरा कड़ी आवाज में कहा—'सुनते नही? उठिए, अन्दर चलिए।' फटकार सुनते ही सतीश की लाल विह्वल आंखें खुली। वह कुछ देर देखता रहा फिर उसकी ओर दोनो हाथ बढ़ाकर बोला—'चलो!' उसी के कन्धे का सहारा लेकर सतीश उठ खड़ा हुआ। उसी के सहारे बड़े कष्ट से, बडी देर तक झूमता हुआ अंधेरी सीढ़ियों से ऊपर कमरे में आकर लेट गया। लड़खडाती हुई आवाज ने कहने लगा—'सावित्री! तुम्हारा ऋण मैं किसी जन्म न चुका सकूंगा।'

सावित्री ने कहा—'ठीक है, आप अब सोइये।'

सतीश तुरन्त उठ बैठा. बोला—'क्या? सोऊ? कभी नही।'

सावित्री ने फिर डाट बताते हुए कहा, 'फिर वही बात!'

सतीश लेट गया। चुप रह कर बोला, 'लेकिन तुम्हारा ऋण...।'

सावित्री 'अच्छा' कहकर उठी, लालटेन लाकर उसने घाव को धोकर पूछा—'वहां कैसे गिर पड़े?'

सतीश ने सिर हिलाकर कहा—'नही, गिरा नही।'

सावित्री रूंधे हुए कण्ठ से बोली—'फिर यदि किसी दिन आपने शराब पी तो मैं आपके पैरों मे सिर पटक कर जान दे दूंगी।'

सतीश ने कहा—'अब कभी न पीऊंगा।'

'मुझे छूकर कसम खाइये।' कहते हुए सावित्री ने अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया।

सतीश ने अपने दोनो हाथो मे उसका भीगा हुआ ठण्डा हाथ लेकर कहा—'लो सौगन्ध खाता हूं, अब कभी न पीऊंगा।'

सावित्री ने हाथा खीच लिया, कहा—'याद रहेगा?'

'न रहे तो याद करा देना।'

'अच्छा, मै जाती हूं, आप सोइए'—कहकर सावित्री धीरे से किवाड बन्द करके बाहर जा खडी हुई। शुक्रतारे की ओर देखकर सावित्री अपने दोनो हाथ जोडकर रोती हुई बोली—'देवता! तुम साक्षी हो।'

उस समय अन्धकार स्वच्छ होता जा रहा था। सावित्री नीचे उतरकर रसोईघर के एक कोने मे रैपर ओढ़कर सो रही।

4

दिन के दस बजने पर किसी प्रकार स्नान-पूजा समाप्त करके दिवाकर रसोईघर के सामने खड़ा होकर पुकारने लगा, 'ऐ महाराज जी, जल्दी भात परोसिये, बहुत दिन चढ़ आया है।

पास ही भण्डार-घर था। उसकी आवाज सुनकर उनकी ममेरी बड़ी बहन महेश्वरी बाहर आकर बोली, 'ऐ बाबू, मैं तेरी ही प्रतीक्षा कर रही हूं, भैया। ठाकुरजी की पूजा तो कर आओ।'

महेश्वरी इस घर की बड़ी लड़की है और मालकिन है। वह चार वर्ष से विधवा होकर पिता के घर आ गई है।

दिवाकर मौन हो गया। कुछ देर चुप रहकर बोला—'मैं यह काम न कर सकूंगा। मेरे कालेज का पहला घण्टा जाता रहेगा।'

महेश्वरी हंसकर बोली—'तेरा पहला घण्टा जाता रहेगा, इसलिए क्या ठाकुरजी की पूजा होगी नहीं?'

दिवाकर ने पूछा—'भट्टाचार्य जी कहां हैं? उनको क्या हो गया है?'

महेश्वरी बोली, 'वे बाबू जी के साथ चौसर खेलने के लिए बैठे हुए हैं। अब कितना दिन चढ़ने पर वे उठेंगे इसका कोई ठिकाना नहीं है?'

दिवाकर ने कहा, 'मंझले भैया से कह दो, आज कचहरी बन्द है।'

महेश्वरी ने कहा, 'कल से धीरेन्द्र की तबियत ठीक नहीं। वह स्नान करेगा नही, फिर वह पूजा किस प्रकार करेगा?'

'तब तुम छोटे भैया से कहो। वे बारह बजे के बाद कचहरी के लिए निकलते हैं, अभी उनको कुछ देर है!'

महेश्वरी ने दुःखी होकर कहा, 'तू कैसा तर्क करने लगता है इसका कोई ठिकाना नहीं। कल रात को वह थियेटर देखने गया था, अभी तक वह सोकर नही उठा, रात भर जागते रहने से क्या उसकी तबियत ठीक है? इसके अलावा, वह क्या किसी दिन पूजा करता है जो आज करेगा?'

इधर रसोइया भात परोस कर पुकार रहा था। दिवाकर ने कहा 'किसी न किसी काम में एक न एक बाधा आ पड़ने से प्रायः नित्य ही मेरा पहला घण्टा जाता रहता है, मैं परीक्षा कैसे दूंगा?'

महेश्वरी का क्रोध बढ़ता जा रहा था, वह बोली, 'परीक्षा न देने से भी काम चल सकता है, देवता की पूजा न होने से काम नही चल सकता। तुम्हारे साथ तर्क करने का समय मेरे पास नही है और भी काम हैं।'

रसोइया चिल्लाकर बोला, 'दिवाकर बाबू, भात परोस कर मैं खड़ा हूं, जल्दी आइये?'

महेश्वरी ने झिड़ककर कहा, 'तुम को भी समझ नही है महाराज! मैं इसको पूजा के लिए भेज रहा हूं, तुम शोर मचा रहे हो। भात ले जाओ, पूजा करके आने पर देना।' कहती हुई वह भण्डार-घर में चली गई।

दिवाकर कुछ देर चुप रहा, फिर वह धीरे-धीरे ऊपर चला गया। वहां पूजा की सामग्री

तैयार थी। घर में शालिग्राम-शिला की प्रतिष्ठा हुई थी। उनकी नित्य पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त है। वे इसी घर में रहते हैं। स्वामी शिवप्रसाद के समान उनकी भी चौसर की ओर दिलचस्पी है। कुछ दिन हुए शिवप्रसाद सरकारी नौकरी से पैंशन लेकर अपने पश्चिमी प्रदेश के मकान पर आकर रहने लगे हैं। सवेरे चाय पी लेने के बाद ही पुजारी जी की बुलाहट होती है, 'भूतो, भट्टाचार्य जी को एक बार बुलाओ। एक बाजी हो जाय।' बाद को एक बाजी, दो बाजी करते-करते दिन चढ़ जाता है। पुजारी जी को पूजा करने का समय नहीं मिलता। महेश्वरी नौकर को भेजा करती थी, लेकिन 'उठता हूं', करते-करते भी उठना नहीं होता था। पूजा का समय बहुत बीत जाता था, किसी को होश नहीं रहता था। इन दिनों पिताजी की तबियत ठीक नही है, फिर भी खेल के झोंके में अच्छी तरह रहते हैं। इस विचार से आज महेश्वरी पुजारी जी को नहीं बुलाती। इससे इन उनसे, जिस किसी से, अर्थात् दिवाकर से पूजा करा लेती है।

प्रातः चाय पीने का अभ्यास और समय दिवाकर को नहीं था। क्योंकि उस समय उसको नौकर के साथ बाजार जाना पड़ता था। आज बाजार से लौटकर नित्यकर्म पूरा करके वह भात खाने के लिए आया था।

दिवाकर पूजा के लिए चला गया। लेकिन आसन पर बैठकर सोचने लगा—दूसरे के घर में रहने का सुख यही है। यद्यपि अच्छी तरह होश संभालने के बाद से ही वह दूसरे के घर में रहता आया है और उसे अनेक दुखों को सह लेने का अभ्यास भी पड़ गया है, लेकिन मनुष्य की जो वस्तु किसी दुःख से भी नहीं मरती—वही भविष्य की आशा—आघात खाकर उसके हृदय से बाहर निकल सिर उठाकर खड़ी हो गई। क्रोध से उसकी सारी देह जल रही थी, सिंहासन से ठाकुर जी को उतारकर ताम्रकुण्ड के ऊपर फेंक दिया, और मन्त्र पढ़े बिना शरीर पर जल डालकर भीगे हुए देवता को उठाकर रख दिया। फूल चढ़ाने, तुलसी पत्र सजाकर रखने, घण्टी बजाने आदि हाथ के काम अभ्यास के अनुसार होने लगे अवश्य किन्तु विद्वेष की जलन से उसके कंठ से एक भी मन्त्र नहीं निकला।

इस प्रकार पूजा का तमाशा समाप्त करके जब उठ खड़ा हुआ, तब यह ध्यान आया कि पूजा तो बिलकुल नहीं हुई, फिर से पूजा करने बैठ जाऊं या नहीं, यह दुविधा एक बार उसके मन में जाग उठी, किन्तु उसके साथ ही उसको यह बात याद पड़ गई कि कॉलेज का पहला घण्टा बीत रहा है। फिर वह तेज कदमों से सीढ़ियों से नीचे उतर कर बाहर जा रहा था। महेश्वरी ने भण्डार-घर से उसे देखा तो बुलाकर कहा—'बिना भोजन किए जा रहा है?'

'भोजन करने का समय नहीं है।'

महेश्वरी ने कहा—'तो कॉलेज से कुछ समय पहले ही लौट आना।'

दिवाकर ने कोई उत्तर न दिया। वह अपनी बाहरी कोठरी में आकर कपड़े पहनने लगा तो नेत्रों में जल भर आया।

दिवाकर ने पीछे घूम कर देखा—नौकरानी खड़ी है। नेत्र पोंछकर उसने पूछा—'क्या बात है?'

नौकरानी बोली—'छोटी बहू ने आपको बुलाया है।

'चलो, मैं आ रहा हूं।'

सुरबाला अपने कमरे के सामने ही दिवाकर की प्रतीक्षा कर रही थी। दिवाकर ने आकर कहा—'क्या बात है?'

सुरबाला प्रकट रूप से नहीं, ओट में होकर बातें करती थी। सिर के कपड़े को जरा और खींच कर बोली, 'जरा कमरे में आओ।'

इतना कहकर कमरे में जाकर उन्होंने दिखा दिया, फर्श पर आसन बिछा हुआ था। एक कटोरा दूध, तश्तरी में दो-चार सन्देश रखे थे।

सुरबाला ने कहा, 'खाकर ही कॉलेज जाना।'

दिवाकर स्तब्ध हो खाने के लिए बैठ गया।

पास ही बिछौने पर उसके भाई उपेन्द्रनाथ उस समय भी निद्रित मनुष्य की भांति लेटे हुए थे। दिवाकर के खाना खाकर चले जाने के पशचात् ही सिर ऊपर उठाकर स्त्री को बुलाकर कहा, 'यह फिर क्या?

सुरबाला ने चौंककर पूछा, 'क्या तुम जाग रहे हो?'

'दो घण्टे से जाग रहा हूं, ग्यारह बजे तक कोई मनुष्य सो सकता है?'

सुरबाला हंसकर बोली, 'तुम सब कर सकते हो। वर्ना कोई मनुष्य क्या ग्यारह बजे तक पड़ा रह सकता है?'

उपेन्द्र ने कहा, 'सभी नहीं कर सकते, लेकिन मैं कर सकता हूं। इसका कारण यह है कि लेटकर सोये रहने की तरह से अच्छी वस्तु मैं कुछ भी संसार में नहीं देख पाता। कुछ भी हो, दिवाकर के..।'

सुरबाला ने कहा, 'क्रोध ठीक ही होता है। उस बेचारे को प्रात: पढ़ने का समय नहीं है। बाजार जाना, लौटकर ठाकुर जी की पूजा करनी पड़ती है। किसी दिन ग्यारह-बारह बज जाते हैं। बताओ तो किस समय वह खाना ले और किस समय पढ़ने जाए?'

'बात ठीक समझ में नहीं आई? भट्टाचार्य जी को बुखार है क्या?'

सुरबाला ने कहा, 'बुखार क्यों होगा! बाबू जी के साथ चौसर पर बैठे हैं! और उनका भी क्या दोष है? बाबू जी के बुलाने पर वे मना तो कर सकते नहीं।'

उपेन्द्र ने कहा, 'यह तो वे नहीं कर सकते, लेकिन पहले वे नौकर के साथ सबेरे बाजार आया करते थे न?'

सुरबाला बोली, 'कुछ दिनों तक चाव से जाया करते थे, नहीं तो बबुआजी को ही बराबर जाना पड़ता है।'

उस दिन ठाकुर जी की पूजा नहीं हुई, यही सोचते-सोचते दिवाकर मलिन मुख से धीरे-धीरे कालिज जा रहा था। मकान में अभी-अभी जो सब घटनाएं हो गईं, उस आलोचना को छोड़कर उसे बड़ी चिन्ता यह थी कि ठाकुर जी की पूजा आज नहीं हुई। बहुत दिनों की बहुत असुविधाओं के रहते हुए भी इस काम की उसने अवहेलना नहीं की, करने की बात भी मन में किसी दिन उठी नहीं थी। यद्यपि युक्ति-तर्कों से वह बराबर अपने मन को शांति देने लगा कि भगवान् केवल एक ही स्थान में बंधे हुए नहीं हैं; इसलिए एक स्थान में भोग न लगा तो भी अन्यत्र लगा होगा। लेकिन वही भगवान उनके बिना खाए हुए गृहदेवता अपनी नित्य पूजा और भोग से वंचित होकर क्रोधायुक्त

मुख से सिहासन पर बैठे रह गये, उनकी प्रति-हिसा का भय उसके मन से किसी प्रकार भी हटना नही चाहता था।

प्रोफेसर की तबीयत खराब हो जाने के कारण पहले घण्टे मे क्लास नही लगी—सुनकर दिवाकर को प्रसन्नता हुई। परीक्षा निकट आ रही है इस कारण छात्रो ने हाजिरी के हिसाब के लिए कालेज के क्लर्क को तंग कर डाला है। आज दूसरे छात्र जब इसी उद्देश्य से आफिस के कमरे की ओर जाने की तैयारी कर रहे थे, तब दिवाकर भी तैयार हो गया। लेकिन आफिस के सामने आकर ठाकुर जी की पूजा न करने की बात याद करके वह ठिठक कर खड़ा हो गया।

एक ने उससे पूछा—'खड़े क्यो हो गए ?'

दिवाकर ने उत्तर दिया—'रहने दो आज।'

'रहने क्यों दो'—कहकर वह लौट गया। हाजिरी के सम्बन्ध मे उसके मन मे बहुत सन्देह था, उस सन्देह की मीमांसा करने का साहस आज उसे नही हुआ।'

भोजन न करके आने पर भी उसके घर लौटने की कोई जल्दी नही थी। छुट्टी के बाद कालेज के फाटक के पास आकर उसने देखा, बी० ए० क्लास के छात्रो का दल दूर खड़ा रहकर कोलाहल कर रहा है। दिवाकर दूसरी ओर मुंह फेरकर हट गया और जो रास्ता सीधा गंगा जी की ओर गया है, उसी ओर चल दिया। टूटा हुआ पक्का घाट मुर्दे के कंकाल की भाति पडा हुआ था। किसी दिन इसका शरीर था, सौन्दर्य था, प्राण था, जगह-जगह पड़ी हुई टूटी-फूटी ईटो के ढेर यही बात कह रहे थे। कब किसने बंधवाया था, कौन लोग आकर बैठते थे, कौन लोग स्नान करते थे, कही भी कोई साक्षी नही है। जाड़े के दिनो की पतली गंगा, उसी के एक किनारे से अविश्राम समुद्र के किनारे की भूमि पर जौ के बाल सिर उठाए धूप की गरमी और गगा की वायु सेवन कर रहे है। उसी के एक किनारे बालू के तग मार्ग से दिवाकर घाट पर आ खड़ा हुआ। एक ओर ईंटो के छोटे से ढेर पर जूता उतार कर रख दिया। कुरता उतार कर उसे किताबो के बंडल के नीचे दबा दिया फिर जल मे बैठ, हाथ-मुह धो, सिर पर गंगाजल के छीटे दे, भूखे गृहदेवता का स्मरण किया। आदि से अत तक सब मन्त्रो को सावधानी से पढ़ कर भगवान को अंजलि दे, प्रणाम कर जब वह उठ खडा हुआ तब उसके ह्रदय का भार बहुत कुछ हल्का हो गया। कुरता-जूता पहन और पुस्तकें उठा जब वह चला तब भी दिन कुछ शेष था। उस समय भी स्त्रिया घाट के एक किनारे बैठी सिर में सज्जी मल रही थी।

5

सुरबाला के पिता ठेकेदारी के काम से बहुत धन कमा कर अपने बक्सर वाले मकान मे रहते थे। उनके दो लड़कियां थी। सुरबाला बड़ी थी, शची छोटी। अभी उसका विवाह नही हुआ था। वह पिता के पास बक्सर मे ही रहती थी। पिता के यहां सुरबाला को लोग 'पशुराज' कहते थे। मुहल्ले-टोले के अन्धे-काने कुत्ते-बिल्ली, विलायती चूहे, कबूतर, गौरैया आदि सैकड़ो जीव उनके आश्रम मे पले थे। किसी का उसने कभी भी त्याग नहीं किया। आज भी वे शची की देख-भाल मे आनन्द से जीवन बिता रहे हैं। सुरबाला के

नाम का रहस्य महेश्वरी जानती थी। यहां भी उसके नाम का प्रचार हो गया। जो बड़े थे, वे संक्षेप में 'पशु कहते तथा नौकर-चाकरों में कोई 'पशु-बहू' कहता तो कोई छोटी बहू कहता था।'

गृहस्थी के काम-काज से अवकाश पाकर रात को जब सुरबाला शयनगृह में आई तब उपेन्द्र ने कहा—'पशु, तुम्हारे पिताजी ने शची के लिए कोई वर ठीक करने के लिए फिर तकाजे की चिट्ठी लिखी है। जानती हो, शची तुमसे कितनी छोटी है?'

सुरबाला ने कहा—'क्या खूब! यह भी नहीं जानती? मेरे बाद एक भाई हुआ था, वह साल भर ही जीता रहा। उसके बाट शची ने जन्म लिया। वह मुझ से छः सात साल छोटी है।'

'इस हिसाब से तो वह बाहर-तेरह की होगी।'

'अवश्य होगी! बीमार रहने के कारण इतने दिन उसका विवाह नहीं किया गया। मेरे समान लम्बे-लम्बे हाथ-पांवों वाली होती तो बड़ी कठिनाई थी।'

उपेन्द्र ने हंसकर कहा—'कठिनाई कैसी? तुम्हारे पिता जी को रूपये की तो कमी है नहीं। रूपया रहने से सभी काम सुगमता से हो जाते हैं। जैसे मैं जा फंसा था, वैसे ही और फंसने वालों की संसार में कोई कमी नहीं है।'

सुरबाला बोल उठी—'क्या तुम पिता जी के रूपये देखकर फंसे थे?'

उपेन्द्र—'भलाई तो तुम्हारे सामने न कहने में ही है, लेकिन झूठ कैसे कहा जाये।'

सुरबाला—'पर यह बात तो सरासर झूठ है।'

उपेन्द्र—'कैसे?'

सुरबाला—'कैसे क्या? क्या झूठ का कोई प्रमाण होता है। तुम जब-तब यह बात कहा करते हो; लेकिन तुम पिता जी के रूपये देखकर नहीं गये। पिता जी के पास रूपये होते या न होते, तुम्हें जाना ही पड़ता मैं जहां, जिस घर में जन्म लेती वहां तुम्हें अवश्य जाना पड़ता—समझते हो?'

उपेन्द्र ने गम्भीरता का ढोंग रचकर कहा—'हां, कुछ-कुछ। लेकिन मान लो, यदि तुमने कायस्थ के घर जन्म लिया होता तो?'

सुरबाला खिल-खिलाकर हंस पड़ी, बोली—'वाह! क्या खूब! कहीं ब्राहाण के घर की लड़की कायस्थ के घर जन्म लेती है। इसी बुद्धि के बल पर वकालत करते हो?'

उपेन्द्र ने और अधिक गम्भीर होकर कहा—'बात तो ठीक ही कहती हो। इसी से मालूम होता है, मेरी वकालत खूब नहीं चलती।'

सुरबाला अपनी बात से आप ही दुःखी होकर सन्तोष के स्वर में चटपट बोली—'चलेगी क्यों नहीं, खूब चलेगी। इतना ही है, कि कुछ समय लगेगा। हां, एक बात और है। तुम्हें अधिक वकालत चलाने की आवश्यकता ही क्या है?' हंसकर बोली—'बारह से चार तक मेरे सामने हाजिर रहा करो, मैं तुम्हें पांच सौ रूपये का ठिकाना कर दे सकती हूं। पिता जी मुझे हर महीने ढाई सौ रूपये तो देते ही हैं, ढाई सौ उनसे और मांग लिया करूंगी।'

उपेन्द्र ने कहा—'मान लो, मैंने स्वीकार कर लिया, लेकिन मुझे करना क्या पड़ेगा?'

सुरबाला ने कहा, 'मेरे पास खड़े रहना पड़ेगा। हां, खड़े-खड़े थक जाने पर बैठने

की आज्ञा मिल जायेगी।'

उपेन्द्र—'और बैठे-बैठे थक जाने पर सोने की नहीं ?'

सुरबाला मुस्कराकर बोली, 'नहीं, सोने नहीं पाओगे। बैठकर थक जाने पर फिर खड़ा होना पड़ेगा। अफसर के सामने शरारत करोगे तो फाइन भी होगा।'

उपेन्द्र—'फाइन न दे सकने पर ?'

सुरबाला—कैद भुगतनी पड़ेगी। चार के बाद भी बाहर जाने का अवकाश नहीं मिलेगा, समझे ?'

उपेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा, 'समझ गया। अफसर जरा स्वभाव का कड़ा है, नौकरी बनी रहे तो बहुत है।'

सुरबाला अपनी दोनों कोमल भुजाएं स्वामी के गले में डालकर बोली,'अजी साहब, हाकिम कड़े स्वभाव का ही है, बिल्कुल ही कड़ा नही है। नौकरी अवश्य बनी रहेगी, न विश्वास हो तो एक दिन के लिए ही कर देखो। क्या हानि है ?' क्षण भर के बाद सुरबाला ने प्रेमालिगन से अपने को छुड़ाकर पूछा, 'पिताजी के पत्र का क्या उत्तर दोगे ?'

उपेन्द्र ने कहा—'लिख दूंगा, खोजने-खाजने की आवश्यकता नहीं, वर आपसे आप चला आयेगा।'

'राम ! राम ! यह क्या कह रहे हो ? उनसे हंसी करना क्या उचित होगा ?'

'तो इतनी देर क्या तुम मुझसे हंसी नही कर रही थीं ?'

सुरबाला ने शर्माते हुए कहा—'देखो, हंसी नहीं करती थी, लेकिन पिताजी को यह बात लिखने की आवश्यकता नहीं। मेरा विश्वास है कि शची के लिए वर ठीक हुआ-हवाया है और उसके अलावा उसके लिए दूसरा मार्ग भी नहीं है, लेकिन तुम्हारे मुंह से यह बात सुनकर पिताजी अप्रसन्न होंगे।'

उपेन्द्र ने हंसकर कहा—'परन्तु, यह तो मैं जानता हूं, कि शची के लिए वर ठीक है। उसे मैं तो जानता ही हूं, तुम भी जानती हो।'

सुरबाला ने उत्सुक होकर पूछा—'अच्छा, बतलाओ तो सही, वह कौन हैं ?'

उपेन्द्र ने कहा—'अभी नहीं, सब बातें पक्की करके तुम्हें बतलाऊंगा।'

सुरबाला कुछ देर चुप रहकर बोली—'अच्छा, एक बात तुम्हें बता रखती हूं। शची में एक ऐब है, उसे छिपाकर बात ठीक करना उचित नहीं। उसका परिणाम अच्छा कभी नहीं होगा।'

उपेन्द्र ने व्यग्र होकर पूछा—'क्या ऐब है ?'

सुरबाला बोली—'बताती हूं। मालूम होता है पिताजी की नीयत उसे छिपा रखने की है, नहीं तो वे स्वयं तुम्हें बतला देते। शची देखने-सुनने, लिखने-पढ़ने —सब में अच्छी है, पिता जी के पास रूपये भी अवश्य हैं, लेकिन शची को क्या अच्छी तरह देखा नही है ?

उपेन्द्र ने कहा—'देखा तो अवश्य है पर अच्छी तरह देखने का साहस...'

'तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। पहले मेरी बात सुन लो, फिर जो जी में आये, कहना। तुम्हें मालूम ही है कि शची बचपन से ही रोगिणी है। दो-तीन बार बड़ी-बड़ी बीमारियों से मरते-मरते बची है। एक बार वह अच्छी तो हुई, लेकिन उसका बायां पैर सूज कर पक

गया डाक्टर ने चीर कर उसकी जान बचाई, लेकिन उसका वह पैर सीधा न हुआ। तभी से जरा लंगड़ा कर चलती है। डाक्टर का कहना है कि बड़ी होने पर यह दोष मिट भी सकता है लेकिन इस भरोसे कौन विवाह करने को राजी होगा? जो सचमुच योग्य लड़का है, उसे योग्य लड़की भी मिल जाएगी।' जान-बूझकर वह शची-सी लड़की न ब्याहेगा और जो केवल रूपयों के लोभ में पड़कर विवाह करने पर राजी होगा, वह नालायक ही होगा।'

उपेन्द्र ने उसकी बातों को बड़े ध्यान से सुनने के बाद कहा—'मैंने शची को बहुत बार देखा है, लेकिन किसी दिन लंगाड़ाकर चलते तो नहीं देखा।'

सुरबाला ने मीठी हंसी हंसकर कहा—'मर्दों को तो कुछ सुझाई नहीं पड़ता? लेकिन औरतों की आंख बचाना कठिन है। पलक मारते ही वे दोष परख लेती हैं।'

उपेन्द्र ने कहा—'पर उसकी शादी तो किसी औरत से नहीं होगी, जो औरतों की आंख का भय किया जाये?'

'यह क्या बात है! धोखा देकर विवाह करा देने की इच्छा से अन्धी लड़की भी ब्याह दी जा सकती है, लेकिन पीछे?'

उपेन्द्र चुप रहा। वह कुछ सोच रहा था।

सुरबाला ने फिर कहा—'पिछली बार दुर्गा पूजा के समय हमारे यहां बक्सर में ठीक ऐसी ही बात हुई थी। बुआ और मां दोनों ने कह दिया कि ब्याह के पहले इन आलोचनाओं की आवशयकता नही। पीछे जमाई को समझा कर कह दिया जायेगा, सब ठीक हो जायेगा।'

उपेन्द्र ने कहा—'ठीक है।'

'ठीक है? नही, यह ठीक नही है। मै कहती हूं कि सास-ननद की चिन्ता न कर केवल जमाई की परवाह करने से ही काम नही चल सकता। शची का जो पति होगा, वह उसे अवश्य प्यार करेगा, लेकिन जरा-से दोष के लिए आरम्भ में ही यदि वह सास-ननद आदि की आंखों में खटक जायेगी, तो फिर किसी दिन सुख से घर-बार नही कर सकेगी, यह बात मेरे मन मे अच्छी प्रकार से जमी हुई है।'

उपेन्द्र ने कुछ देर चुप रह कर पूछा—'तो क्या तुम शची का ऐसे घर में विवाह करना चाहती हो जहां सास-ननद न हो?'

सुरबाला व्यग्र होकर बोली, 'नहीं, राम-राम! यह तो बहुत ही अशुभ बात है। मैं ऐसा क्यो चाहूंगी?'

उपेन्द्र ने ऊबकर कहा, 'तो फिर चाहती क्या हो? सास-ननद रहे, जान-सुनकर लंगड़ी-पंगु लड़की को घर लावें, प्यार करें, ऐसा हो जाये तो काम बहुत अच्छा हो। लेकिन तुम ही बतलाओ ऐसा मूर्ख कौन होगा, जो जान-बूझ कर अपने लड़के का किसी कानी-खोंडी लड़की से विवाह करायेगा?'

सुरबाला चुप रही; कुछ देर बाद धीरे से बोली, 'लेकिन तुम तो कहते थे, कि वर ठीक कर रखा है?'

उपेन्द्र ने कहा, 'हां।'

सुरबाला ने पूछा, 'उसे यह बात नहीं बताओगे?'

उपेन्द्र ने कहा,'बतलाने में भी कोई हानि नहीं है।

सुरबाला ने उत्कण्ठित होकर पूछा, 'लेकिन अन्त में कोई बखेड़ा खड़ा हो गया तो?'

उपेन्द्र ने कहा, 'नहीं होगा। कारण, दिवाकर तुम्हारी बहिन के दोषों के कारण उपेक्षा न कर सकेगा। तुम और दीदी भी शची को बुरी आँखों से न देखोगी।'

यह बात सुन कर सुरबाला स्तब्ध हो गई। कुछ देर तक चुप रहकर बोली, 'उनके साथ ब्याह?

उपेन्द्र ने कहा, 'हां।'

'लेकिन पिताजी तो स्वीकार नहीं करेंगे।'

'क्यों?'

'न उनके मां-बाप हैं, न घर-द्वार, कुछ भी तो नहीं है।'

उपेन्द्र ने संक्षेप में कहा, 'सब है, इसलिए कि मैं हूं।'

सुरबाला ने कहा, 'तब भी पिताजी स्वीकार नही करेंगे।'

उपेन्द्र ने जरा कड़क कर कहा, 'और तुम भी स्वीकार नही करोगी शायद वास्तविक बात यही है।'

सुरबाला मौन हो रही।

उपेन्द्र भी कुछ देर चुप रहे, फिर अचानक करवट बदल कर रूखे स्वर में बोले, 'अच्छा बहुत रात हो गई, अब सोओ।'

उस रात को सुरबाला बडी रात तक जागती रही। एकाएक एकबार जब उसे निश्चय हो गया कि पति निश्चित सो रहे हैं, तब उसकी दोनों आंखें गर्म आंसुओं से भर गई। स्वामी के असीम स्नेह मे उसे सन्देह नही था, लेकिन रोते-रोते वह यही बात सोचने लगी कि सात-आठ वर्षों के घनिष्ठ मिलन से भी उसने इस पुरूष की गहराई क्यों नही पाई? पहले-पहल उसने बहुत बार सोचा था कि उसके स्वामी कठोर स्वभाव के हैं। कब किस बात पर इन्हें क्रोध आ जाता है, इसका कोई निश्चय नहीं। लेकिन अन्त में बहुत पूछ-ताछ करके उसने इतना जान लिया कि उन्हे पूरी तरह से समझने की शाक्ति मुझमें किसी दिन हो या न हो, उनका कोई काम व्यर्थ और अनिश्चित प्रकृति के मनुष्यो का-सा नहीं है। खासकर वह जब-तब दुःखी हो जाती और कहती, 'भगवान् जब ऐसा अच्छा भाग्य दिया, तब उसी के अनुसार चलने की बुद्धि भी क्यों न दी?' आज भी वह मन-ही-मन इस बात की जितनी हो आलोचना कर भीतर-ही-भीतर इसका कारण ढूंढने ... अपना कोई दोष न पाकर वह उतनी ही दुःखी होने लगी। किसी प्रकार यह बात उसकी समझ में आई, कि बहिन के सम्बन्ध में बहिन की यह आशंका किस कारण से बुरी है?

बाहर जाड़े की सुनसान रात्रि फैली हुई थी और मानो उसको समान टुकड़ों में बांटने के लिए दूर पासरकारी कचहरी का घण्टा एक के बाद दूसरे के क्रम से बजने लगा।

6

दूसरे दिन दोपहर को जब महेश्वरी भोजन करने बैठी तब उपेन्द्रनाथ वही पहुंचे और पास ही बैठ गए। महेश्वरी ने उन्हें देख कर कहा, 'मंझली बहू, उपेन्द्र के लिए एक आसन तो लगा दो।'

उपेन्द्र ने कहा, 'आसन क्या होगा जीजी, तुमसे केवल एक बात पूछने आया हूं।'

सुनने के लिए महेश्वरी उसके मुंह की ओर देखने लगी।

उपेन्द्रनाथ ने कहा—'परसों ससुर जी की शची के लिए वर ढूंढने के विषय में एक आवश्यक चिट्ठी आई है। तुम उनके यहां की जितनी बातें जानती हो उतनी और कोई नहीं जानता। इसीलिए तुमसे पूछ रहा हूं, कि क्या शची के शरीर में कोई दोष भी है?'

महेश्वरी के स्वामी ने बीमार हो जाने पर अन्तिम चार-पांच वर्षों तक बक्सर में ही प्रैक्टिस की थी। वहां रहते समय उन्होंने सुरबाला के पिता का ही एक मकान किराये पर लिया था। वह उनके घर के बहुत ही पास था; इसीलिए दोनों परिवारों ने ठीक किया था। महेश्वरी कुछ समय तक उपेन्द्र की ओर देखने के बाद बोली—'पशु क्या कहती है?'

'वह कहती है—शची लंगड़ी है।'

महेश्वरी ने जरा हंसकर कहा— 'लंगड़ी नहीं है। बचपन में उसके पैर में चीरा लगा था, इससे बाएं पैर पर जरा जोर लगाकर चलती है। मैं समझती हूं, इतने दिन हो गए, अब बिलकुल अच्छी हो गई होगी।'

'और तो कोई ऐब नहीं है?'

'नहीं।'

'सुनता हूं, ससुरजी के पास बड़ा माल है—तुम क्या समझती हो जीजी?

'मेरा भी यही विचार है।'

तब उपेन्द्र और कुछ पास खिसकर आ गया और अपने कण्ठ का स्वर कुछ धीमा बनाकर बोला—'तो मैं तुमको एक बात कहता हूं बहिन। शची और उसकी बहिन दोनों ही जब भविष्य में समस्त सम्पति की स्वामिनी होंगी तब इतनी बड़ी सम्पति हाथ से निकल जाने देना तो बुद्धिमानी का काम नहीं है।'

महेश्वरी ने हंसकर कहा, 'बात तो तुम्हारी ठीक ही है; लेकिन ऐसा उपाय ही क्या है सुनूं तो?' इतना कहकर वह हंस पड़ी।

उपेन्द्र बोला 'हंसने की बात नही है। पशु के चिढ़ने के लिए यह बात मैंने नहीं कही। 'क्या कहती हो बहिन?'

महेश्वरी मुंह झुकाए किसी चिन्ता में रहने का स्वांग दिखाकर भात परोस रही थी। मुंह ऊपर उठाकर हंसकर बोली, 'अच्छी बात तो है?'

उपेन्द्र ने कहा, 'केवल अच्छी बात कह देने से तो काम नहीं चलेगा बहिन, यह काम तुम्हारा ही है। पशु की शादी तुमने ही की थी, अब वह कहती है, उसके समान सौभाग्यवती सभी हों। मेरा विश्वास है, तुम जिसमें हाथ डालोगी, उसमें ही सोना फलेगा।'

महेश्वरी ने कहा, 'लेकिन शची में जरा-सा दोष तो है?'

उपेन्द्र ने कहा, 'है, इसीलिए तुमसे हाथ डालने के लिए कह रहा हूं। तुम्हारे पुण्य से सब दोष मिट जायेंगे।'

उपेन्द्र की बातों से महेश्वरी का हृदय पसीजता जा रहा था, उन्होंने कहा—'लेकिन उपेंद्र दिवाकर का स्वभाव मेरी समझ में नहीं आता। घर में रहते हुए भी वह मानो घर छोड़ने वाला पराया है। इसी कारण भय लगता है, पीछे कहीं इतनी-सी त्रुटि को लेकर

अन्त में एक भारी अशान्ति न खड़ी हो जाए। फिर एक बात और है, क्या दिवाकर मान जायेगा?'

'मानेगा क्यों नहीं बहिन! इस संसार में उसका अपना तो कोई भी नहीं है। यह सुविधा छोड़ देना केवल मूर्खता ही नहीं, पाप भी है।'

महेश्वरी हंसकर बोली—'यह क्या तेरा वकालत का पेशा है उपेन कि केवल मुवक्किल के रूपयों पर दृष्टि रखकर और सब ओर से मुंह फेर लोगे, इच्छा-अनिच्छा भी तो कुछ है।'

उपेन्द्र बोला, 'है तो रहने दो, दीदी। जो लोग इसी को लेकर उलटफेर करना चाहते हैं वे भले ही करें, लेकिन हम लोग उस दल में नहीं जाना चाहते। और शची जैसी लड़की जिसे पसन्द न हो, उसका विवाह करना चल ही नहीं सकता।'

उपेन्द्र की उत्सुकता देखकर महेश्वरी ने कहा, 'शायद वह आज कालेज नहीं गया! एक बार उससे पूछकर देख लो न, उसकी क्या राय है? शायद वह अपने कमरे में ही है।'

'हैं! कौन है रे वहां? भूतो है? एक बार दिवाकर बाबू को बुला दे, कहना कि जीजी बुला रही हैं।'

थोड़ी देर बाद ही दिवाकर के कमरे में घुसते ही उपेन्द्र बोल उठे—'तेरी शादी की बात मैंने तय कर दी है दिवा। परीक्षा के बाद ही तिथि निश्चित की जाएगी। बहन, भट्टाचार्य जी से पत्रा देखने को कह देना, और बाबू जी से पूछ कर एक बार उनकी राय भी जान लेना। शची के साथ ब्याह होगा सुनकर बहुत प्रसन्न होंगे। तू मुंह बनाये क्या देख रहा है? तेरी छोटी भाभी की छोटी बहिन शची—उसको तूने देखा नही है? देखा नही तो शची को देखने की आवश्यकता भी नही है। अभी थोड़ी ही देर पहले मैं बहिन से कह रहा था कि वैसी लड़की को जो पसन्द नही करता, उसको शादी ही नही करनी चाहिए। बचपन मे बाएं पैर में घाव की चीर-फाड़ हुई थी, इसीलिए उस पैर को जरा खीचकर चलती थी। उस बात पर अभी-अभी मैं बहिन से कहने जा रहा था कि जरा-सा दोष, थोड़ी-सी त्रुटि, यदि आत्मीय होकर दिवाकर क्षमा नही कर सकता तो, दूसरा कोई कैसे करेगा? इसके अतिरिक्त छोटी-मोटी बात को लेकर शोर मचाना तो उच्च शिक्षा का फल नहीं है, वह तो नीचता है। निर्दोष, त्रुटिहीन इस संसार में कोई चीज मिलती ही नहीं, ऐसी चीज की आशा करके बैठे रहना और पागलपन एक ही बात है, दिवा इसको समझता है। और तुमसे कहना ही क्या है बहिन, दिवाकर के साथ शादी होगी, सुन लेने पर सुरबाला के आनन्द की सीमा ही नही रहेगी। ओह! शायद तेरा समय नष्ट हो रहा है? तो इस समय तू जा, मैं भी ससुर जी को पत्र लिखता हूं।'

इतना कहकर उपेन्द्र उठे और महेश्वरी को संकेत करके चले गए।

महेश्वरी भात चलाने लगी और दिवाकर स्तब्ध होकर खड़ा रहा। बड़ा तूफान जैसे खर-पतवार, धूल-बालू सब उड़ाकर ले जाता है, उपेन्द्र वैसे ही विघ्न-बाधा, आपत्ति-अस्वीकृति को अपनी इच्छा के अनुसार कर लेते गए। मौन होकर दोनों यही सोचने लगे। बहुत देर तक भी जब कोई बात नही उठी, तब दिवाकर बोला, 'यह सब क्या है जीजी?'

दिवाकर ने पूछा, 'इतनी जल्दी क्यों ?'

महेश्वरी ने कहा, शची के विवाह की आयु बीत रही है और अगले वर्ष बिल्कुल ही लगन नहीं है।'

इसके बाद दिवाकर के मन में कोई बात नहीं आई, किन्तु उसको याद आया कि उपेन्द्र इस समय पत्र लिख रहे हैं और थोड़ी देर बाद ही इस आवश्यक पत्र को लेकर नौकर डाकखाने दौड़ जाएगा। वह किसी दिन भी विवाह न करेगा यही उसके जीवन का संकल्प रहा है। यह संकल्प इस प्रकार एकाएक एक खिचाव से उड़ता चला जा रहा है। यह स्मरण आते ही वह घबरा कर उपेन्द्र के कमरे की ओर चला गया। कमरे में घुसते ही सुरबाला अपने अप्रसन्न मुंह पर सिर का कपड़ा खींचकर अलमारी के किनारे हट गई। उपेन्द्र मेज के पास कागज-कलम लेकर बैठे हुए थे। मुंह उठाकर उन्होंने पूछा, 'फिर क्या ?' दिवाकर जो कुछ कहने आया था, उसको अच्छी प्रकार सोचने-विचारने का समय भी उसे नहीं मिला, और उसे आंचल का एक छोर अलमारी के एक ओर दिखाई देने लगा, वह चुपचाप खड़ा रहा।

उपेन्द्र ने पूछा, 'क्या है रे ?'

दिवाकर ने कुछ न कहकर अलमारी की ओर दृष्टि फेरी।

उपेन्द्र ने उस संकेत को देखते हुए भी नहीं देखा, बोले, 'मेरे पास समय नहीं है दिवा...'

दिवाकर ने पास आकर कहा, 'इतनी शीघ्रता किसलिए ?'

उपेन्द्र बोले, 'नहीं, शीघ्रता तो नहीं है। अब भी जैसे ही हो अनुमानतः दो महीने का समय है, तेरी परीक्षा हो जाने पर...।'

'तो फिर आज ही पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है ? कुछ दिन बाद लिखने से भी तो काम चल सकता है।'

'चल सकता है। लेकिन कुछ दिन बाद लिखने से क्या सुविधा कोई विशेष होगी ?

दिवाकर ने धीरे से कहा, 'सोच-विचार कर देख लेना उचित है।'

उपेन्द्र ने कहा, 'उचित तो है ही ! तुम ब्याह की चिन्ता पर सोच-विचार करो, तुम्हारी परीक्षा की चिन्ता मैं करूं...।'

'लेकिन ऐसा उत्तरदायित्व ग्रहण करने के पहले...।'

'विद्वान व्यक्ति की भांति कुछ कहना आवश्यक है। अच्छा, तुम कुर्सी पर बैठ जाओ। सोच-विचार करके क्या कहना चाहते हो, मैं भी तो सुनूं ?'

दिवाकर चुप हो रहा।

उपेन्द्र ने कहा—'देखो दिवाकर कोई बात क्यों न ली जाय, अन्त तक सोच-विचार करना मनुष्य की शक्ति में नहीं है। कोई कितने बड़े विद्वान् पण्डित क्यों न हों, अन्तिम फल भगवान के हाथ से ही लेना पड़ता है। फिर भी जो कुछ सोच-विचार करके देख लिया जा सकता है उसके लिए तो आधा घण्टा से अधिक समय नहीं लगता, तुम कुछ दिनों का समय चाहते हो न ?'

दिवाकर बोला, 'सभी क्या इतना शीघ्र सोच-विचार कर सकते हैं ?'

'कर सकते हैं, लेकिन यह स्मरण रखने की आवश्यकता है, इधर-उधर की फैली हुई

चिन्ताओं का अन्त भी नहीं है और उसकी मीमांसा भी नहीं होती। दो-चार दिनों में ही क्या होगा, दो-चार वर्षों में भी निश्चय नहीं होता। फिर भी, इस सम्बन्ध में मोटे तौर से जो कुछ लोग सोच-विचार करके देखते हैं, वह यही है कि प्रतिपालन कर सकूंगा या नहीं। लेकिन शची से ब्याह कर लेने पर यह चिन्ता तो तुमको किसी दिन भी नहीं करनी पड़ेगी। दूसरी बात है इच्छा-अनिच्छा की, क्या तू यही बात सोच रहा है?'

शची की सुन्दरता का संकेत होने से दिवाकर को बहुत ही लज्जा मालूम हुई। वह बोल उठा—'नहीं, बिल्कुल नहीं।

"तब तो ठीक ही हुआ। क्योंकि यह बात कितनी ही अन्तःसार शून्य क्यों न हो, बाहरी आडम्बर तो है ही। पहले ही सुन्दरता की जो बात आ जाती है, वह मनुष्य के भीतर और बाहर, ऐसा जादू लगा देती है कि उसकी अच्छाई-बुराई का अत्यन्त सावधानी से निर्णय करना ही मुख्य वस्तु हो जाती है। वास्तव में वह तो कुछ भी नहीं। जिस वस्तु को न पाकर लोग सारा जीवन हाय-हाय करते हैं, वह आड़ में ही रह जाती है। पसन्द करने की जो सारी सामग्री है, उस वस्तु को प्राप्त न करने से संसार असफल हो जाता है, उसके ऊपर तो जोर नहीं चल सकता, इसलिए बिना परीक्षा के ही, बिना विचार के ही भगवान की दोहाई देकर लोग ग्रहण करते हैं, और जो कुछ भी नहीं है, दो-चार दिनों में ही जो वस्तु नष्ट हो सकती है, नेत्र उठाकर देखने से ही जिनके दोष-गुण पकड़े जा सकते हैं, उसकी परीक्षा का फिर कोई अन्त नहीं रहता। दिवाकर साढ़े पन्द्रह आने की ओर से यदि आंखें बन्द कर सकते हो, तो शेष दो पैसे के लिए गुरूजनों का मूर्ख बनकर विद्रोह मत करो। वरन मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारा भविष्य उज्ज्वलतर से उज्जवलम हो। किसी दिन इस बात को मत भूलना कि सुन्दरता ही मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है, या केवल सुन्दरता की चर्चा करना ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।'

दिवाकर सिर झुकाकर चुप हो रहा। उपेन्द्र भी बड़ी देर तक चुप रहकर अन्त में बोले—'तो अब तू यहां से चला जा।'

दिवाकर ने सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा—'मेरी रूचि नहीं है छोटे भैया, मुझे क्षमा करो। बड़े आदमी की लड़की...'

इस प्रकार के उत्तर ने पल भर के लिए उपेन्द्र को अभिभूत कर दिया। वे अल्पभाषी दिवाकर की बातों का गुरूत्व समझते थे। लेकिन किसी विषय में असफल होना भी उनका स्वभाव नहीं है। सामने के कागज कलम को एक ओर हटाकर बोले—'रूचि नहीं! वह भी नहीं रह सकती है, लेकिन बड़े आदमी की लड़की का दोष क्या है?'

दिवाकर ने कहा—'दोष नहीं है, लेकिन मैं दरिद्र हूं।'

उपेन्द्र ने कहा—'इसका अर्थ तो यह है कि गरीब के घर की लड़की तुम्हारा जैसा सम्मान या भक्ति करेगी, धनवान की लड़की वैसा न करेगी। लेकिन में पूछता हूं, स्त्री से सम्मान या भक्ति पाने की कितनी धारणा तुमको है? यदि हठ पकड़ लोगे कि ब्याह करोगे ही नहीं, तो वह दूसरी बात है, लेकिन दोष का भार दूसरे के कंधे पर रखकर अपनी गरीबी का प्रत्युत्तर करना मत चाहो। पुराण-इतिहास में तो पढ़ चुके हो। उनमें सीता, सावित्री प्रभृति साध्वी स्त्रियों का जो उल्लेख है, वे राजा-महाराजा के घर की लड़कियां होते हुए भी किसी दरिद्र घर की लड़की की अपेक्षा गुणों में कम नहीं थीं। बड़े लोगों

के घरों की लड़कियों के विरूद्ध एक कहावत प्रचलित है, इसीलिए उसको बिना विचार के ही मान लेना पड़ेगा; इसका कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता।'

दिवाकर के अलावा एक और श्रोता अत्यन्त ध्यान लगाकर, ओट में रहकर सुन रही थी। उसके आंचल के छोर पर दृष्टि पड़ने के साथ ही उपेन्द्र बोल उठे—'बड़े आदमी के घर की एक और लड़की इस मकान में ही है, इसका आधा रूप-गुण लेकर भी यदि शची आ जाएगी, तो किसी भी पति को अपना सौभाग्य ही मान लेना चाहिए।'

कुछ देर चुप रहकर वे फिर बोले—'रूचि नहीं है। तूने कहा था!'

उसी समय अलमारी के पीछे से चूड़ियों की आवाज सुनकर चकित होकर दिवाकर उठ खड़ा हुआ। सुरबाला के पास जाकर बोला—'भाभी, तुम कहो तो मैं छोटे भैया को पत्र लिखने को कह दूं।'

सुरबाला ध्यान से पति की बातें सुन रही थी। एक अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति की लहर उसकी सब इच्छाओं, सब कामनाओं और स्वतन्त्रताओं को बहाकर पति की इच्छाओं के चरणों के नीचे आत्मसमर्पण करती जा रही थी। उसने कुछ भी निश्चय नहीं किया था, लेकिन आंचल से नेत्र पोंछकर पति को लक्ष्य करके एकाग्र मन से कहा—'वे झूठ कभी नहीं बोलते।'

दिवाकर ने कहा—'तुम जो अच्छा समझो। वही करो। मेरा समय नष्ट हो रहा है, मैं जा रहा हूं।' इतना कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उसके चले जाने पर सामने की आरामकुर्सी पर आकर सुरबाला बैठ गई।

दोनों सजल नेत्रों को पति के मुंह पर रखकर बोली—'तुम मुझे क्षमा करो। मैंने गलत समझ लिया था, तुम जो कुछ करना चाहते हो उससे शची की भलाई ही होगी।'

उपेन्द्र ने पत्र समाप्त करते हुए हंसकर कहा—'अच्छा!'

उसके बाद दिवाकर केवल अपने विवाह की बात सोचने लगा। शची कैसी है, क्या करती है, क्या सोचती है, क्या पढ़ती है, उसके साथ विवाह होने से कैसा व्यवहार करेगी, यही सब। रात के समय पढ़ने-लिखने में बहुत-सी बाधाएं पड़ने लगीं। आज उसका मन बेचैन हो उठा। किसी काम में मन न लगा।

परीक्षा के भय ने चाबुक की तरह जितनी बार उसको वापस लाकर पढ़ने में नियुक्त किया, उतनी बार ही वह उससे भागकर और दूसरी ओर स्वप्नों की रचना करने लगा। बहुत देर तक इस विद्रोही मन के पीछे-पीछे दौड़-धूप करके कुछ भी न पा सकने पर दिवाकर अनुमान करने लगा कि उसका समय व्यर्थ नष्ट होता जा रहा है। लेकिन क्या ही अनोखा परिवर्तन था। किस चीज के नशे ने उसको एकाएक ऐसा मस्त बना दिया। उसका कारण ढूंढ़े जाने पर जो बात उसे याद पड़ गई, अत्यन्त लज्जा के साथ दिवाकर ने उसका प्रतिवाद करके दृढ़ भाव से यही बात कही कि इसमें मेरी इच्छा नहीं है, अत्यन्त घृणा और अरूचि है।

इतना कहकर उसने दुगने आग्रह के साथ ऊंचे स्वर से पढ़ना शुरू कर दिया। लेकिन आज मन को संयम में रखना कठिन हो गया। जिस खेल के बीच से चला आ रहा है, जिस आकाश-कुसुम की आधी माला गुंथकर फेंक रखी है और बेबसी में पाठ याद कर रहा है, उसको समाप्त करने का सुअवसर वह प्रतिक्षण खोजता हुआ घूमने लगा। कहीं

भी वह स्थिर न रह सका, कुछ ठीक प्रकार से हृदयंगम न कर सका, केवल आश्चर्य भरी प्रसन्नता से स्वप्नद्रष्टा की भांति स्तब्ध होकर बैठ गया।

उसने पुस्तक में जो नर-नारियों के विषय में हाव-भाव पढ़े थे, उनके अधिकांश भाव उसके लिए अस्पष्ट थे, ठीक समझ में न आते थे, सब वे ही बातें एक-एक कर स्मरण होने लगीं और उनकी सुस्पष्टता और मधुरता ने उसे मोहित कर डाला। इसी प्रकार कल्पना-सूत्र के सहारे वह कब अपने स्वतन्त्र विचार की सीमा पार गया, कब सब नर-नारियों के सुख-दु:ख के इतिहास में मग्न होकर पढ़े काव्यों और साहित्य की आलोचना करता हुआ सो गया, इसका उसे कुछ पता न था।

7

विपिन के निमन्त्रण से लौटने के दूसरे दिन प्यास से सूखा कण्ठ लेकर सतीशचन्द्र की जब आँखें खुलीं, तब दस बजे थे। कमरे का दरवाजा उस समय भी बन्द था। आज सवेरे से ही आकाश से सूर्य की तीव्र किरणें अग्नि बरसा रही थी। उस तीव्र धूप से सभी खिड़की-दरवाजे गरम हो गए थे और वह बन्द कमरा किस प्रकार तप रहा था, इसका पता स्वयं सतीश के न होने पर भी उसका शरीर इसका प्रमाण दे रहा था। सारा बिस्तर पसीने से तर हो गया था और सारी अन्त:इन्द्रियां प्यास से व्याकुल होकर हाहाकार मचा रही थीं। देह और मन की ऐसी विचित्र अवस्था लिए हुए सतीशचन्द्र सचेत हो उठ बैठा और व्यस्त होकर सिर की ओर का जंगला खोलते ही कड़ाके की धूप की लपटें उसके मुंह और शरीर पर पड़ीं और पल भर में बदन को भस्म करने वाले क्रोधित शिव के तृतीय नेत्र से निकलने वाली प्रचण्ड अग्निराशि की भांति जला गई।

सारी रात ऊधम मचाकर दस बजे नींद टूटने की ग्लानि को पीकर सतीश 'बिहारी' करके चिल्लाने लगा। बिहारी दौड़ कर आया।

सतीश बोला—'जा जल्दी से एक गिलास जल तो ला !

बिहारी ने पूछा—'तम्बाकू नहीं ?'

'नहीं, जल ला।'

'नहाइयेगा नहीं ?'

'अभी नहीं, तू पहले जल ला।'

बिहारी फिर भी नहीं गया, बोला—'सन्ध्या-वन्दन...

सन्ध्या के नाम से सतीश जल उठा। डांटकर बोला,—'पाजी कहीं का, मुझे इन बातों से क्या सरोकार? जा पानी ला।' डांटे जाने पर बिहारी नीचे जल लाने चला गया। रसोई-घर के बरामदे में बैठकर सावित्री सुपारी काट रही थी, मुस्कराकर पूछा—'सतीश बाबू तम्बाकू मांगते हैं ?'

बिहारी ने मुंह बनाकर कहा—'नही, पानी मांगते हैं।'

'न स्नान किया, न सन्ध्या-वन्दन— पानी क्या होगा ?'

बिहारी ने झुझंला कर कहा—'मुझे क्या मालूम ? आज्ञा हुई 'पानी लाओ', ले जा रहा हूं।'

सावित्री सुपारी-सरौता रखकर उठ खड़ी हुई, बोली—'लाओ, मैं ही ले जाऊं । तुम थोड़ी-सी बर्फ ले आओ ।'

बिहारी पैसे लेकर बर्फ लेने चला गया ।

सावित्री ने ऊपर जाकर कहा—'जाइए स्नान कर आइए, मैं तब तक सन्ध्या के लिए चौका लगा रखती हूं ।

सतीश ने मन-ही-मन झुंझलाकर कहा—'बिहारी कहां गया ?'

सावित्री ने हंसी रोककर कहा—'वह बर्फ लेने गया है । बाबू साहब, अपराध करके दण्ड भुगतना चाहिए । इससे प्रायश्चित हो जाता है । आप सन्ध्या-वन्दन के बिना क्या किसी दिन जल पीते हैं, जो आज जल के लिए इतना हल्ला मचा रहे हैं ? जाइए, देर मत कीजिए ।'

सावित्री की बातों का प्रतिवाद करना व्यर्थ समझकर सतीश उठ खड़ा हुआ और तौलिया कन्धे पर डालकर स्नान करने चला गया । भोजन के बाद सतीश फिर एक बार सोने की तैयारी में था । इतने ही में सावित्री आ पहुंची । सतीश इस प्रकार दीवार की ओर मुंह फेरकर सो गया, मानो उसे देखा ही नहीं । सावित्री ने मन-ही-मन हंसकर कहां—'जरा यह सुनने आई हूं, कि रात की बात बाबू को याद है या नहीं ?'

सतीश ने कुछ उत्तर नहीं दिया ।

सावित्री ने कहा—'अच्छा नींद टूटने पर कृपा करके एक बार बुला लीजिएगा । याद करा दूंगी ।' यह कह, किवाड़ बन्द कर चली गई । सतीश को पिछली रात्रि की सारी घटनाएं याद हों, यह सम्भव नहीं ।

विपिन बाबू के जलसे से वह कब, कैसे और किसके साथ आया था, आकर क्या किया था, ये सारी बातें उसके मन से विश्रृंखल और धुंधली हो गई थी । यह नहीं, कि अस्पष्टता को स्पष्ट करने की उसकी बिल्कुल ही इच्छा न थी, बल्कि एक अनिश्चित, एक उद्देश्यहीन लज्जा का भय उसको किसी प्रकार इस ओर आगे पैर बढ़ाने नहीं देता था । पर शाम को जो काण्ड उसने किया था, उसे वह भूल न सका । वही अब तक उसकी धुंधली स्मृति के मेघाच्छन्न आकाश में शुक्र की भांति चमक रहा था । परन्तु सावित्री ने जब उंगली के संकेत से दिखा दिया कि उसकी अपेक्षा अधिक दुःखप्रद ग्रह बादलों की आड़ में छिपे हुए हैं, तब तो उसकी आंखों पर से नींद उसी प्रकार लुप्त हो गई जिस प्रकार मरूभूमि से जल धारा । कल शाम को और कोई उपाय न सूझने पर उसने झट से दीपक बुझा दिया था, इसका फल क्या होगा, इस सम्बन्ध में मन-ही-मन वह अत्यन्त चिन्तित था । फिर भी उस घटना में नीयत की कोई खराबी नही थी । यह एक बुरी सायत थी यह समझकर वह अपने मन को संतोष दे रहा था और दोष न करने में सत्य में जो बल छिपा रहता है, वही बल उसके चिन्ताकुल चित्त को आश्रय दे रहा था । लेकिन सावित्री इस समय जो बात कह गई, जिस अन्धकार में मार्ग-निर्देशन कर गई, उसमें प्रवेश करने का साहस कहां ? उसे मतवाला होने की अनभिज्ञता अवश्य थी, लेकिन अचेत होकर गिर पड़ने की अभिज्ञता कहां से लाता ? वह कैसे अनुमान करे कि उसने क्या किया था, क्या नहीं, कितने ही मतवालों को ऊधम मचाते उसने अपनी आंखों से देखा है । अब अपनी बार किस काम को किस साहस से असंगत बताकर टाल देगा । इससे उसके आगे

सम्भव-असम्भव की समस्या जितनी ही कठोर होने लगी, उतना ही उसका दु:खी मन सम्भव-असम्भव के बीच में एक लकीर खीच देने के लिए उछल-कूद मचाने लगा। पुन: उसके मन में आग भभक उठी, वह उठ बैठा और जीवन में शराब न छूनें की फिर एक बार प्रतिज्ञा करके उसने प्रायश्चित किया। उसने खिड़की खोलकर पुकारा—'बिहारी !'

बिहारी राखाल बाबू के बिस्तर धूप में डाल रहा था, पुकार सुनकर आ उपस्थित हुआ। सतीश ने कहा—'जा, तू अपना काम कर, सावित्री को एक गिलास जल लाने को कह दे।'

बिहारी ने कहा—'मैं ही लाता हूं, वह इस समय पूजा कर रही है।'

सतीश ने चकित होकर पूछा—'पूजा ?'

'जी हां, वह तो नित्य करती है। एकादशी के रोज जल की बूंद तक नही लेती। हमलोग कितना ही कहते हैं, लेकिन वह कभी न तो मछली खाती है और न कभी रात को भात ही खाती है। आखिर वह भले घर की ही लड़की है।'

सतीश ने और आश्चर्य में आकर पूछा—'भले घर की, क्या मतलब ?

'हां, बाबू साहब, भले घर की है।' कहकर बिहारी जल लाने जा रहा था कि सतीश ने बुलाकर पूछा—'सावित्री रात को भात नही खाती; तो क्या खाती है ?'

'क्या खाएगी, जलपान के योग्य कुछ बचा रहता है, तो वही खाकर पानी ले लेती है, नही तो यो ही रह जाती है।'

बिहारी ने कहा—'महाराज जी जानते है, मै जानता हू और कोई नही जानता। उसने कहने को मना कर दिया है।'

सतीश ने कहा—'अच्छा जा, जल ला।'

बिहारी एक ही दो कदम आगे बढ़ा कि सतीश ने फिर पुकारा—'सुनो बिहारी !'

'जी हां !'

'तूने कैसे जाना कि वह भले घर की है ?'

'बाबू साहब, कैसे क्या जाना, मैं अच्छी तरह जानता हूं। बहुत ही अच्छे कुल की लड़की है, केवल समय के फेर से...'

'अच्छा-अच्छा, जा जल ला।'

बिहारी के चले जाने पर सतीश बिस्तर पर औंधे मुंह पड़ा रहा। सावित्री को साधारण दासियो की श्रेणी में समझने में उसके हृदय पर चोट-सी लगती थी। उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो सावित्री को निम्न श्रेणी की स्त्री मानने के लिए उसका मन गुप्त लांछन और हीनता के बोझ से अपना सिर आप ही झुका लेता है। परन्तु क्यों ? यह आज तक सतीश जान न सका था। आज बिहारी के इस जरा से परिचय से केवल उसे ही आनन्द और आश्चर्य न हुआ, बल्कि उसका सम्पूर्ण हृदय मानो किसी अपरिचित व्यक्ति के पसीने से भीगे बाहुपाश से सहसा मुक्त होकर पवित्र हो गया। उसने बिहारी की बात सोलह आने सत्य मानने मे जरा भी देर नही की।

जल लाने में देर होने लगी। किस कारण से देर हो रही होगी, यह सोचकर सतीश कुछ देर तक चुप रहा। फिर भी बिहारी का पता नही। प्यास उसे सताने लगी। उसने फिर बिहारी को एक बार बुलाने के विचार से उठते ही देखा कि जल का गिलास लिए

सावित्री आ रही है। इस आचारपरायणा हतभागिनी को आज उसने नई दृष्टि से देखा और उस पल भर की दृष्टि से ही उसका हृदय करूणा और श्रद्धा से भर गया। पहले जो बात बोलने से उसका मुंह रूकता था, आज नहीं रूका। उसने हाथ से गिलास ले, सब जल पीकर उसे खाली कर दिया। गिलास धरती पर रखकर बोला—'बहुत कुछ कहना है।'

सावित्री चुपचाप देखती रही।

सतीश ने कहा—'पहली बात है, मुझे क्षमा करना होगा।'

सावित्री ने शान्त कण्ठ से पूछा—' दूसरी बात?'

सतीश न कहा—'मैं कल कब और कैसे आया, बतलाना होगा।'

सावित्री ने उत्तर दिया—'रात को तीसरे पहर गाड़ी से आये।'

'उसके बाद?'

'आप तो सड़क पर ही सोने का प्रबन्ध कर रहे थे।'

'अच्छा नहीं किया था। उठाकर कौन लाया?'

'मैं।'

'और कौन था? इतना बड़ा जड़ पदार्थ ऊपर कैसे लाया गया?'

सावित्री ने हंस कर कहा—'घबराइये नहीं, घर में किसी को कुछ भी मालूम नहीं हो सका है।'

सतीश ने दम लेकर कहा, 'जान में जान आई। लेकिन तुम्हारे साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार तो नहीं किया?'

'नहीं।'

सतीश ने बहुत ही प्रसन्न होकर कहा—'हां, तुम कौन-सी' बात याद दिलाना चाहती थीं?'

'आपकी प्रतिज्ञा—'शपथ'। आपने शपथ ली थी, कि अब कभी शराब न पीऊंगा।'

'मैंने शपथ की है? ऐसी दुर्बुद्धि मेरे मन में क्योंकर उत्पन्न हुई?'

'शायद मेरे कहने से हो!'

सतीश ने कण्ठ को विनम्र करके कहा, 'हां सावित्री! मुझे याद आ गया। तुम्हें छूकर सौगन्ध ली थी न?

सावित्री चुप ही रही।

सतीश ने कहा, 'यही होगा। लेकिन कल शाम की बात तुम्हें याद है न?'

इस बार सावित्री हंस पड़ी; सिर हिला कर बोली, 'है।'

'सम्भव है; लोगों को यह बात मालूम हो जाए। इसका क्या प्रयत्न करना चाहिए?'

सावित्री ने सहसा गम्भीर होकर कहा, 'यही कि आप या तो किसी दूसरे घर में या अपने घर चले जाइए।'

और तुम?'

सावित्री के चेहरे पर किसी प्रकार की उद्विग्नता का चिन्ह न था। वह सहज, शान्त भाव से बोली, 'मेरे लिए आप चिन्ता न करें। इस घर वाले रखें, अच्छा ही है, न रखें और कहीं काम' कर लूंगी। जहां मजदूरी करूंगी, वहीं दो रोटी पाऊंगी। और कुछ कहना

है ?'

सतीश का मन पर्वत की चोटी से एकदम नीचे गिर कर चूर-चूर हो गया। उसके यहां रहने न रहने में सावित्री का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है। इस विषय में वह पूर्णत: तटस्थ है। उसने सिर हिलाकर बतलाया कि उसे और कुछ कहना नहीं। कारण, सावित्री के इस निश्चित दो टूक उत्तर के बाद और कोई प्रश्न उसकी जीभ पर आया ही नहीं, यद्यपि पहले उसने न जाने कितनी ही बातें कहने के लिए सोच रखी थी। सावित्री गिलास लेकर चली गई। सतीश चुपचाप बैठा रहा।

हाय रे मनुष्य का मन ! यह काहे से बनता है, काहे से बिगड़ता, इसका कुछ पता नहीं चलता। यह किस हल्की-सी चोट से छटपटाने लगता है और प्रचण्ड चोट को भी हंसते हुए सह लेता है, इसका कोई हिसाब नहीं लगता और इसी मन को लेकर मनुष्य कितना अभिमान करता है ! जो मुटठी में नहीं किया जा सकता, जो पहचाना तक नहीं जा सकता, कैसे उसे अपना कहा जा सकता है और कैसे उसे लेकर निर्भय हो घर बसाया जा सकता है !

सावित्री को गये देर हो गई, तो भी सतीश ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। उसका हृदय ठीक दु:ख या शोक से नहीं, मानो एक प्रकार की ज्वाला से रह-रह कर जलने लगा। जिसे प्यार करूं वह यदि प्यार न करे, बदले में घृणा करे तो घृणा सही जा सकती है, परन्तु जिसके सम्बन्ध में यह विश्वास हो कि मुझे उसका प्रेम प्राप्त हो चुका है, वहां यदि ऐसी बात हो तो उसका सहना बड़ा ही कठिन हो जाता है। पहली परिस्थिति दु:खी कर देती है, और दूसरी व्यथा भी देती है और अपमान भी करती है। इस व्यथा का प्रतिकार नहीं है, इस अपमान की पुकार भी नहीं है। जिसके प्रेम की आशा नहीं करते, वह यदि प्रेम नहीं करता, तो इसमें कहना क्या है ? परन्तु जहां कहने का पूरा अवसर है, वहां किसी प्रतिकार के न होने और अपमान की नालिश का मौका न पाने के कारण ही लांछना इतनी अधिक चोट करती है। व्यथा का कारण ढूंढने पर भी जब उसका पता नहीं चलता तब वह भी असहनीय हो जाती है।

जो हो, सावित्री के इस निश्चिन्त और सहज कर्तव्य-निर्धारण ने केवल उसी के हृदय के मानचित्र को ही उद्‌घाटित नहीं किया, उसने सतीश के हृदय के चित्र को भी बाहर के प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया। इन दोनों चित्रों को देखकर वह स्तम्भित हो रहा। उसने निश्चित रूप से समझा था कि सावित्री उसे प्रेम करती है, वह नहीं करता। लेकिन आज उसे मालूम हुआ, कि बात बिल्कुल उल्टी है यानी वह प्रेम करता है, सावित्री नहीं करती। इस घृणित बात को स्वीकार करते केवल लज्जा से उसका सिर नीचा नहीं हुआ, बल्कि अपने मन की इस नीच प्रवृति से उसे अपने ऊपर घृणा भी उत्पन्न हो आई। निस्संदेह उसकी पिछली रात का कार्य लज्जाजनक था; उसके जीवन में ऐसी बहुतेरी रातों की बहुत-सी लज्जाएं इकट्ठी हो चुकी हैं, लेकिन इस नीचता की तुलना में वे सभी हल्की पड़ गई—फीकी जान पड़ीं।

इस घर में तो अब एक दिन भी रहना कठिन है। इस बात को वह किसी तरह भी स्वीकार न कर सकेगा कि यहां रहने न रहने के सम्बन्ध में वह बिलकुल उदासीन है। उसने यह कठोर प्रतिज्ञा कर डाली कि दु:ख के भारी बोझ से चाहे उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े

हो जाये, लेकिन वह किसी प्रकार इस नीचता को अपने मन में बढ़ावा देकर अपने आपको और भी गहरी खाई में न ढकेलेगा।

दिन ढलने लगा था, पर भीतर बैठे हुए सतीश को इसका होश न था। सहसा घर में रहने वालों के अपने-अपने काम से लौटने की आहट पाकर वह चौंक उठा। खिड़की से झांक कर उसने एक बार बाहर देखा और उठ खड़ा हुआ। झट एक कुरता पहन और चादर कन्धे पर डाल वह छिपकर चुपचाप बाहर चला गया। अभी हाथ-मुंह धोने का प्रस्ताव लेकर सावित्री आ पहुंचेगी और खाने के लिए हठ करने लगेगी। अब उसे जरा भी भूख न थी। लेकिन सावित्री किसी प्रकार न मानेगी,अनुरोध करेगी, न हुआ तो दबाव डालेगी, अन्त में दुःखी होकर चली जायेगी। प्रेम के इन मौखिक आडम्बरों से अपने जीवन में आज ही पहले पहल वह अपने को वास्तविक घृणा के साथ दूर हटा ले गया।

रास्ते में घूमते-फिरते समय संध्या से पहले दर्जी पाड़े की गली के मोड़ पर उसे पीछे से किसी परिचित कण्ठ की आवाज सुनाई दी—'कौन मोक्षदा?'

मोक्षदा बहुत दिन पहले सतीश के पश्चिम प्रदेश वाले घर में दासी का काम करती थी। छुट्टी लेकर कलकते आई थी। फिर जा न सकी थी। बोली—'हां बाबू मैं ही हूं। छोटे बाबू, आज मेरी एक चिट्ठी पढ़ दीजिएगा?'

सतीश ने हंसकर कहा, इतने बड़े शहर में तुझे और कोई चिट्ठी पढ़ने वाला न मिला? कहां है चिट्ठी ला पढ़ूं।'

दासी ने कहा, 'चिट्ठी मेरे घर पर है बाबू। किसी अनजान आदमी से पढ़ाने का साहस नहीं होता, न मालूम क्या लिखा हो। यों तो हमारे घर में ही एक लड़की है, वह लिखना-पढ़ना जानती है, लेकिन उसे भी आज दो दिन से नहीं देख पाती हूं। इतनी रात गये घर लौटती है कि समय ही नहीं रह जाता है।'

सतीश ने पूछा, 'तुम्हारा घर कितनी दूर है?'

दासी ने कहा, 'यही तो, यहां से थोड़ी ही दूर है। बड़ी सड़क के उस किनारे एक गली में। बाबू जी, आप अपना ठिकाना बतला दीजिए, कल मैं ही किसी को साथ लेकर आऊंगी और चिट्ठी पढ़ा लूंगी?'

सतीश ने 'अच्छा,' कहकर अपना शोभा-बाजार का ठिकाना बतला दिया और किधर से होकर वहां जाना पड़ता है, यह भी बता दिया। कुछ दूर जाने के बाद दासी ने अचानक एक स्थान पर ठहर कर कहा—'कहने का साहस तो नहीं होता', लेकिन बाबू एक बार आप पधारते, तो...मेरा घर यहां से दूर नहीं है।'

सतीश ने पल भर सोचने के बाद कहा—'अच्छा, चलो।' आज घर लौटने की बिलकुल इच्छा न थी। वह मन में यह विचार कर ही घर से निकला था, कि रात को देर तक इधर-उधर घूमता रहेगा, सावित्री के घर चली जाने पर वह लौटेगा। अतः सहज ही राजी हो गया। दो गलियां पार कर एक कच्चे दो तल्ले मकान के सामने आकर खड़ा हो गया।

'जरा ठहरिये' कहकर मोक्षदा भीतर गई और तनिक देर बाद मिट्टी के तेल की एक डिबिया हाथ में लिये लौट आई सतीश को अपने साथ ऊपर ले गई। ऊपर कोने वाले कमरे में दीवार पर दीपक जल रहा था। उस कमरे की ओर संकेत करके विनय सहित

बोली—'आप जरा बैठिये, मैं चिलम भर लाऊं।' भीतर जाकर इस छोटे से कमरे की सफाई देखकर सतीश के मन को शान्ति-सी मिली। एक ओर तख्ते पर धोये-मांजे पीतल-कांसे के बर्तन चमक रहे थे और उसकी बगल में एक छोटी अरगनी पर कुछ कपड़े करीने से टंगे हुए थे, दीवार में ब्रूकेट पर एक टाइमपीस घड़ी रखी हुई थी, जिसमें आठ बजे थे। सतीश ने चौखट के बाहर जूते खोल दिये और भीतर चौकी पर बिछे हुए दूध के समान सफेद बिछौने पर जाकर बैठ गया और कमरे के सामानों को देखने लगा। सबसे पहले उसकी दृष्टि एक छोटी-सी अलमारी पर पड़ी, उसमें कुछ किताबें सजाकर रखी हुई थीं। सतीश ने एक पुस्तक उठाई और पहला पन्ना उलटते ही देखा, अंग्रेजी अक्षरों में 'भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय' लिखा हुआ है। वह पुस्तक रखकर उसने और तीन-चार पुस्तकें एक-एक कर उठाई सब में एक ही नाम देख, पुस्तकों को ठीक-ठिकाने रख फिर आकर बिछौने पर बैठ गया।

मोक्षदा फरशीदार हुक्के पर तम्बाकू भर लाई। सतीश ने हाथ में हुक्का लेकर कहा—' तुम्हारा यह कमरा तो बहुत ही साफ-सुथरा है। जाने को जी नहीं चाहता।'

मोक्षदा ने मुस्कराकर कहा—'जाने की क्या आवश्यकता 'है? बैठिए। लेकिन बाबू, यह कमरा मेरा नहीं है, एक दूसरी औरत का है।'

सतीश ने पूछा—'वह कहां है?'

मोक्षदा ने कहा—'वह बाबू लोगों के एक 'बासे' में काम करती है। लौटने में प्राय: बेचारी को रात हो जाती है। इसी से घर की कुंजी मेरी पास रहती है। वह मुझे मौसी कहती है।'

सतीश ने कहा, 'खैर, लेकिन भुवन बाबू कब आयेंगे?'

दासी ने चौंक कर पूछा, 'भुवन बाबू कौन?'

'भुवनचन्द्र मुकर्जी को तुम नहीं पहचानती?'अचानक दासी ने भौंहें तानकर कहा, ओ हो हमारे मुकर्जी महाशय, नहीं-नहीं अब वे क्यों आने लगे?'

'क्यों, क्या उनकी मृत्यु हो चुकी है?'

मोक्षदा ने आँखों में अहंकार भर कर कहा, 'नहीं मृत्यु नहीं हुई, लेकिन हो जाती, तो ही अच्छा था। वे ब्राह्मण हैं, वर्ण में गुरू हैं, हम लोगों के मस्तक के मणि हैं। नारायण के समान हैं। उनके प्रति मैं कोई द्वेष रख कर कोप-भोजन बनना नहीं चाहती, उनकी चरण-रज माथे चढ़ाती हूं, लेकिन किसी दिन भेंट हो जाये, तो उनके मुंह पर गिन के तीन झाडू लगाऊं, तब मेरा नाम मोक्षदा है।'

सतीश हंस पड़ा, बोला, क्रोध में आकर ब्राह्मण को बिना भावभक्ति के न मार बैठना। भक्ति के साथ गिन-गिनकर मारोगी तो कुछ पाप न होगा। लेकिन वे हैं कौन?'

मोक्षदा तमक कर बोली, 'बाबू साहब, उसका परिचय क्या दूं? वह ब्राहाण नहीं, चमार है। इस बेचारी लड़की को यहां त्याग कर चला गया। भला यही अपने आदमी का काम है? राम! राम! गले में फांसी लगाकर मर मिटने को रस्सी भी न जुटी!'

सतीश ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, 'वे हैं कौन? उन्होंने क्या किया है?'

एकाएक दरवाजे के बाहर से उत्तर आया—'उन्हें आप नहीं पहचानते। उनकी बात सुनकर आपको क्या लाभ होगा?'

सतीश चौंक पड़ा।

मोक्षदा ने मुंह फिराकर कहा—'सब्बो, तू कब आई?'

सावित्री ने कमरे में पैर रखकर कहा—'चली ही आ रही हूं मौसी। बाबू साहब कहां मिल गये?'

मोक्षदा ने कहा—'ये ही हमारे छोटे बाबू हैं, सावित्री। आज दो दिन हुए, बहूजी के यहां से एक चिट्ठी आई है। इसी से मैंने कहा कि बाबू साहब दया करें घर चलकर पढ़ दें।'

सावित्री ने कहा, 'तो यह दया तुम्हारे कमरे में न करके मेरे कमरे में क्यों?'

मोक्षदा ने खिन्न होकर कहा, 'क्रोध क्यों करती है सब्बो, मेरी कोठरी तो भले-मानसों के बैठने के योग्य नहीं है, इसी से तेरे कमरे में बैठाया है। ये बहुत बड़े खानदानी रईस हैं। तुझे प्रसन्न होना चाहिये था न कि क्रुद्ध।'

सावित्री ने हंसकर कहा, 'अप्रसन्न क्यों होऊंगी मौसी, अप्रसन्नता की कोई बात नहीं है। लेकिन यों ही खाली-खाली दया की भीख लेना क्या ठीक है? बाबूजी को कुछ खिलाओ-पिलाओ भी। हां ब्राहाण देवता, कहिये कुछ खाने की इच्छा है?'

सतीश बहुत संकुचित होकर बैठा था, सिर हिलाकर बोला, 'नहीं।'

सावित्री के प्रश्न के विचित्र ढंग से मोक्षदा चकित हो गई, बोली, 'अरी सावित्री! यह बात करने का कौन-सा ढंग है?' बड़े आदमी के साथ क्या इसी प्रकार बातें की जाती हैं?'

सावित्री ने बरबस हंसी रोककर कहा, 'मैंने कोई बुरी बात तो कही नहीं मौसी! जाने दो, अब इच्छा की बात न पूछूंगी। लेकिन तुम जाकर दूकान से कुछ ले तो आओ। मैं तब तक स्थान ठीक किये देती हूं।

मोक्षदा अस्पष्ट स्वर मे बड़बड़ाती हुई शीघ्र ही वहां से चली गई। उसके जाने पर सावित्री ने कहा, 'कल रात से ही अनशन चल रहा है शाम को किस प्रकार भाग निकले, इसका भी पता नही चला। अब उठिये, सन्ध्या-बन्दन करके कुछ भोजन कीजिए। उस अरगनी पर धुला हुआ कपडा टंगा है, पहन कर मेरे साथ आइये, देर न कीजिये, उठिये।'

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, 'मुझे भूख नहीं है।'

सावित्री ने कहा, 'न सही, खाना अवश्य पड़ेगा। पहला कारणा यह है कि आपको भूख नहीं है, इस बात को मैं नहीं मानती, दूसरा कारण...'

सतीश ने बड़ी रूखाई के साथ कहा, 'दूसरा कारण कुछ नही, 'रहने दो, लेकिन पहला कारण बहुत ठीक है। तुम सभी बातो मे हठ और जबरदस्ती करती हो। तुम्हारी इस हठ के सामने किसी का कुछ बस नही चलता।'

सावित्री ने सिर उठाकर मुस्कराते हुए कहा, 'फिर व्यर्थ की कोशिश क्यों कर रहे हो?'

सतीश ने और भी गम्भीर होकर कहा, 'यह बात नही है सावित्री! आज मेरा प्रयत्न व्यर्थ न होगा। या तो अपना दूसरा कारण बताओ, नही तो मैं तुम्हें सच कहता हूं, मैं कुछ भी न खाऊंगा।'

सतीश का ढंग देखकर सावित्री हंसने लगी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली, 'मैं यह

सोच रही हूं कि आज आप क्यों आये ? आज मेरा जन्मदिन है इसी से आज आपने इस मजदूरिन का घर अपने चरणों की धूलि से पवित्र किया है, तो आपको यों ही बिना खाये न जाने दूंगी ।'इतना कहकर सावित्री रूक गई, पर हृदय की व्यथा उसके कण्ठस्वर के मुक्त मार्ग से बाहर आकर सहसा इस प्रकार खड़ी हो गई कि थोड़ी देर के लिए सतीश की सारी बोध-शक्ति जड़ हो रही । चतुर सावित्री ने पलभर में यह अनुभव कर बात के सिलसिले को साधारण हंसी का रूप देकर, मुस्कराकर कहा, 'भगवान ने आज सौभाग्य से मेरा अतिथि बनाकर आपको भेजा है, इसलिए आपको खाना भी पड़ेगा और दक्षिणा भी लेनी पड़ेगी । देखती हूं, आज आपकी जाति-पांति गई ।'

अब तक सतीश अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया था । उसने पूछा, 'क्या सचमुच ही आज तुम्हारा जन्मदिन है ?'

सावित्री बोली 'हां ।'

सतीश ने कहा, 'फिर जब ऐसे अवसर पर आज आ पहुंचा हूं, तब बाजारू मिठाई, पकवान या बासी पूरियां क्यों खाऊं ? दूसरे, मैं वह सब कभी खाता भी नहीं ।'

सावित्री यह बात जानती थी । मन-ही-मन लज्जित होकर बोली, 'आज तो रात हो गई ।'

सतीश ने कहा, 'तो हानि क्या है । आज घर लौटकर किसी की झाड़-झपट तो सुननी नही है, फिर अधिक रात होने से क्यों डरूं ? तुम चाहे जो कहो, सावित्री, मैं वह सब नही खाऊंगा ।'

'मैं तुमसे हार मानती हूं ।' कहकर सावित्री हंसकर उठ गई ।

सतीश बैठा था, लेट गया । इस छोटी कोठरी को और इस निर्मल सफेद शय्या को छोड़कर जाने को उसका जी नहीं चाहता था । पर आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठा बनाये रखकर बैठे रहने का कोई अच्छा उपाय भी उसे न सूझता था । अब इस भोजन बनाने की देरी की सम्भावना से उसको मानो किसी कर्तव्य के कठिन भार से मुक्ति मिल गई । वह गावतकिये को हाथो मे जोर से लपेट कर दीवार की ओर मुंह कर चुपचाप पड़ा रहा । जाते समय सावित्री बाहर से सॉकल चढ़ा गई थी । यह सतीश जान गया था । इसके अलावा आज की बातचीत में 'तुम' के व्यवहार का भी उसने लक्ष्य किया था । एकान्त कमरे में ये दोनों नई बातें जादूगर और उसकी छड़ी की भांति उसके मन में अपूर्व इन्द्रजाल की रचना करने लगी । आज ही दोपहर को प्रेम का सारा कूड़ा-करकट उसके मन से मानो भाटे के खिचाव में पडकर बाहर बह गया था; पर इस समय ज्वार के उल्टे प्रवाह में पड़कर फिर सब उसके हृदय में आ-आकर जमने लगा । आज ही दोपहर को आत्माभिमान की चोट की तीव्र ज्वाला ने उसकी आंखों में उंगली गड़ाकर उसके मन की नीच प्रवृति को दिखा दिया था, उसकी आंखें खोल दी थी; पर उस ज्वाला के शान्त होने के साथ-साथ खुली हुई आंखें आप-ही-आप मुंद गईं । अपने हृदय की इसी डांवा-डोल परिस्थिति की लहरो में जब वह डूबता और उतरता था, तभी उसे नीद की एक हल्की झपकी-सी आ गई—आंखें जरा लग-सी गई । सहसा दरवाजा खुलने के शब्द से जगकर पीठ फेर कर उसने देखा कि सावित्री मोक्षदा को लेकर कमरे में आ रही है । मोक्षदा ने चिट्ठी सतीश के हाथ में देकर कहा, 'देखिये तो बाबूजी, बहूजी ने क्या लिखा है ?'

सतीश ने जम्हाई लेते हुए कहा, 'अभी उनके लौटने में दो महीने की देर है।'

मोक्षदा ने पूछा, 'और कोई बात नहीं है?'

सतीश ने पत्र वापस करते हुए कहा—'नहीं और कोई मुख्य बात नहीं है।'

'बाबू साहब मेरे वेतन की बात..'

'नहीं, यह तो उसमें नहीं है।'

रूपये की बात नहीं है, सुनकर मोक्षदा मन-ही-मन बहुत झुंझलाई और चिट्ठी के लिए हाथ फैलाकर बोली—'हां, यह बात क्यों रहेगी? दुनिया भर की व्यर्थ की बातें लिख मारी हैं लाइये चिट्ठी! सावित्री, कल मुझे इसका उत्तर लिख देना। हां, बाबू को खिलाओगी कब? क्या अब भी खाने का समय नहीं हुआ?

सावित्री ने कहा—'ब्राहाण देवता बिना सन्ध्या-वन्दन किए क्या यों ही खा लेंगे?'

मोक्षदा झुंझलाई हुई तो थी ही और भी झुंझलाकर बोली—'वाह री तेरी बुद्धि! ये क्या काई पुरोहित जी हैं या पण्डा जी, जो पूजा-पाठ करेंगे?'

सतीश ने हंस कर कहा—'क्यों मोक्षदा, क्या तुम भूल गई, मैं तो सदा ही सन्ध्या-वन्दन किया करता हूं।'

मोक्षदा झेंपकर बोली—'हां-हां, ठीक मैं भूल रही थी।'

सावित्री की ओर देखकर बोली—'देख बेटी, जगह ठीक कर दे। तेरी कोठरी में वैसे तो सब ठीक ही है। उठ, अब देर न कर।' यों कहती हुई मोक्षदा वहां से चली गई।

घन्टे भर बाद सतीश के भोजन के समय कोठरी में कोई न था। अंधेरे बरामदे में से मोक्षदा यह देखकर एकदम जल उठी। रसोई घर में जाकर देखा, सावित्री चुपचाप बैठी है।

रूष्ट स्वर में बोली—'अरी सावित्री! क्या तेरी बुद्धि पर आज सचमुच पत्थर पड़ गया है? क्या किसी भिखमंगे को खिला रही है, कि जो मन में आया थाली मे डाल आई और आप यहां निश्चिन्त होकर बैठ रही?

सावित्री कुछ सोच रही थी, चौंककर बोली—'आवश्यकता होगी तो मांग लेंगे।

'ऐसी बुद्धि न होती, तो आज तेरी यह दशा ही क्यों होती! क्यों तुझे यो पराई नौकरी करनी पड़ती? तू तो स्वयं दो-चार नौकर-चाकर रखती।'

सावित्री ने हंसकर कहा—'क्यों मौसी, इसमें दोष क्या है? मैं परिश्रम करके खाती हूं, क्या यह भी लज्जा की बात है?

मोक्षदा जल उठी और बोली—'बेशक! कौन कहता है कि इसमें लज्जा की बात नहीं है? मेरी आयु में भले ही न हो, पर तेरी आयु में तो अवश्य है। खैर, अभी जा, बाबू को खाना दे आई है तो जा, बैठकर खिला। भाग्य फिरते देर नही लगती।'

सावित्री चलने को तैयार हुई, जरा ठिठककर बोली—'क्या बक रही हो मौसी, वे सुनते होंगे।'

मोक्षदा ने तत्काल ही स्वर को धीमा कर कहा—'नहीं सुनेंगे, तू जा बेटी! तुझे एक बात और बताये देती हूं। भगवान ने जो दो आँखें दी हैं वे बन्द किए रहने के लिए नहीं हैं, उन्हें खोले रहा कर। सोने की चेन और हीरे ही अंगूठी न देखकर किसी आदमी को मामूली न समझ लिया कर।'

सावित्री 'अच्छा', कहकर हंसती हुई जाने लगी। मोक्षदा ने फिर पीछे से पुकारकर कहा—'सावित्री, जरा सुन, इधर आ !'

सावित्री घूमकर खड़ी हो गई, बोली—'क्या ?'

'ढाके की एक साड़ी निकाले देती हूं, पहन कर जा।

सावित्री ने हंसी रोककर कहा—'मौसी, तुम निकालो, मैं अभी आती हूं।'

सतीश का भोजन प्रायः समाप्त हो चला था।

सावित्री ने कमरे में आकर पूछा—'आंख मूंद कर खा रहे हो क्या ?'

सतीश ने सिर उठाकर कहा—'नही तो।'

'पर मैं तो देखती हूं, तुम्हारी आंखों पर नींद की खुमारी नाच रही है।'

सचमुच उसे बड़े जोरों की नींद आ रही थी। गत रात्रि के उच्छ्खल अत्याचार आज असमय में ही उसकी आंखों के ढकनों को दबाये हुए थे। उसने लजाते हुए इसे स्वीकार किया, कहा—'हां, बड़ी नीद आ रही है।'

सावित्री ने पूछा—'और कुछ चाहिए ?'

सतीश झटपट बोल उठा—'नही, अब बस करो, कुछ नहीं चाहिए। मैं बहुत खा चुका।'

सावित्री ने बाहर पैरों की आहट सुनी और समझ गई कि मोक्षदा आकर खड़ी है। उसे सुनाने के विचार से बोली, 'बाबू, मुझे ढाके की एक बढ़िया साड़ी खरीद देनी होगी।'

उसने किसी दिन कुछ भी मांगा नही था। इसी से बात का अर्थ न समझ कर सतीश को कुछ विस्मय हुआ। उसे, मोक्षदा के आने का पता नही था, सिर उठा कर उसने पूछा, 'सचमुच ?'

'और नही तो क्या—झूठ !'

'पहनोगी कब ?'

'आज यदि भगवान ने पहनने का समय नही दिया है, तो क्या हुआ ? कभी वैसा समय नही आयेगा— ऐसी कोई बात नही। दूसरी बात यह है कि मैं मजदूरी करके पेट पालती हूं, इसका मौसी को बड़ा रंज है। इसी से सोचती हूं कि अब परिश्रम न करके बैठी-बैठी खाऊंगी।'

सतीश ने कहा, 'अच्छी बात है !'

'पर इतने से ही काम न चलेगा। एक मजदूरनी भी मेरे लिए रखनी पड़ेगी और यह सब आपको ही..'वह बात पूरी भी न कर सकी कि उसे मुंह मे कपड़ा ठूंसकर हंसी के उत्कट वेग को रोकने कोशिश करनी पड़ी।

मोक्षदा कुछ कच्ची गोटी तो थी नही। पल भर में ही वह सारा मामला समझ गई। घर के भीतर आकर बोली, 'मालूम होता है, बाबू सावित्री को जानते हैं।' सावित्री की ओर घूमकर बोली, समझ गई, मौसी के साथ यह चोंचले बाजी ! जो हो, यह तो बड़ी अच्छी बात है, प्रसन्नता की बात है। पहले ही कह देने में क्या हानि थी ?' कहती हुई वह धीरे-धीरे चली गई।

भोजन समाप्त कर सतीश फिर एक बार बिस्तर पर आकर बैठ गया। सावित्री डिब्बी भर कर पान लाई। फरशीदार हुक्के में उसने तम्बाकू भर कर सतीश के पास ला रखा और पैरों के पास फर्श पर बैठ कर जरा हंसकर चुपचाप सर नीचा कर लिया।

सतीश के हृदय में आंधी बहने लगी। नाभि की सारी नाड़ियां क्षण-क्षण में सिकुड़ने और फैलने लगीं, रोंगटे खड़े हो गए। भीतर-ही-भीतर एक कंपकंपी-सी दौड़ गई। थोड़ी देर के लिए हुक्के में दम लगाने की भी मानो उसमें शक्ति न रही। उसी प्रकार दो मिनट चुपचाप बीत जाने पर सावित्री ने सहसा सर उठा कर कहा, 'रात अधिक हो गई, घर न जाओगे?'

सतीश ने सूखे हुए कण्ठ से कहा, 'जाऊंगा नहीं तो रहूंगा कहां?'

'क्यों? यही रहो। न जा सको, तो जाने की आवश्यकता ही क्या है? मौसी अभी तक जग रही है, मैं उसके साथ जाकर सो रहूंगी।' कहकर सावित्री सतीश का मुंह देखती रही।

क्षणभर के लिए सतीश चुप रहा, लेकिन फिर तुरन्त प्रबल चेष्टा से अपने को रोककर वह उठ खड़ा हुआ, बोला, 'नहीं, चलता 'हूं।

'अच्छी बात है, पर जरा और बैठो', कहकर सावित्री उठी, बाहर से सतीश का जूता ले आई और आंचल से पैर पोंछकर जूते का फीता बांधती हुई धीरे-धीरे बोली, 'घर के लोग यदि जान जाये तो?'

'कैसे जानेंगे?'

'मैं ही यदि कह दूं।'

'कह क्या दोगी?' कोई बात भी हो।'

सावित्री ने फिर मुस्कराकर कहा, 'क्या कुछ भी नही हैं? सच कहते हो?'

सतीश चुप ही रहा।

सावित्री ने मृदु कण्ठ से कहा, 'यदि कुछ कहने की न होती, तो आज मैं तुम्हें कदापि नहीं छोड़ती। अच्छा, तुम अब घर चले जाओ। लेकिन यह ओछी प्रवृति—यह दुर्बुद्धि न छोड़ोगे, तो याद रखना एक दिन सब बातें खोल दूंगी।'

यह क्या मामला है! इसका कुछ अर्थ सतीश की समझ में न आया। कुछ देर तक वह चुप रहा, फिर बोला, 'कह दोगी, तो मेरा क्या बिगड़ेगा? घर वाले कुछ मेरे अभिभावक तो हैं नहीं।'

सावित्री ने कहा, 'यह तो मैं जानती हूं लेकिन इस काम का भार मेरी मौसी सहज ही ले लेगी, उसकी जीभ को कैसे रोकोगे?'

मोक्षदा का नाम सुन सतीश मन-ही-मन जरा डरा, तो भी बोला—'रूपयों से।'

सावित्री ने कहा—'बस? इससे तो केवल रूपयों की बरबादी होगी, काम कुछ न होगा। इसके सिवा मौसी को तो रूपयों से वश में कर लोगे, लेकिन मुझे? मुझे कैसे वश में लाओगे?

सतीश के मुंह से अनायास निकल पड़ा—'प्रेम से।'

सावित्री के होठों पर बलपूर्वक रोकी हुई कठिन हंसी का आभास दिखाई दिया, बोली—'यह चौथी बार है।'

'मतलब ?'

'मतलब यह, कि इसके पहले भी और तीन महाशयों ने मुझे यही चीज देनी चाही थी।'

'और तुमने नहीं ली ?'

'नहीं, यह कूड़ा-करकट बटोर कर रखने का स्थान मेरे पास नहीं है।'

सतीश अटल होकर बैठा रहा। उसे दोपहर की सब बात याद हो आई और साथ-ही-साथ प्रेम नदी के ज्वार का जाना और भाटे का आना भी शुरू हो गया। सावित्री की बातों को वह हंसी-मजाक न समझ सका। एकाएक बहुत ही रूखाई के साथ वह बोल उठा, 'मूर्ख थे। उन्हें ऐसी चीज देने का प्रस्ताव करना चाहिए था, जिसे लेकर बक्स में रखने में किसी को दिक्कत न जान पड़ती। मैं भी कम मूर्ख नहीं हूं, क्योंकि मैं भी यह बात प्राय: भूल गया था कि प्रेम तुम लोगों के लिए बहुत ही निन्दा और घृणा की वस्तु है। इस आयु में मुझे इतनी बड़ी भूल न करनी चाहिये थी। अच्छा चलता हूं।'

ये बातें सावित्री के हृदय में बर्छी के समान लगीं।

'तुम लोगों के लिए' कहकर सतीश ने उसे किन लोगों की श्रेणी में मिलाया यह समझना सावित्री के लिए शेष न रहा। लेकिन हंसी को, झगड़े में बदलते देखकर वह चुप हो गई। पर सतीश चुप न रह सका, बोला, 'शिकारी मछली फंसा कर जैसे ढील दे-देकर, खेला-खेलाकर तमाशा देखता है, मालूम होता है, इतने दिन तुम भी मुझे फंसा कर वैसे ही मेरे हृदय से खिलवाड़ कर रही थी ! क्यों ?',

सावित्री अब सहन न कर सकी। बिजली के समान चमक कर उठ खड़ी हुई, बोली, 'तुम तो बन्सी में फंसाते ही खींच लेने के योग्य हो, तुम वैसी बड़ी मछली नहीं, जिसे खेला कर, तमाशा देखा जाये।

सतीश न ममताहीन व्यंग्य करके कहा, 'ऐसी बात है ?'

सावित्री ने कहा, 'और नहीं क्या ?' उसके होंठ सिकुड़ गये। सतीश के मुंह की ओर केवल एक बार तीव्र दृष्टि डाल कर बोली, 'चरित्रहीन वेश्या के लिए प्रेम दिखा कर तुम मेरे आगे प्रेम की बड़ाई कर रहे हो ? अभी यहां से चले जाओ, मेरे घर में खड़े होकर मेरा ही अपमान न करो।'

इस अपमान से सतीश और भी निर्दय हो गया। इस बार वह अत्यन्त कुत्सित व्यंग्य कर बोला, 'चरित्रहीन ! लेकिन चाहे जो कुछ कहो सावित्री, मां-बाप ने तुम्हारा नाम बहुत ठीक ही रखा था !'

सावित्री हट कर चौखट पकड़ कर क्षण भर निश्चल खड़ी रही, बोली—'जाओ !' उसका चेहरा उस समय बिल्कुल पीला पड़ गया था।

सतीश ने अपमान और क्रोध की ज्वाला में उसकी ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं, बोला—'लेकिन जाने के पहले फिर एक बार आंचल से पैर न पोंछ दोगी या और कोई ढोंग न रचोगी ? और कुछ...'

अचानक ही दोनों की आंखे चार हुईं।

सावित्री एकदम आगे बढ़कर बोली—'तुम कसाई से भी निष्ठुर हो। जाओ, तुम यहां से चले जाओ, चले जाओ, तम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम चले जाओ, न जाओगे तो मैं

सिर पटक कर जान दे दूंगी—तुम जाओ !'

उसके कण्ठ स्वर की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तीव्रता से सतीश भयभीत हो गया और बिना कुछ बोल बाहर जाने लगा: लेकिन बरामदे के अन्त तक जाना पड़ा। उधर अन्धकार इतना गहरा था कि उसे न तो सीढ़ियां सूझी, न निकलने का मार्ग ही दिखाई दिया। पाकेट में हाथ डालकर देखा, तो दियासलाई नही थी। इस निरूपाय अवस्था में वह पांच मिनट तक खड़ा रहा। फिर उसे सावित्री के घर की ओर लौटना पड़ा। बाहर से देखा सावित्री चटाई पर औंधी पड़ी है। धीरे-धीरे पुकारा, 'सावित्री !' सावित्री की कोई आवाज न आई। फिर पुकारा; पर वह ज्यों-की-त्यों पड़ी रही। सतीश ने कमरे में आकर उसके सिर पर हाथ लगाया, झुक कर देखा कि आंखें बन्द हैं, मुंह में उंगली डाल कर उसने मालूम किया कि वह मूर्छित हो गई है। क्षणभर के लिए उसके मन में भय और संकोच अवश्य पैदा हुआ, लेकिन उसके बाद ही सावित्री के अचेत शरीर को उठा कर उसने बिस्तर पर लिटा दिया और दुपट्टे का एक कोना घड़े के पानी में भिगो, उसके मुंह और आंखों पर छींटे देने और एक हाथ में पंखा लेकर झलने लगा। दो-तीन-मिनट के बाद ही सावित्री ने आंखें खोलीं, सिर पर सरका हुआ कपड़ा ठीक किया, करवट बदली और बोली—'अभी तक तुम गये नहीं ?'

सतीश चुपचाप पंखा झलता रहा।

सावित्री बिस्तर से उठी, दीपक हाथ में लेकर बाहर चली आई, बोली—'चलो, तुम्हें दरवाजा खोल दूं।'

इसके बाद वह चुपचाप रास्ता दिखाती हुई नीचे उतर गई और दरवाजा खोलकर किनारे खड़ी हो गई।

मूर्छित सावित्री को उठाकर बिस्तर पर लिटाने के बाद से ही सतीश कुछ अनमना-सा हो गया था। अब दरवाजे के बाहर निकलते ही वह फिर अपने मे आ गया और सिर उठाकर कुछ कहना ही चाहता था, कि सावित्री बोल उठी—'रहने दो, कुछ मत बोलो। अपने शरीर को तो तुम पहले ही नष्ट कर चुके हो, वह तो खैर किसी दिन जलकर भस्म हो जायेगा; परन्तु एक कुलटा से प्रेम कर भावना के दिये हुए मन पर भी कालिख न पोतो। हो सके तो तुरन्त वहां से घर चले जाना। यदि न गये तो मैं वहां अब नहीं जाऊंगी।' इतना कह कर उत्तर की प्रातीक्षा न करके सावित्री ने दरवाजा बन्द कर दिया।

8

सतीश हत्बुद्धि-सा हो रहा था। क्यों पास आने पर वह इस प्रकार निष्ठुर आघात करके दूर हटा देती है ? उस दिन सारी रात बराबर सोचते रहने पर भी, इसका एक स्पष्ट कारण खोजने पर भी वह न पा सका। पिछली रात की एक-एक बात अब तक उसके मस्तिष्क में झनझनाती हुई बज रही थी। इस कारण वह भोर में ही निकल पड़ा, और किराए का एक मकान ठीक करके आकर मजदूर बुला कर अपना समान लदवाने लगा। यह काम देख कर घर के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए। अधिक आश्चर्य में पड़ा बिहारी। उसने पास आकर धीरे-धीरे पूछा—'बाबू, क्या घर जा रहे हैं ?'

सतीश ने उसके हाथ में पांच रूपये देकर कहा—'नहीं बिहारी, घर नहीं, स्कूल के पास ही एक मकान पा गया हूं, इसलिए जा रहा हूं।'

बिहारी ने कहा—'किन्तु वह तो अभी तक आई नहीं बाबू ?'

सतीश ने मुंह ऊपर उठाए बिना ही कहा—'आई नहीं है ? अच्छा, तू मेरे बिस्तर को बांध दे, मैं तब तक राखाल बाबू के कमरे में होकर आ रहा हूं।' यह कहकर डेरे का देना-पावना चुका देने के लिए वह राखाल बाबू के कमरे में चला गया। उसे कमरे में बहुत से लोग उपस्थित थे। शायद यही आलोचना चल रही थी। क्योंकि उसको देखते ही सभी चुप हो गए। राखाल ने जरा हंसने की चेष्टा करके कहा—'सतीश बाबू, इस प्रकार अचानक कैसे ?'

सतीश ने हाथ के रूपयों को मेज के एक किनारे रख कर कहा, 'अचानक एक दिन मैं आया भी था, अचानक एक दिन जा रहा हूं। इन्हीं रूपयों से शायद आपका हिसाब चुकता हो जायेगा, यदि न हो, तो हिसाब हो जाने पर मुझे सूचना दीजिएगा शेष रूपये भेज दूंगा।'

राखाल ने कहा 'सूचित कहां करूंगा ?'

'मेरे स्कूल में एक कार्ड लिख कर भेज दीजिएगा, ऐसा करने से ही पाऊंगा।' यह कह कर सतीश और कोई प्रश्नोत्तर की प्रतीक्षा न करके बाहर चला गया। कमरे के अन्दर से एक दबी हुई हंसी की आवाज सतीश के कानों में आ पहुंची। बिहारी निकट ही खड़ा था। कमरे में घुस कर हाथ की छोटी-सी पोटरी किवाड़ की आड़ में उतार करके रख देने के बाद राखाल को लक्ष्य करके बोला, 'बाबू, मेरा सत्रह दिन का वेतन हिसाब करके दे दीजिए, मुझे इसी दम बाबू के साथ जाना पड़ेगा।'

राखाल ने चकित और प्रसन्न होकर कहा, 'तू जाएगा ? यहां काम कौन करेगा ? आऊगां कह देने से ही तो जाना नहीं होगा।'

बिहारी ने कहा, 'होगा क्यों नहीं बाबू ? मुझे तो जाना ही पड़ेगा।'

राखाल ने अग्नि के समान जलकर कहा, 'जाना पड़ेगा कह देने से ही हो जाएगा ? नियमानुसार नोटिस देना चाहिए, मालूम है। ?'

बिहारी ने कहा, 'एक दिन समयानुसार आकर दे जाऊंगा। अभी वेतन दे दीजिए, मुझे सामान जुटाना पड़ेगा।'

राखाल और कुछ न कहकर तूफान की गति से बाहर होकर सतीश के कमरे में घुस कर बोल उठा, 'सतीश बाबू, यह सब कैसे काम हैं ?'

सतीश बिस्तर बांधते हुए बोला, कौन सब ?'

राखाल ने क्रुद्ध भाव से कहा, 'नौकरानी नही आई, वह तो पहले ही चली गई है, देखता हू, बिहारी को भी ले जाना चाहते हैं, क्यों ? अपराध किया आपने, दण्ड हम भोगेंगे ?'

सतीश ने कहा, 'आप की बात मेरी समझ में नहीं आई ?'

राखाल ने कण्ठ का स्वर ऊंचा करके कहा, 'समझेंगे क्यों ? न समझने में ही तो सुविधा है। स्वयं न जाने से तो आपको निकाल बाहर करना ही पड़ता, लेकिन जो कुछ भी हो, एक सहज शिष्टता का बोध भी क्या मनुष्य को न रहना चाहिए ?'

सतीश की दोनों आँखें जल उठीं। पास आकर वह बोला, 'आप यह सब क्या कह रहे हैं राखाल बाबू?'

ईर्ष्या की आग राखाल को जला रही थी, बोला, 'ठीक कह रहा हूं, आप भी ठीक समझ रहे हैं। सतीश बाबू, कोई भी बात हम लोगों से छिपी नहीं है। अच्छा जाइए आप—क्या काला सांप मकान में लाया गया था! ऐसे सुन्दर डेरे को इसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।'

सतीश ने राखाल का एक हाथ थाम कर कहा—'आप क्या कह रहे हैं राखाल बाबू?'

राखाल जबर्दस्ती अपना हाथ छुड़ाकर गरज उठा—'जाइए, ढोंग मत रचिए। जाइए आप, दूर हट जाइए!'

बिहारी ने कमरे में आकर कहा—'सतीश बाबू, जाने दो इनको, कहां है उनका मोह, कहां है उनकी जलन, यह बात मैं एक दिन आपको बताऊंगा। मैं सब जानता हूं, आइए, हम लोग चीज-सामान ठीक कर डालें।' राखाल अपने पैरों की आवाज से मकान कंपाकर बाहर चला गया। सतीश ने चौकी पर बैठकर कहा—'यह सब क्या है बिहारी?'

बिहारी ने कहा—'मैं आपके साथ जाऊंगा, यहां रह न सकूंगा।'

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, 'मेरे साथ! यहां काम कौन करेगा?'

बिहारी से अविचलित दृढ़ता के साथ कहा, जिसकी इच्छा हो करे, मैं साथ ही जाऊंगा। नौकर के बिना तो आपका काम चलेगा नहीं?'

इतनी देर बाद मामला समझ सकने पर सतीश पल भर चुप रह कर बोला, 'यह बात पहले कह देने से ही तो हो सकता था बिहारी?'

बिहारी कुछ नही बोला। चुपचाप चीज-सामान बांध-बटोर कर मजदूर के सिर पर उठाने लगा। जाएगा ही इसमें और सन्देह नहीं रहा।

सतीश नये डेरे पर आकर सोच रहा था, मैं ऐसा कैसे हो गया! जैसा-तैसा कोई भी मेरा अपमान करने का साहस करता है, यही नहीं अपमान करके स्वच्छन्दता से परित्राण पा जाता है, क्यों? मेरी असाधारण शारीरिक शक्ति एक तिल भी कम नहीं हुई है, फिर भी मैं क्यों ऊपर उठाकर, जोर लगा कर बातें नहीं कर सकता? क्यों मैं सिर झुकाए ही सब सह लेता हूं? अपने मन की यह शोचनीय दुर्बलता आज उसको बड़ी चोट पहुंचाने लगी और उससे भी अधिक चोट लगी इस दुःख की कि प्रतिकार करने की शक्ति भी मानो आज उसके हाथ से निकल गई है।

राखाल की क्रोध भरी भाषा ने उस रात की घटना का ही उल्लेख किया है, इसमें सन्देह नहीं है। इसी को याद करके सतीश लज्जा से मिट्टी के साथ मिल जाने लगा। विपिन के आदमियों ने उसको किस प्रकार, किस भाव से पकड़ लिया था, अंधेरे कमरे में किस प्रकार वह डर से मुर्दे के समान पड़ा हुआ था? वे लोग बुद्धिमान थे और किस प्रकार सारी चालाकी समझ लेने पर ओढ़ने के अन्दर से उसे खींचकर ले गये थे इत्यादि चित्ताग्राही दुर्लभ विवरण का सत्य-झूठ के अलंकार आडम्बर से लपेटकर जो वर्णन किया गया होगा, उपस्थित सब लोगों ने किस प्रकार उत्कट आनन्द, आग्रह और ऊंची हंसी के साथ उसका उपभोग किया होगा, उसकी आदि से अन्त तक कल्पना करके उसका चेहरा

इतना अधिक मर्मान्तक और वीभत्स होकर दिखाई पड़ा कि अकेले कमरे के अन्दर भी सतीश का चेहरा वेदना से बदरंग हो उठा। फिर उन्हीं लोगों के सामने ही राखाल ने उसका अपमान करके बिदा कर दिया, वह एक बात भी कह नहीं सका, यह बात सुनकर सावित्री क्या सोचेगी !

वह कुछ न कहेगी। सब सह लेगी, उत्तर तक भी न देगी। उसका आत्म-सम्मान व बोध कितना बड़ा है, इसको भी वह जैसे असन्दिग्ध भाव से समझ गया था, उसके व्यथित चेहरे की आकृति वह कल्पना में आज स्पष्ट देखने लगा। सतीश ने मन-ही-मन कहा कि मेरी दुर्बुद्धि से जो दुर्घटना हो गई है, असहाय सावित्री को उसके बीच छोड़ कर चला आना उचित नहीं हुआ। लेकिन उचित क्या हो सकता था, इसको भी, किसी प्रकार सोचने पर वह समझ नहीं सका लेकिन सावित्री ने स्वयं ही उसको चले जाने को नहीं कहा? उसने क्या गर्व के साथ ही नहीं कहा, इसमें वह कोई भी अपमान नहीं समझती।

बिहारी ने आकर कहा, 'बाबू, आपके स्नान का समय हो गया है।

सतीश लज्जित होकर झटपट उठा और तौलिया कन्धे पर रखकर स्नान करने चला गया।

हाय रे ! जब कि उसका मन फट-फट गिर रहा था, अब भी नियमित किसी काम की अवहेलना करने का उपाय नहीं था। वह स्कूल गया लेकिन कक्षा में न जा सका। बाहर घूम-घूम कर ही समय पर डेरे लौट आया और कमरे में घुसते ही किसी प्रकार की निराशा से मानो उसका पूरा हृदय परिपूर्ण हो उठा। इस नये कमरे को सजा कर, सरिया कर ठीक-ठीक करने में बिहारी ने खूब परिश्रम किया है, यह बात समझ में आ गई। लेकिन अनजान हाथ की प्रथम चेष्टा कहीं दबी नहीं हैं, यह भी उसी प्रकार दृष्टि में पड़ गई। बिहारी शरबत ले आया, तम्बाकू चढ़ाकर दिया और दुकान से पान का दोना खरीद कर ले आया। वृद्ध की अभ्यस्त इन सब सेवाओं की चेष्टा से सतीश मन-ही-मन हंसने जा रहा था, पर रूलाई आ गई और उसने नेत्र पोंछ डाले। रात को बिछौने पर लेटकर सतीश सोचने लगा—जो कुछ होना था हो गया, इन सब बातों को अब वह मन में भी न लायेगा। लिखने-पढ़ने के लिए वह कलकत्ते आया था। तो इसी को लेकर रहेगा या घर लौट जाएगा। लेकिन उस दिन उस मूर्छित नारी के गरम शरीर को छूकर वह लौट आया था, वह गरमी उसके समस्त संयम की चेष्टा को गलाकर समाप्त कर देने लगी। बिहारी मन-ही-मन समझ रहा था; लेकिन सान्त्वना देने का साहस उसको नहीं था। इस कारण वह उदास चेहरे से चुपचाप दरवाजे के बाहर बैठा रहा। प्रायः दस बज रहे थे। उसने धीरे-धीरे मुंह बढ़ाकर कहा—'बाबू, बत्ती बुझा दूं?'

सतीश ने कहा, 'बुझा दे, लेकिन तू सोयेगा कहां बिहारी?'

'मैं यहीं हूं बाबू। मैंने अपनी चटाई दरवाजे पर ही बिछा ली है।

सतीश ने पूछा, 'क्या इस मकान मैं नौकरों के लिए सोने का स्थान नहीं है?'

बिहारी ने कहा, 'नीचे एक खाली कमरा है, शायद आपको कोई आवश्यकता पड़ जाय इसलिए यहीं रहूंगा।'

सतीश ने व्यस्त होकर कहा, 'यह क्या रे, तू सोने चला जा। बूढ़े आदमी हो, ओस में मत रहो।'

'ओस कहां है बाबू !' कहकर बिहारी वंहां पर चादर ओढ़कर सो रहा।

कुछ क्षण चुप रहकर सतीश ने पूछा, 'रात कितनी हो गई रे?'

'अधिक नहीं हुई है बाबू, शायद दस बज गए हैं।'

सतीश फिर चुप हो रहा। कुछ क्षण बाद मृदु कण्ठ से उसने पूछा, 'अच्छा, ¬ ावित्री का घर जानता है बिहारी !?

बिहारी उठकर बैठ गया, बोला—'जानता तो हूं बाबू !'

सतीश कुछ न बोला।

बिहारी ने कहा, 'एक बार जाकर देख आऊँ क्या?'

इस बार सतीश घबराकर बोल उठा, 'नहीं, नही, तू कहां जाएगा? वह तो बहुत ही दूर है !

बिहारी ने कहा, 'दूर बिलकुल नहीं है बाबू।'

सतीश कुछ सोचने लगा, बोला नहीं।

बिहारी ने धीरे-धीरे कहा, 'बाबू, यदि एक घण्टे की छुट्टी दे तो देख आऊँ। सबेरे काम पर आई नहीं थी, शायद बीमार पड़ गई है !'

सतीश फिर भी कुछ न बोला।

बिहारी मन-ही-मन घबरा उठा। आज सारा दिन वह अपनी आदत के अनुसार बातें नही कह सका था, उस पर कहने के लिए विषय इतने अधिक जमा हो चुके थे कि वह एक बार फिर बोला, 'नई जगह मे नीद नहीं लग रही है बाबू, फिर एक बार तम्बाकू चढा दूं?'

सतीश ने उत्तर नही दिया तो भी बिहारी कुछ देर तक उत्सुक होकर प्रतीक्षा करता रहा, अन्त में वह वहीं सो गया।

दूसरे दिन ठीक वक्त पर सतीश स्कूल गया। दोपहर को बिहारी सब काम-काज पूरा करके, हाल ही रखे गए पांडे महाराज के ऊपर डेरे को देख-भाल करने का भार देकर चला गया और सत्रह दिन का वेतन वसूल करने के बहाने पुराने डेरे पर जा पहुंचा। फिर भी, उसको यह भय था कि राखाल बाबू कहीं आफिस न चले गए हो। इसीलिए मकान में घुसते ही नये नौकर से समाचार जान लेने पर वह निर्भय होकर रसोई घर के सामने चला गया, उसने कण्ठ स्वर ऊंचा करके कहा, 'महाराज जी प्रणाम !'

महाराज जी गांजा पीकर दीवार पर ओठंग कर नेत्र बन्द किए ध्यान कर रहे थे, चौंक उठे और बोले, 'कल्याण हो !' उसके बाद माथा सीधा करके नेत्र खोलकर बोले, 'कौन है बिहारी, आ बैठ जा !'

बिहारी पास आकर पैरों की धूलि सिर पर चढ़ाकर बैठ गया। चक्रवर्ती ने अंगौछे का खूंट खोलकर थोड़ा गांजा निकाल बिहारी के हाथ में देकर कहा, 'उस मकान में अब रसोई कौन बनाता है?'

बिहारी उठकर चला गया, हथेली में दो-चार बूंद पानी लेकर लौट आया और बोला, 'एक पछांई गंवार ब्राह्मन ! एकदम जानवर है !'

चक्रवर्ती ने प्रसन्न होकर सिर हिलाकर कहा, 'भगवान उन लोगों को पूंछ देना भूल गए हैं, यही आश्चर्य की बात है।' इसके बाद डेरे के नये नौकर को लक्ष्य करके बोले,

'हमारे यहां कल ही एक भूत को पकड़ लाया गया है। उसकी समझ कैसी है उसको तो भला देखो बिहारी, आज सबेरे एक चिलम निकालकर उसे मैंने दी और कहा, 'तैयार करके लाओ तो भैया ! मैंने सोचा इसकी विद्या एक बार देख लेने से ठीक होगा। कहने से तू विश्वास ही न करेगा बिहारी, उल्लू ने चीज को मिट्टी में मिला दिया। पर तुम लोगों को वहां कष्ट न होगा। मेरी सावित्री चालाक लड़की है, दो ही दिन में सिखा-पढ़ा कर पक्का बना देगी।'

उसकी अपनी पन्द्रह आना विद्या भी उसी गुरू से सीखी हुई थी। उस बात को दबाकर वह झट बोला, 'लेकिन मैं यह भी कहता हूं बिहारी, हांडी पकड़ने से ही नहीं होता, बाबू-भैया लोगों को खुश करना, उनकी थाली में परोस देना बहुत साधारण विद्या नहीं है। लेकिन यहां मेरा काम करना अब हो नहीं सकता, यह तुझे पहले से ही कहे देता हूं। तू कह देना तो भला यह सब मेरा नाम लेकर सावित्री से। वह उसी क्षण कहेगी, जाओ बिहारी, चक्रवर्ती को बुला लाओ, भले ही वह दो रूपया वेतन अधिक लेगा। सतीश बाबू भी कभी 'नहीं' न कहेंगे। मैं उनका स्वभाव जानता हूं। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि 'ब्राह्मस्य ब्रह्मण गति'। मैं दो रूपया अधिक पाऊंगा तो वह कुपात्र में नहीं पड़ेगा।' इतना कहकर चक्रवर्ती महाराज हंसने लगे।

बिहारी कुछ देर बाद बोला—महाराज जी, सावित्री तो वहां नहीं है।'

चक्रवर्ती ने अविश्वास की हंसी हंसकर कहा—'अच्छा, नहीं है ! तू मेरा नाम लेकर कह देना, उसके बाद जो कुछ होगा, मैं देख लूंगा।'

बिहारी बायें हाथ के पदार्थ को दायें हाथ में लेकर बोला—'छूकर, सौगन्ध लेकर कह रहा हूं देवता, वह वहां नहीं जाती।'

इतनी बड़ी शपथ के बाद भी चक्रवर्ती फिर सन्देह न कर सके। विधिपूर्वक आश्चर्य में पड़कर कहा—'तू क्या कहता है बिहारी ! वह तो यहां भी नहीं आती ! फिर चौबीसों घण्टे राखाल बाबू, बेचारे सतीश बाबू को जो...अच्छा तू जा, एक बार उसको देख तो आ उसके बाद मैं हूं, और राखाल बाबू हैं। मुझे जैसा-तैसा ब्राह्मण मत समझ लेना बिहारी !

उनके ब्राह्मणत्व में बिहारी की अगाध श्रद्धा थी। उसने चक्रवर्ती के हाथ में चिलम देकर पूछा—'अच्छा, सतीश बाबू ही क्यों चले गए? वे कहते हैं स्कूल दूर पड़ता है, लेकिन काम की बात ही नहीं है।'

चक्रवर्ती ने कहा—'नहीं, इसके अन्दर कोई बात है।' इसके बाद दोनों ने मिलकर चिलम समाप्त कर दी, बिहारी उठ पड़ा और उद्विग्न मुख से सावित्री के घर की ओर चला गया। उसको विश्वास हो गया कि सावित्री बीमार हो गई है।

सावित्री के घर का सदर दरवाजा खुला हुआ था। बिहारी चुपचाप अन्दर चला गया। प्राय: सभी कमरों के दरवाजे बन्द थे, किरायेदार दिवा-निद्रा में पड़े हुए थे। बिहारी धीरे-धीरे सावित्री के कमरे के सामने जाकर वज्राहत की भांति स्तब्ध हो गया। किवाड़ का पल्ला बन्द था। बिहारी ने देखा उसकी आड़ में सावित्री धरती पर चुपचाप बैठी हुई है और पास ही एक चौकी पर बिछौने पर विपिन शराब पीकर मतवाला बना हुआ सो रहा है। पांव की आवाज से सावित्री मुंह बढ़ाकर अचानक बिहारी को देखकर एक ही

क्षण में मानो बदरंग हो गई। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को संभाल कर बाहर आकर ओट से हंसकर बोली—'आओ बिहारी, बैठो।' उसको अपने साथ ले जाकर रसोईघर के बरामदे में उसने चटाई बिछा दी और बड़े आदर से बिठाकर स्वयं पास ही फर्श पर बैठकर उसने पूछा—'समाचार सब अच्छा है बिहारी ?' बिहारी ने सिर हिलाकर बतलाया कि—अच्छा है। उसके बाद सावित्री के मुंह से फिर कोई बात नहीं निकली। दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद बिहारी एकाएक उठ जाने को प्रस्तुत होकर बोला—'मैं जा रहा हूं, मुझे बहुत काम करने है।'

सावित्री ने पूछा—'अभी ही जाओगे ? तनिक बैठो न !'

बिहारी ने उठकर कहा—'नही जा रहा हूं।'

सावित्री साथ ही साथ सदर दरवाजे तक जाकर बोली, 'हां बिहारी बाबू लोग तो बहुत प्रसन्न हो गए होंगे !

बिहारी ने चलते-चलते कहा, 'मैं तो जाता हूं, हमलोग वहां अब नही रहते।'

सावित्री ने व्यग्र होकर प्रश्न किया, 'नही रहते ? वह डेरा टूट गया है ?'

बिहारी ने कहा, 'नहीं टूटा तो नही है। केवल सतीश बाबू उसे छोड़कर चले आए हैं और मै उनके साथ आया हूं।'

'तुम लोग क्यो चले आए बिहारी ?'

'ये सब बहुत बाते है।' कहकर फिर बिहारी चलने को तैयार हुआ तो सावित्री ने दोनो हाथो से उसका हाथ पकडकर अननुय के स्वर से कहा—'और एक बार चलकर बैठना पड़ेगा बिहारी।'

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, 'नही, मुझे समय नही है।'

'कल एक बार फिर आओगे, वचन दो।'

बिहारी ने पहले की भांति कहा, 'नही, मुझे समय न मिलेगा।'

क्षण भर सावित्री ने उसके चेहरे की ओर तीक्षण दृष्टिपात करके हाथ छोड़ दिया। अभिमान से समस्त छाती को भरकर शान्त भाव से वह बोली, 'अच्छा तो जाओ ! यह बात उनसे कह देना।'

इस बात से बिहारी को चोट लगी। उसने मुंह ऊपर उठाकर कहा—'उन्होने तो तुम्हारे सम्बन्ध मे जानता नही चाहा।'

'नही चाहा ?'

'नहीं।'

सावित्री स्थिर भाव से आघात सहकर रूखे स्वर मे बोली, 'किसी दिन जान लेना चाहेगे तो शायद कह दोगे !'

बिहारी ने कहा, 'नहीं, मै औरत नहीं हूं, मेरे शरीर मे दया-माया है।' कहकर और किसी प्रश्न की प्रतीक्षा न करके तेजी से छोटी गली को पार करके वह चला गया।

सावित्री उसी स्थान पर चौखट पर स्तब्ध होकर बैठ गई। उसके अन्दर-बाहर फिर एक बार आग धधक उठी।

आज वह सवेरे घर मे नही थी। काली जी के दर्शन के लिए कालीघाट गई थी। इसी अवकाश में विपिन दो-चार दोस्तो को साथ लिए शराब पीए मतवाला बना आ गया

और मोक्षदा के हाथ में दो नोट देकर, सावित्री के कमरे का ताला खोलकर बिस्तर पर बैठ गया और शराब मंगाकर घर भर के सभी लोगों को उसने पिलाई, पीकर सभी मतवाले हो गये। इन बातों को सावित्री कुछ भी जानती नहीं थी। दिन में बारह बजे उसने अपने मकान में घुसकर देखा, इस मकान की दो पुरानी कियायेदारिन शराब के नशे में गाली-गलौज कर रही हैं और उसकी मौसी मोक्षदा सामने के बरामदे में करवट से पड़ी हुई टूटे-फूटे गले के मौज के मन से 'विद्यासुन्दर' के पद गा रही है। सारे मकान में, कहीं फरूहीं, कहीं उरद का दाना, कहीं बतख के अण्डों के छिलके, कहीं मछलियों के कांटे, कहीं केकड़ों की हड्डी बिखरी पड़ी है—पैर रखने तक का भी स्थान नहीं है। मोक्षदा सावित्री को देखते ही अपने ढीले कपड़े को कमर में लपेटती उठ खड़ी हुई और उसका गला पकड़ कर रोने लगी, 'बेटी, ऐसे-ऐसे बाबू जिसके हैं, उसको फिर कष्ट कैसा? उसको फिर दूसरे की नौकरी करनी चाहिए? पर मैं तेरी दरिद्र मौसी हूं सावित्री...।'

उसके मुंह से शराब की गन्ध आ रही थी, गालों पर, माथे पर, कपड़ों पर, समूचे अंग पर हल्दी के पीले दाग पड़े थे, निःश्वास में कच्ची प्याज की तीव्र गन्ध थी। असहनीय घृणा से सावित्री उसको जोर से ठेलकर बोल उठी—'मौसी, तुम शराब पीती हो? तुम भी मतवाली हो रही हो?'

धक्का खाकर मोक्षदा रोना बन्द कर और आंखें लाल कर चिल्ला उठी—'मतवाली? जरूर मतवाली? मुहल्ले के लोगों से जाकर पूछ ले—वे कहेंगे मतवाली है। मेरा भी एक दिन था रे, मेरा भी एक दिन था। मेरा भी एक दिन था जब मैं चौबिसों घण्टे शराब में डूबी रहती थी। तू इसकी दया क्या जानेगी, कल की छोकरी है तू!'

उसके तर्जन-गर्जन से कुण्ठित होकर सावित्री ने शान्त करने के अभिप्राय से कहा—'लेकिन तुम पीती नहीं हो, आज, एकाएक पीने क्यों गई?'

मोक्षदा ने और भी दुःखी होकर कहा—'एकाएक फिर क्या! मैं एकाएक पीने वाली नहीं हूं। जाकर पूछ ले अपने बाबू से, जो एक गिलास पीकर औंधा पड़ा हुआ है। अरे मर जाऊंगी, तो भी अपनी मान-मर्यादा न खोऊंगी, आंचल में दो नोट बांध दिये है, तभी मैंने गिलास पकड़ लिया है।' यह कहकर गर्व के साथ आंचल को उठाकर कहा, 'जरा कह देने से ही दौड़कर पी जाऊंगी वैसी मोक्षदा मैं नहीं हूं।'

सावित्री ने चौंक कर पूछा, 'क्या बाबू आ गए हैं?'

मोक्षदा ने कहा, 'नहीं तो इतना काण्ड करता कौन? यह भी कहती हूं, पी लो कह देने से क्यों पीऊंगी? मान-इज्जत क्या नहीं है?'

इसके पहले से ही बरामदे के उसी किनारे जो औरतें आपस में लड़-झगड़ रही थीं, गले की ऊंची आवाज सुनकर झगड़े का आभास पाकर वे पास ही आ खड़ी हुई। विधु ने कहा, 'अजी, मान-इज्जत हम लोग भी समझती हैं। फिर सावित्री तो लड़की के समान है, उसका बाबू मेरा हाथ पकड़ कर अनुनय करने लगा, इसीलिए पीना पड़ा नहीं तो...।'

उसकी बात पूरी भी नहीं हो पाई कि मोक्षदा गरज उठी, 'भले ही हो सावित्री का बाबू। भले ही हो दामाद। बीस रूपये आंचल में बांध लिए हैं, तभी हाथ में गिलास छू लिया है।'

ये बातें सुनकर सावित्री लज्जा और घृणा से मरती जा रही थी। बोल उठी, 'चुप रहो

[redacted]

मोक्षदा ने कहा, 'चुप क्यों रहूंगी ? जो कुछ कहूंगी सामने ही कहूंगी । सब जानते हैं, साफ कहने वाली यदि कोई है तो वह है मोक्षदा ।'

इस बार विधु ने भी कंठ का स्वर ऊंचा बनाकर कहा, 'साफ कहना केवल तू ही जानती है, ऐसी बात नही है, हम भी जानती हैं । दामाद से दो नोट लेकर शराब पी गई हो, तीन पा लेने से न जाने... ।'

मोक्षदा उछल उठी, बोली, 'छोटी मुंह से बड़ी बात !' और बोल न सकी । सावित्री ने हाथ से उसका मुंह बन्द कर दिया और जबरदस्ती उसे घसीट लाकर अपने कमरे से छोड़ कर जंजीर चढ़ा दी । वही से मोक्षदा न सुनने योग्य लगातार भाषा बरसाने लगी ।

लौट आने पर सावित्री विधु के दोनों हाथ पकड़ कर बोली, 'मौसी, मुझे क्षमा करो । सब दोष मेरा है ।'

उसकी नम्र बातों से शान्त होकर विधु ने कहा, 'तेरा दोष क्या है सावी ? मोक्षदा को सदा से जानती हूं जरा-सी पी लेने के साथ ही फिर रक्षा नहीं, पैर पर पैर चढ़ाकर झगड़ा करने लगती है, यही उसका स्वभाव है । जा, तू अपने कमरे में जा । यह कह कर वह चली गई ।

सावित्री काठ के समान खड़ी रही थी । रोष और क्षोभ से आत्मघात करने की उसकी इच्छा थी । सतीश बड़ा निर्लज्ज हो सकता है । खुले तौर पर दिन-दहाडे ऐसा उन्मत्त आचरण कर सकता है, यह तो वह सपने मे भी सोच नही सकती थी । इसलिए काल्पनिक नही, एक सच्ची वेदना उसके हृदय के अन्दर विशाल लहर की भांति लुढ़कती हुई घूमने लगी । उसको मालूम होने लगा मानो उसका प्रियतम अकस्मात् उसी के नेत्रो के सामने मर गया, जिसको केवल दो ही दिन पहले वह कड़ी बातों से अपमानित करके विदा करने को बाध्य हुई थी, वही जब कि इतना शीघ्र इतने सहज भाव से अपने समस्त आत्म-सम्मान को विसर्जन करके ऐसा हीन, ऐसा दीन होकर वापस आ गया, तब भरोसा करने का, विश्वास करने का उसको और कुछ भी नही रह गया । उसकी आंखे जलने लगी, लेकिन एक बूद भी आंसू नही निकला । उसका सर्वस्व; उसका देवता, उसकी कल्पना का स्वर्ग, उसके भ्रष्ट जीवन का ध्रुवतारा, उसका इहकाल-परकाल सब कुछ एक ही क्षण में इधर-उधर बिखरी पड़ी हुई गन्दी चीजों, जूठन के ढेरो के बीच लेटने लगे । सावित्री स्थिर होकर खड़ी रही, कमरे की ओर जाने के लिए किसी प्रकार भी उसको छूकर सतीश ने शपथ ली थी । आज ही इतनी जल्दी सब कुछ भूलकर, मतवाला बन कर उसके बिछौने पर पड़ा हुआ है तब उसके मुंह की ओर देखेगी कैसे ?'

उसी समय मकान मालकिन के कंठ की आवाज सुनाई पड़ी । वे भी आज मकान में नही थी । आते ही एक मुह से मोक्षदा और विधु का विवरण और उसके साथ ही और जो कुछ भी हुआ था सब सुन लेने पर क्रोध के साथ ऊपर चढ रही थी कि एकाएक सामने जूठे कांटे देखकर स्थिर होकर खड़ी हो गईं । सम्प्रति प्रयाग से सिर मुड़ा आने के बाद से उनके आचार-विचार का अन्त नहीं था । सावित्री को उस अवस्था मे देखकर वे बोली—'सावी, तुझे तो मैं अच्छी स्त्री ही जानती थी—यह सब कैसा अनर्थ का काम है, बता तो बच्ची !'

सावित्री ने संक्षेप में कहा, 'मैं घर में नहीं थी।'

मकान मालिकन ने कहा, 'इस समय तो तू है। अब सफाई करे कौन? मैं? नहीं बच्ची, मेरे मकान में यह सब दुराचार नहीं चलेगा। अपने-अपने कमरे में बैठकर जिसकी जो इच्छा हो करो, मैं कहने न जाऊँगी। लेकिन बाहर बैठकर यह सब काण्ड नहीं होगा। *मैं इस पर पैर रखकर चलूंगी, छुआछूत करके जाति-बिगाडूंगी, यह मैं न कर सकूंगी।'* यह कहकर वे दीवार से सट-सट कर, लांघ-लांघ कर किसी प्रकार अपने उस ओर के कमरे में चली गई। सावित्री फिर खड़ी नहीं रही, जूठन साफ कर सारी जगह धो-पोंछ कर फिर स्नान करके आ गई और एक सूखे कपड़े के लिए कमरे में चली गई। अन्दर जाकर बिस्तर की ओर देखते ही वह भय से, आश्चर्य से चिल्ला उठी, 'मां रे, यह तो विपिन बाबू है!'

शराबी गहरी नीद में डूबा हुआ था—वह जागा नही। बाहर का और कोई यह आवाज सुन नही सका। सावित्री दो कदम पीछे हट आई, उसका सारा शरीर कांपने लगा और माथे में हठात् मूर्छा का लक्षण अनुभव करके दरवाजे की आड़ में माथा रखकर निर्जीव की भांति बैठ गई।

कुछ देर बाद उसकी वह दशा बीत गई अवश्य, लेकिन तो भी सिर ऊपर उठाकर सीधी होकर वह बैठ न सकी। इसके पहले जिस क्षोभ से, जिस दुख से उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा था, जिसके निर्लज्ज आचरण की लज्जा से उसको मर जाने की इच्छा हो रही थी, वह लज्जा सच नही है, यह सतीश नहीं, दूसरा ही है, यह आंखों से देख लेने पर भी उसका वह क्षोभ, वह दुःख मानो तिल मात्र भी नहीं डिगा; वरन् छाती और भारी हो गई, हृदय में मानो और अन्धकार हो उठा। बिस्तर की ओर वह फिर देख भी न सकी। उसकी दोनों आंखों से आंसू टपकने लगे।

हाय रे स्त्री का प्रेम! इतने दुःख में इसी बीच किस समय गुप्त रूप से चुपचाप सतीश के सब अपराध उसने क्षमा कर दिए थे, उसकी सेवा करने के लिए स्वस्थ बना देने की प्यास से वह आर्त हो उठी थी और किस समय उसको देखने, उससे बातचीत करने की भूख से उन्मत्त हो उठी थी—इसकी सूचना शायद उसके अन्तर्यामी को भी नहीं होने पायी थी, अब उस ओर की समस्त आशाओं के एकाएक झूठ में विलीन हो जाने के साथ ही उसका अस्तित्व ही मानो दिशाविहीन शून्यता के बीच डूब गया। ठीक उसी समय उसके द्वार के बाहर बिहारी आकर खड़ा हो गया।

9

सतीश के मन में एक अग्नि-शिखा दिन-रात जलने लगी, इस बात को उसका मन अस्वीकार न कर सका। उस आग से जलता हुआ उसका इतना बलवान शरीर भी निस्तेज होता जा रहा है, इसका स्पष्ट अनुभव करके वह व्याकुल हो उठा। बिहारी को बुलाकर कहा, 'सामान एक बार फिर बांधना पड़ेगा, आज शाम की ट्रेन से घर जाना चाहता हूं।'

बिहारी ने पूछा, 'गांव के घर या पश्चिम के घर पर?

[illegible] कर पर।' कहकर सतीश आवश्यक सामान खरीदने का रूपया उसके हाथ में देकर स्कूल चला गया।

बिहारी का आनन्द समाता ही नहीं था। उसका मकान मेदिनीपुर जिले में है, वह कभी पश्चिम की ओर नहीं गया था। आज उधर ही जाना होगा। बड़े उत्साह के साथ सब सामान इकट्ठा कर गठरी-मोटरी बांधने में लग गया। पांडे ने आकर खाने के लिए पुकारा। बिहारी ने हंसकर कहा, 'महाराज, तुम जाकर खा लो। मेरी रसोई एक ओर रख दो, समय मिला तो देखा जाएगा, अभी तो मुझे मरने का भी समय नहीं है।' पांडेजी अपने मतलब भर की बात सुन और समझ कर चले गए। अन्त की बात उनकी समझ में नहीं आई और न उसे समझने की उन्हें आवश्यकता ही थी।

हाथ का काम समाप्त करके बिहारी बाहर चला गया। बाज़ार जाना होगा। इसके अलावा पहले वाले डेरे में जाकर कम-से-कम महाराज से मिल लेना आवश्यक था। सावित्री की चिन्ता को तो उसने उसी दिन घृणा से दूर कर दिया था। आज भी उसकी बात वह मन में नहीं लाया।

आज सवेरे से ही सतीश का सिर दुखने लगा था। बारह बजने के बाद वह बुखार में चूर होकर लौट आया। बिहारी घर में न था। वही तीन बजे के लगभग अपने ओढ़ने-बिछौने का एक गट्ठर सिर पर लिए हुए पहुंचा। चारों ओर इन्फ्लुएंजा का प्रकोप फैला हुआ था, यह बात याद कर सतीश को भय हुआ। दूसरे दिन ज्वर और बढ़ा और साथ ही सारे शरीर मे दर्द भी। संध्या के बाद सतीश ने चिन्तित मुख से बिहारी से पूछा, 'पूछा, 'यदि ज्वर जल्द न उतरा तो तू अकेला सेवा कर सकेगा न?'

बिहारी ने डबडबाई हुई आंखों से साहस देते हुए कहा, 'भय क्या है बाबू?'

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला, 'सोच रहा हूं बिहारी कि एक बार सावित्री को सूचना क्यों न दे दी जाए? मालूम होता है डाक्टर को भी बुलाना होगा!'

चाहे जिस कारण से हो, सावित्री को बुलाने की बिहारी की बिल्कुल इच्छा न थी, किन्तु मन का भाव छिपाकर मधुर स्वर में कहा, अच्छा, जाता हूं।'

तब सतीश बाट देखने लगा—धीरे-धीरे ज्वर कुछ उतरा, देह का दर्द भी आप-ही-आप घट गया। दो घण्टे बाद बिहारी के अकेले पास आने पर सतीश भयभीत नेत्रों से उसकी ओर केवल देखता रह गया।

बिहारी ने कहा, 'वह तो घर में नहीं है, बाबूजी।'

'घर में नहीं है? तो एक बार उस डेरे में जाकर क्यों न देखता आया?'

बिहारी ने कहा, 'वह वहां अब नहीं जाती। तीन-चार दिन से घर भी नही जाती। कहां गई, कोई नहीं जानता।'

'उसकी मौसी भी नही जानती?'

'नही, वह उससे भी कुछ कह कर नहीं गई है।'

सतीश चुप हो रहा। बिहारी कठिनाई से आंखों के आंसू रोक कर बाहर आ खड़ा हुआ। जो सावित्री का इतिहास वह उसकी मौसी से सुन आया था, और जिस बात पर वह स्वयं भली-भांति विश्वास करता था, आज अपने इस बीमार मालिक के आगे वह उस बात को न खोल सका।

दूसरे दिन डाक्टर आया, दवा देकर चला गया। सतीश ने दवा की शीशी हाथ में लेकर जंगले के बाहर फेंक दी। यह देख, बिहारी फिर एक बार आंसू रोककर सावित्री की खोज में उसके घर पहुंचा। मोक्षदा भोजन बना रही थी। बिहारी ने पूछा, 'क्या आज भी नहीं आयी?'

मोक्षदा हाथ का चीमटा चमका कर चूल्हे की आंच से लाल आंखें घुमाकर बोली, 'नही भाई, नहीं। तुम्हें कितनी बार कहूंगी कि वह अब यहां न आएगी। जब बुरे दिन थे तभी मौसी थी। अब तो उसके अच्छे दिन हैं!'

सतीश के पास लौटकर बिहारी ने दबी हुई आवाज मे कहा, 'आज भी सावित्री लौटकर नहीं आयी है।'

दो दिन बाद बिना खाए ही सतीश का बुखार जाता रहा। आज उसने भोजन भी किया। बिहारी को बुलाकर कहा, 'बस आज ही रवाना हो जाना चाहिए।'

10

उपेन्द्र ने सतीश के रूखे-सूखे और उदास चेहरे की ओर देखकर कहा, 'तुम्हारा चेहरा ही डाक्टरी पढ़ाई की गवाही दे रहा है।'

सतीश ने हंसकर कहा, 'नहीं भैया, मेरे किए नही हुआ।'

उपेन्द्र ने आश्चर्य मे आकर पूछा, 'क्या नही हुआ?'

सतीश ने लज्जित भाव से कहा, 'डाक्टरी की पढ़ाई मुझसे सहन न हुई।'

उपेन्द्र ने स्निग्ध दृष्टि से क्षण भर सतीश के सुन्दर शरीर की ओर देखकर कहा, 'अच्छा ही हुआ। गांव में जाकर व्यर्थ ही न जाने कितने जीवों की हत्या करते, उस पाप से भगवान ने तुम्हें बचा लिया।'

महीने भर के बाद एक दिन उपेन्द्र ने सतीश को बुलाकर कहा, 'सतीश, मेरे साथ कलकत्ते चलोगे?'

सतीश ने हाथ जोड़कर कहा—'मुझे क्षमा करो भैया! कलकत्ता बड़ा अच्छा शहर है, देखने योग्य नगर है, सब कुछ ठीक है, लेकिन, मुझे वहां जाने को न कहो।'

सतीश ने बात कुछ गम्भीरता के साथ नही कही थी, फिर भी उसके स्वर ने उसकी दबी हुई व्यथा को छिपाना अस्वीकार कर दिया। उसकी नकली हंसी व्यथा की विकृति में ऐसी रूपान्तरित होकर दिखाई दी, कि उपेन्द्रनाथ आश्चर्य में पड़कर उसकी ओर देखने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि सतीश, वहां जाकर अवश्य कुछ कर आया है, अब उनसे छिपाता है। क्षण भर के बाद बोले—'अच्छा, जाने दो। तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, मैं अकेला ही चला जाऊंगा।'

उपेन्द्र के मन का भाव ताड़कर सतीश ने कुण्ठित होकर पूछा—'कब जाओगे भैया?'

'आज।'

'आज ही? अच्छा चलो, मैं भी चलूंगा।' कहकर सतीश अपने घर आया—कुछ ही देर बाद वह कलकत्ता जाने के लिए व्यग्र हो उठा, बोला—'बिहारी, फिर एक बार बिस्तर बांध लो, कलकत्ते चलना होगा।'

बिहारी ने कुछ चिन्तित होकर पूछा—'कब बाबू?'

सतीश ने हंसकर कहा—'कब क्या—? आज ही रात की ट्रेन से।'

'अच्छा' कहकर बिहारी मुंह लटकाकर चला गया।

सतीश ने उसका अप्रसन्न मुख देख मन-ही-मन कहा—'बिहारी को कुछ काम-काज नहीं करना पड़ता है, इसी से परिश्रम के भय से यह वहां जाना नहीं चाहता।' लेकिन अन्तर्यामी ने अन्तरिक्ष में कहा—'सतीश, तुम वृद्ध के मन की बात बिल्कुल न जान सके।'

इसी बीच में एक दिन सतीश ने बातों में बिहारी से कहा था—'अच्छा बिहारी, अब तो सावित्री अवश्य लौट आयी होगी, किन्तु क्या तू बता सकता है, कि तब कहां गई थी?'

बिहारी ने संक्षेप में कहा—'नहीं बाबूजी।'

चाहता तो वह बहुत-सी बातें कह सकता था, लेकिन एक दिन सावित्री के मुंह पर वह अपने पुरूषत्व का अभिमान करके चला आया था, इसलिए किसी समय भी वह उस गर्व को नष्ट न कर सका।

जिस दिन कलकत्ते से लौटकर सतीश ने अपने कमरे में आते ही हाथ जोड़कर भरे हुए गले से कहा था—'भगवान, तुम जो करते हो भलाई के लिए करते हो।' उस दिन उसने परमात्मा के कौन-से विशेष कार्य को याद कर धन्यवाद के शब्द कहे थे, वह बात पूछने पर शायद सतीश कुछ उत्तर न दे सकता। फिर कितने बड़े संकट के मुंह से वह निरापद निकल कर आ सका है। कितने मजबूत जाल के फांस को कितने सहज में काटकर वह बच निकलने में समर्थ हुआ है, इसे उसकी बुद्धि समझता था और सौभाग्य को उसने कृतज्ञता के साथ ग्रहण करना भी चाहा था, किन्तु आह! उसके अज्ञान मन ने उस ओर आंख तक उठाकर देखना पसन्द न किया, वह तो औंधा पड़ा निरन्तर रो रहा था। विवेक की ताड़ना पा, सतीश पहले की तरह के ही समान अपने बचपन के बन्धु-बान्धवो से मिलकर; नाटक-थियेटर, गान-वाद्य, अखाड़े आदि में शामिल होकर अपने दिन बिताना चाहता था; पर मन की करूण पुकार सुनते ही वह अधीर हो उठता और जी खोलकर किसी काम में योग न दे सकता था। सहसा कलकत्ते जाने की बात सामने आते ही विद्रोही मनोवृत्ति धूलिशय्या छोड़ कर उठ बैठी और आगे के भले-बुरे की ओर ध्यान न दे पैर बढ़ा कर खड़ी हो गई। उसी रात को कलकत्ते के लिए उपेन्द्र और सतीश ऐक्सप्रेस-गाड़ी के एक सेकेन्ड क्लास के डिब्बे में जा बैठे।

सीटी देकर गाड़ी के प्लेटफार्म छोड़ देने पर उपेन्द्रनाथ ने जंगले से मुंह खीच लिया और बिस्तर पर चित्त पड़कर सो रहे, किन्तु सतीश जंगले से बाहर ही देखता रहा।

ऐक्सप्रेस-गाडी सब स्टेशनों पर नहीं ठहरती। नदी, नाले, गांव, रास्तों को काटती, हड़हड़ाती चली जा रही है और उसकी चाल की तेजी पर मुहर लगाने के लिए ही शायद पास के पेड़-पौधे पलक मारते अदृश्य हुए जा रहे हैं। सुदूर में वृक्षों और बांसों ने मिलकर अन्धकार की एक काली टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-सी खीच रखी है और उसके नीचे नदी की शुभ्र जल-रेखा जंगल के नीले कांच के भीतर से दिखाई पड़ रही है। बाहर वृक्ष-लताओं, खेतों, मैदानों, जंगल-झाड़ियों और बड़े-बड़े जलहीन गड्ढों में—सर्वत्र धुंधली निःशब्द ज्योत्स्ना बिखरी हुई पड़ी है। सतीश की आंखों में जल भर आया। इस मार्ग से वह कितनी ही

बार आया-गया है, इस निस्तब्ध शान्त प्रवृति को कितनी ही बार उसने इसी प्रकार मलीन ज्योत्स्ना में प्लावित देखा है, किन्तु किसी दिन वह इस तरह उसकी आंखों में समाई नहीं थी। उसे जान पड़ने लगा, मानो सभी विच्छिन्न हैं, निर्लिप्त हैं और मृत हैं। कोई किसी के लिए व्याकुल नहीं, कोई किसी का मुंह ताकता हुआ बैठा नहीं है। सभी स्थिर, सभी उद्वेगशून्य, सभी अपने आप पूर्णरूप में विराजमान हैं, इस निर्विकार, उदासीन धरिणी की ओर देखने में उसे दु:ख-सा मालूम होने लगा। वह आंखें पोंछकर सरक आया और बैंच पर चित्त होकर सो रहा। लेकिन कुछ ही देर बाद ट्रंक खोल, एक बांसुरी निकाल उपेन्द्र को लक्ष्य कर धीरे-धीरे बोला, 'गाड़ी की आवाज यदि तुम्हारी नींद में विघ्न नहीं डालती, तो बांसुरी का शब्द भी न डालेगा। मुझे नींद नहीं आती।' कहकर वह फिर एक बार खिड़की के पास सरककर बैठ गया और बांसुरी बजाने लगा।

उपेन्द्र चुपचाप सोता रहा। भगवान ने सतीश को गाने को कण्ठ और बजाने को हाथ दिए थे। इस विषय में उन्होंने कृपणता नहीं की थी। बचपन से आरम्भ करके उसने यही विद्या सीखी थी। सतीश बांसुरी बजाने लगा। उस शुद्ध, सुन्दर, अनिर्वचनीय संगीत को समझने वाला कोई आदमी नहीं था, पर बाहर आकाश का चांद मानो उस पर मुग्ध होकर उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ चलने लगा और पृथ्वी पर सोई हुई ज्योत्स्ना की नींद टूट गयी। धीरे-धीरे गाड़ी की चाल धीमी पडी। मालूम हुआ कि स्टेशन पास आ गया, उसने बासुरी रख दी।

उपेन्द्र जम्हाई लेकर उठ बैठे, बोले, 'यदि कुछ सीखना ही होगा, तो बांसुरी बजाना ही सीखूंगा। उस दिन तुम्हारा सितार बजाना सुनकर झूठ-मूठ एक सितार खरीद डाला, रूपया पानी में फेंक दिया।'

सतीश ने हंसकर कहा, भैया, क्षमा करो, बस इतने से ही बांसुरी भी मत खरीद लेना। घर में बैठकर बांसुरी सीखने की चेष्टा करने से मुहल्ले भरके लोग ऊब उठेंगे।' उपेन्द्रनाथ लेशमात्र भी कुण्ठित न हो, बोले, 'अच्छी बात है, सीखूंगा तो तुम्हारे ही घर बैठकर सीखूंगा।'

दोनों जोर से हंस पड़े।

दूसरे दिन दोपहर के लगभग गाड़ी हावड़ा पहुंचने पर उपेन्द्रनाथ ने पूछा—'तुम कहां जाओगे?'

सतीश ने आश्चर्य में आकर पूछा—'यह क्या? ले तुम आए और पूछते मुझसे हो कि मैं कहां जाऊंगा?'

'तो तुम्हारे जाने के लिए कोई स्थान नहीं है?'

'स्थान क्यों नहीं है? जहां तुम—वहां मैं?'

इस सम्बन्ध में और कुछ बातचीत न हुई।

स्टेशन पर उतरते ही यूरोपियन पोशाक में एक बंगाली साहब ने उपेन्द्र से हाथ मिलाया। ये उपेन्द्र के मित्र बैरिस्टर ज्योतिषराय हैं। तार पाकर लेने आए थे। बाहर उनकी गाड़ी खड़ी थी। जो थोड़ा सामान था, वह कुली के गाड़ी पर चढ़ा देने पर तीनों आदमी भीतर बैठे। बिहारी कोच-बक्स पर बैठ गया। कोचवान ने गाड़ी चलाई और बहुत देर बाद, बहुत से मार्ग और गलियों को पारकर एक आलीशान मकान के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई। तीनों आदमी उतर पड़े।

11

संध्या होने में देर नहीं है। उपेन्द्रनाथ और सतीश पथरियाघाट्टा की एक बड़ी तंग गली के मोड़ पर आ खड़े हुए।

उपेन्द्र ने कहा—'मैं समझता हूं अवश्य यही गली है।'

सतीश ने सन्देह प्रगट किया—'इस गली में वे नहीं रह सकते, यह कदापि नहीं है। फटी दीवार के कोने पर टीन का वह जो टुकड़ा लटक रहा है, संभव है इसमें किसी दिन गली का नाम लिखा हुआ हो, अब पढ़ा नहीं जाता। ठीक जाने बिना इस पतली गली में जाना व्यर्थ है। यह गली मुझे तो पातालपुरी की राह-सी जान पड़ती है।'

उपेन्द्रनाथ ने हंसकर कहा—'अच्छा तो तुम यहीं रहो, मैं जाकर देख आता हूं।'

सतीश ने पहले बाधा देने का प्रयत्न किया, फिर उपेन्द्रनाथ के पीछे-पीछे चल पड़ा, बोला—'भैया, मेरे जैसा अवारा हाल भी सांझ के बाद यहां आने का साहस नहीं करता, पर आप तो निस्संकोच भाव से जा रहे हैं।'

उपेन्द्र ने हंसकर कहा—'क्या आवारागर्दी में आयु बिताने वालों में भले मानसों से अधिक साहस होता है?'

सतीश उस बात का प्रतिवाद न कर अत्यन्त सावधानी से मार्ग देखकर चलने लगा। पैरों के नीचे ही बदबूदार कीच से भरी खुली नाली थी। सतीश को पग-पग पर उसमें गिर पड़ने का भय हो रहा था। एक स्थान पर जाकर गली बहुत तंग और अंधेरी हो गयी थी। सतीश ने पीछे से उपेन्द्रनाथ के कपड़े का कोना खींचकर कहा—'भैया, कर क्या रहे हो? क्यों नाहक जान दे रहे हो?'

उपेन्द्रनाथ ने हंसकर कहा—'अब मुझे ठीक याद आ गया। बस, एक ही मकान के बाद 13 नवम्बर का मकान हैं। आठ बरस हुए, एक दिन, केवल एक बार यहां आया था, इसी से पहले पहचान न सका था। अब ठीक याद आ गया, यही मार्ग है।

सतीश ने विश्वास नहीं किया। बोला—'मार्ग हो भी सकता है, लेकिन तुम्हारे हमारे लिए नहीं। जिनके लिए मार्ग बना है, यदि उनमें से किसी के साथ हमें टकराने की नौबत आ गयी, तो व्यर्थ इस रात को भी हमें स्नान करना पड़ेगा। इस समय चलो लौट चलें।'

उपेन्द्र ने उत्तर नहीं दिया। वे सतीश का हाथ पकड़कर ले चले और जरा आगे बढ़कर एक मकान के सामने खड़े होकर बोले—'तुम सिगरेट पीते हो, जेब में दियासलाई होगी, एक बार जलाकर देखो, कितने नम्बर का मकान है?'

सतीश ने दियासलाई जलाकर देखा—'कहा, 'ठीक तरह पढ़ा नहीं गया, लेकिन दरवाजे पर खल्ली से 13 नवम्बर लिखा है। मालूम होता है, तुम्हारी बात ठीक है। लेकिन मैं पूछता हूं कि मकान का नम्बर 13 हो या 53, यहां तुम्हें कौन-सा काम है?'

उपेन्द्रनाथ उत्तर न देकर पुकारने लगे—'हारान! हारानचन्द्र!!' ऊपर-नीचे बाहर-भीतर चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था, कहीं किसी की आहट न थी। सतीश भयभीत हो उठा। उपेन्द्रनाथ फिर पुकारने लगे।

बड़ी देर बाद ऊपर का जंगला खुला और साथ ही किसी स्त्री की आवाज आयी—'कौन है?'

उपेन्द्र ने कहा—'द्वार खोलने को कह दीजिए। हारान भैया कहां है?'

'आती हूं, जरा ठहरिये।'

दरवाजा खुलने के शब्द के साथ-ही-साथ धीमी रोशनी की रेखा पास में पड़ी। उपेन्द्र किवाड़ को दबा चौखट के अन्दर पैर रखते ही स्तम्भित हो रहे। द्वार खोलने वाली मिट्टी के तेल की डिबरी हाथ में लिए एक किनारे खड़ी है। सिर पर आंचल के बीच से यत्नपूर्वक बनाए हुए जुड़े का एक भाग दिखाई दे रहा है। देख पड़ा कि उसका एक भी बाल इधर-उधर नहीं हुआ हैं। निर्दोष मुख पर, हाथ की रोशनी में दोनों भौंहों के बीच एक बिन्दी जगमगा उठी और इसी के कुछ नीचे की ओर झुके हुए चंचल नेत्रों से बिजली दौड़ गयी, चारों ओर से उस घने अन्धकार में उसकी अनोखी ज्योति ने क्षण भर के लिए दोनों को चौंका दिया। सतीश ने स्पष्ट देखा कि होंठों के छौरों पर हास्य की रेखा संकोच के धक्के से बराबर आकर लौट रही है। यह देख, उसने उपेन्द्र की पीठ को धीरे से छू दिया। उपेन्द्रनाथ के हृदय को ठेस-सी लगी। कुछ चौंक कर कुछ घबराकर उन्होंने पूछा—'हारान बाबू कहां हैं?'

स्त्री ने कहा—'ऊपर हैं। चल फिर नहीं सकते। मां भी सात-आठ दिनों से खाट पर पड़ी हैं, घर में केवल मैं ही अच्छी हूं। आप ही उपेन्द्र बाबू हैं? हम लोगों को कल आपके आने की आशा थी, इसीसे तैयार न थी रसोईघर में इधर की आवाज शीघ्र नहीं पहुंचती, बहुत पुकारना पड़ता है। ऊपर आइये, बड़ी सर्दी है,' कहकर मार्ग दिखा वह सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। दो-तीन सीढ़ियां चढ़ मुंह फेर और हाथ की रोशनी नीची कर बोली, 'देखियेगा, सीढ़ी की बहुत-सी ईंटें निकल गई हैं।' उन्होंने देखते ही जान लिया कि बात ठीक है और सावधानी से चढ़ने लगे।

दो तल्ला मकान था। पहले ऊपरी भाग में पांच-छः कमरे थे, उनमें से दो तो गिर ही पड़े थे और एक आगामी वर्षा में गिरने को तैयार था। शेष तीनों में से सामने वाले कमरे में तीनों जनों ने प्रवेश किया। अन्दर जाते ही उन्हें असमय में रोगी के घर पहुंचने का कुछ पछतावा हुआ। उस कमरे में चूहे फटे-पुराने तोशक-तकियों से रूई निकाल सारे कमरे में बिखेर मौज से दौड़ लगा रहे थे, एकाएक प्रकाश और आदमियों के आ पहुंचने से वे इधर-उधर छिपने लगा। कमरे में टूटी मेजें, कुर्सियां, चौकियां, पाटियां, फूटे कनस्तर, खाली शीशियां, बोतलें और भी न मालूम क्या-क्या चीजें चारों ओर बिखरी थीं।

उसी में एक किनारे एक चौकी भी बिछी थी। फटे,-पुराने गद्दे, तोशक और तकियों को मोड़-मोड़कर जबदस्ती एक किनारे समेट कर चटाई बिछाई थी। वह कमरा आये-गये अतिथियों को बैठाने के लिए था।

स्त्रभ ने डिबरी दीवट पर रख कर कहा—'जरा ठहरिये; मैं सूचना देती हूं।' उसके यह कहकर बाहर जाते ही सतीश जूते पहने हुए अतिथियों के उस आसन पर उछल कर खड़ा हो गया।

उपेन्द्रनाथ संकोच से बोल उठे—'ऐ! ऐ यह क्या कर रहे हो?'

सतीश फिसफिसाता हुआ बोला—'जान बचाऊं कि शिष्टाचार देखूं?' अरे भैया! देखते नहीं हो, पैरों के पास रोशनी देखकर सांप-बिच्छू उछलकर चाकी पर चढ़ गये।

उस चौकी पर दो आदमियों के भी अच्छी तरह खड़े होने हो स्थान नहीं था। वे

दोनों अभी आपस में खड़े होने के लिए धक्कम-धुक्की कर रहे थे कि इसी समय वह स्त्री लौट आई और किवाड़ के सामने खड़ी हो, खिलखिला कर हंस पड़ी। इनके भयभीत होने की बात वह समझ गई थी। बोली—'यह मेरे ससुरजी का बैठकखाना है, आप लोग इसका यों अपमान कर रहे हैं!'

उपेन्द्रनाथ सकुचाकर झटपट उतर पड़े और सतीश पर झुंझलाकर कहने लगे 'इसने ऐसा डरा दिया कि..'

पर सतीश न उतरा वरन् विनयपूर्वक बोला—'उपेन्द्र भैया, मैंने कुछ शौक से भय नहीं दिखाया! मैं जानता हूं कि मेरी विद्या, चाणक्य के श्लोकों तक ही सीमित है अधिक नहीं है, लेकिन इतना मैंने अवश्य सीखा है कि आत्मरक्षा सर्वप्रथम कर्म और सर्वश्रेष्ठ धर्म है।' उस स्त्री की ओर देख कर बोला, 'अच्छा; आप ही कहिए, आत्मरक्षा के लिए एक निरपाद स्थान चुन लेना क्या अनुचित है? आपके ससुर जी की बैठक का अपमान करने का हमारा साहस नहीं, बल्कि यथेष्ठ सम्मान करके ही आपके आश्रित प्रजाजनों को स्वच्छन्द बिचरने के लिए सारा स्थान छोड़ मैं केवल इतने से स्थान में खड़ा हुआ हूं।'

तीनों ही हंस पड़े। इस हास-परिहास ने इस दरिद्र गृहलक्ष्मी को दुःख नहीं दिया, बल्कि इसके भीतर जो सरलता और समवेदना छिपी हुई थी, वह युवती सहज ही उसे समझ गई है, यह बात उसके हंसते हुए चेहरे को देखकर ही उपेन्द्र समझ गए। इससे उन्हें एक सन्तोष हुआ। उसके मुख की ओर देख, वे मुस्कराकर बोले, 'मैं समझता हूं आपके सामने आपके प्रजाजन उस पर अत्याचार करने का साहस कभी न करेंगे। वह अब नीचे उतर आए, तो कोई हानि नहीं?"

'कुछ भी नहीं'—कह डिबरी हाथ में उठा, वधू ने सतीश की ओर देख संसार को मोहित करने वाली हंसी हंस कर कहा, 'अब निर्भय हो राजदर्शन को चलिये। प्रजाजन कुछ भी अत्याचार नहीं करेंगे।'

इस थोड़े से हास-परिहास ने उस अपरिचित नारी को परिचित बनाने के रास्ते में बहुत ही आगे बढ़ा दिया और तीनो ही व्यक्ति प्रसन्न मुख से कमरे से बाहर निकले।

उपेन्द्र और सतीश हंसते हुए एक दूसरे कमरे मे जाते ही कांपकर खड़े हो गये। क्रोधी गुरू जी की आकस्मिक चपत खाकर हंसते हुए बालक के मुंह का भाव जिस प्रकार सहसा बदल जाता हैं इन दोनों आदमियों की हंसी भी उसी प्रकार क्षण भर में लोप हो गई और चेहरे पर स्याही दौड़ गई।

थोड़ी देर बाद वह भाव दूर हो जाने पर खाट के समीप जाकर पुकारा, 'हारान भैया!'

हारान मुर्दे की तरह पड़े थे, स्फुट स्वर में बोले, 'आओ भाई, आओ। अब उठा-बैठा भी नहीं जाता, तुम्हें तकलीफ दी।' इतना कहकर वे हांफने लगे।

उपेन्द्रनाथ बिछौने के एक किनारे बैठ गये। उसकी आंखों में आंसू भर आये और उनकी छाती की हड्डियों तक को कंपाकर कर एक लम्बी गाढ़ी सांस मानो कंठ तक आकर रूक गई। बात करने का साहस न हुआ—दांत से दबा, कठोर बन, बैठे रहे। सतीश एक बड़ी-सी सन्दूक पर चुपचाप बैठ गया।

मैले और फटे-पुराने बिस्तर के सिराहने की ओर मिट्टी का दीपक टिमटिमा रहा था, हारान का मृतप्रायः शरीर स्थिर पड़ा था। सूर्य के उत्ताप और मुक्त आकाश की वायु से

वंचित इस कमरे की नस-नस में जो अन्धकार धंसा हुआ था वह जाड़े की उस रात में दीपक का क्षीण प्रकाश पाकर मानो कोढ़ के समान उसकी दीवारों पर फूट निकला था। दिन-रात बन्द रहने वाले इस घर की दूषित, बंधी हुई, घिरी हुई वायु आत्मघाती के मुख से निकले हुए विषाक्त फेन की भांति फैल कर मानो सांस बन्द किया चाहती थी। दरवाजे पर मानो यम के दूत खड़े थे। चारों ओर देख-देखकर सतीश बारम्बार कांपने लगा। उसे जान पड़ता था कि वह यदि चिल्लाकर बाहर न निकल भागेगा तो उसकी जान नहीं थी। यहां आदमी जीवित कैसे रह सकता है? पास ही बहू खड़ी थी। उसकी ओर देखते ही वह और भी डर गया। उनका वह अतुल रूप कहां गया? वह हंसी कहां गई? सतीश की आंखों में वह प्रेत-लोक की पिचासिनी-सी प्रतीत हुई। वह सोचने लगा, जिसके पति की यह दशा है, वह हंसती कैसे है, हंसी-मजाक में भाग कैसे लेती है, बात क्यों संवारती है कुछ देर के लिए उसका हृदय स्त्री-जाति के प्रति घृणा से भर गया।'

इसी समय हारान ने पुकारा, 'किरण, उपेन्द्र आए हैं, क्या यह मां को मालूम हैं?'

बहू पास आकर, झुक कर धीरे से बोली, 'मां सो रही हैं। डाक्टर साहब कह गये हैं, नींद से उन्हें जगाया न जाए।'

हारान ने मुंह बिगाड़ा, चिल्ला कर कहा, 'भाड़ में जाए डाक्टर। तुम जाओ! मां से कहो।'

उपेन्द्रनाथ पास ही बैठे सब सुन रहे थे, व्यथित होकर बोल उठे, हारान भैया, आज रात को उन्हें जगाने की क्या आवश्यकता है? कल सवेरे कह दिया जायेगा।'

उपेन्द्र समझ गए कि बहुत दिनों तक बीमार रहने से हारान का स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया है। अतः उस निरापराध, सेवापरायणा स्त्री के अकारण अपमान से दुःख का अनुभव कर कुछ सन्तोष दिलाने की इच्छा से उन्होने एक बार उसके मुंह की ओर देखा पर कुछ दिखलाई न दिया। किरणमयी के झुके हुए मुख पर दीपक का प्रकाश नहीं पड़ता था। कुछ देर तक यों ही रह, वह तेजी से घर के बाहर चला गई। उपेन्द्रनाथ उदास होकर बैठे रहे और हारानचन्द्र हांफने लगे। वह सुनसान कमरा सतीश को और भी भयंकर दीखने लगा। जरा देर बाद ही हारान ने उपेन्द्रनाथ को छूकर पास आने का संकेत करते हुए अत्यन्त क्षीण कंठ से पूछा, 'सात-आठ बरस से बाद भेंट हुई हैं। इस बीच में क्या एक बार भी तुम्हारा इधर आना नहीं हुआ?'

इस बीच में बहुत बार उपेन्द्रनाथ को कलकत्ते आना पड़ा था, लेकिन इस समय वे इसे स्वीकार न कर सके। बोले, 'भाई तुम्हें बीमारी क्या हैं?'

हारान ने कहा, 'बुखार, खांसी—यही सब। अब उसकी चर्चा व्यर्थ है, अन्तिम घड़ियां गिन रहा हूं।'

उधर सन्दूक पर बैठे सतीश ने मन-ही-मन सिर हिलाया।

हारान ने कहा, 'मुझे भी तुम्हारी बात याद न पड़ी, समय पर याद आती तो काम बनता।' कुछ देर चुप रहकर फिर बोले, 'काम क्या होता है? खैर, उन बातों को जाने दो। हां भाई! एक काम करो। मेरा दो हजार का जीवन-बीमा है और यह टूटा-फूटा मकान। तुम वकील हो, एक ऐसी लिखा-पढ़ी कर दो कि जिसमें सब चीजें बिल्कुल तुम्हारे हाथ में रहें। उसके बाद तुम रहे और मेरी मां?'

उपेन्द्र ने कहा, 'और तुम्हारी स्त्री ?'

'मेरी स्त्री किरण ! हां, वह तो है ही। उसके मां-बाप को जीवित नहीं हैं, उसे भी देखना।'

उपेन्द्रनाथ स्थिर नेत्रों से हारान के मुख की ओर देखते हुए सोचने लगे।

सतीश ने जेब घड़ी निकाल खड़े होकर कहा, 'भैया, रात के दस बज चुके हैं, वहां वे लोग घबराते होंगे।'

हारान ने उसकी ओर देखकर कहा, 'उपेन्द्र, ये कौन हैं ?'

'मेरे मित्र हैं, साथ ही कलकत्ते आये हैं। तो भाई, इस समय विदा होता हूं, कल सवेरे फिर आऊंगा।'

'नहीं, कल नहीं, सब कागज ठीक करके परसों आओ। मेरे पास जो कुछ है, उसके बारे में मुझे जो कुछ कहना है उसी दिन कह दूंगा, यहां कहां ठहर हो ?

'शहर में एक मित्र के यहां।'

जाने के लिए प्रस्तुत होने पर हारान ने पुकारा—'किरण !'

उपेन्द्रनाथ ने झट रोककर कहा, 'भाई रहने दो। सतीश की जेब में दियासलाई है। हम लोग मजे में चले जायेंगे। वे काम में लगी होंगी, क्यों कष्ट दोगे।'

इस पर हारान ने क्या कहा, कुछ भी किसी की समझ में न आया। किवाड़ खोलते ही सतीश को मालूम हुआ, जैसे कोई अन्धेरे में जल्दी से हट रहा हो। वह भन से दो कदम पीछे हट गया।

उपेन्द्रनाथ ने पूछा—'क्या हुआ सतीश ?

'कुछ नहीं, तुम आओ'— इतना कह उपेन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर वह बरामदे में खड़ा हुआ। काली अन्धेरी रात थी। एक तो वैसे ही आकाश में बादल छाये हुए थे, उस पर चारों ओर के ऊंचे मकानों ने उस अन्धकार को जबरदस्ती नीचे की तंग सीढ़ियों पर और टूटे-फूटे खुले बरामदे के भीतर एकदम से ठूंस-ठूंस कर भर दिया था। दोनों आदमियों ने टटोलते हुए सीढ़ी के पास आते ही देखा, नीचे मिट्टी के तेल की वही ढिवरी लिए किरणमयी मौन होकर बैठी है। इनके आते ही खड़ी होकर बोली—'रोशनी दिखा रही हूं, सावधानी से उतर आइए। आप ही लोगों के लिए बैठी हूं।'

इस अन्धेरी ठण्डी रात में, इस कड़ी सर्दी में, गीली जमीन पर अकेली उस बेचारी स्त्री को अपनी प्रतीक्षा में बैठी देख और उसके निश्चित वैधव्य की बात सोचकर उपेन्द्रनाथ की आंखों में आंसू भर आये।

मुख्य द्वार उस समय भी बन्द न हुआ था। नीचे उतरते ही सतीश एकदम से गली में आकर खड़ा हो गया, किन्तु उपेन्द्रनाथ ने पीछे मुड़कर देखा और वे खड़े गए। उन्होंने देखा कि किरणमयी अपने दोनों सकरूण नेत्र उनके मुंह पर गड़ा कर एक अजीव ढंग से खड़ी है। क्षण भर के लिए उपेन्द्रनाथ स्तब्ध होकर निश्चल खड़े रहे।

किरण ने पूछा—'उपेन्द्रनाथ, आप हमलोगों के कौन है।'

'उपेन्द्र की समझ में न आया कि इस प्रश्न का क्या उत्तर दे। उसने फिर समझा कर कहा—'आप क्या मेरे स्वामी के कोई सगे-सम्बन्धी होते हैं ? इस घर में आये इतने दिन हो गये, किसी दिन, आपका नाम न तो उनसे सुना, न मां से ही सुना था, केवल जिस दिन

आपको चिट्ठी लिखी गई थी, उसी दिन सुना था, इसी से पूछ रही हूं।'

बाहर से सतीश ने पुकारा—'उपेन्द्र भैया, आओ भी !

उपेन्द्र ने कहा, 'नहीं, सम्बन्धी नहीं हूं, विशेष मित्र हूं। मेरे पिता जी जब नोआखाली में थे, तब हारान भाई के पिता भी वही सरकारी स्कूल में मास्टरी करते थे और मुझे घर पर भी पढ़ाते थे। हम दोनों बहुत दिन एक साथ पढ़ते रहे हैं।'

किरणमयी जरा हंसकर कहा—'ओ—यह बात है ! इसीलिए लिखा, पढ़ा है ! अच्छा, उपेन्द्र बाबू, आप तो सब कुछ अपने नाम लिख लेंगे न ?'

देर होते देखकर सतीश फिर दरवाजे के पास आया। उसने कहा, हां, यही तो निश्चय हुआ है।'

हारान के कमरे से बाहर निकलते समय कौन द्वार पर से हट गया था, यह उसने पहले ही समझ लिया था।

बहू ने सतीश की ओर घूमकर देखा और कहा, 'अच्छा आप भी हैं ! बहुत अच्छा ! बहुत ठीक ! इतने दिन इतना कष्ट सहकर भी ज्यों-त्यों दोनों समय दो मुट्ठी अन्न मिल जाता था—अब देखती हूं कि भीख मांगनी होगी। अच्छी बात है, यही होगा, आप ही लोग सब कुछ ले लीजिए।'

उपेन्दनाथ स्तब्ध हो गए।

सतीश ने उत्तर दिया, 'जिसकी चीज है, वही यदि दे जाये तो इसमें किसी और को कुछ बोलने का अधिकार ही क्या है ?

किरणमयी की दोनों आँखें आग के समान जल उठीं, बोली—'पर मुझे अधिकार है ! मरते समय मनुष्य को बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मेरे स्वामी की भी यही दशा हुई है, लेकिन आप लोग लिखाकर ले लेने वाले कौन होते हैं ?'

सतीश बिना किसी संकोच के तुरन्त बोल उठा, 'यह तो नहीं मालूम लेकिन हारान बाबू में आज भी बुद्धि है, मेरी आत्मा इस बात की साक्षी दे रही है।'

किरणमयी ने बड़े ताने से उत्तर दिया, 'वाह री साक्षी ! क्या कहना है ! लोग कहा करते है... । खैर, लोगों की बात जाने दीजिये।'उपेन्द्रनाथ की ओर देखकर बोली, 'लेकिन मैं यह पूछती हूं कि मैं कैसे जानूं किस अन्त में आप भीख न मंगवायेंगे— कैसे विश्वास करूं कि आप धोखा नहीं देंगे ?

इतनी बड़ी चोटी अचानक उपेन्द्र को असह्य हुई। वे कुछ कहना चाहते थे लेकिन न कहकर चुपचाप अपने को संभालने लगे।

सतीश ने मृदु स्वर में कहा, 'अजी, भाभी जी आपको वे सब बातें जानने की आवश्यकता भी नही।

किरणमयी तुरन्त उत्तर न दे सकी। इस ताने भरे सम्बोधन की ढिठाई से वह चौंक पड़ी थी। कुछ देर चुप रहकर बोली,'आवश्यकता क्यों नहीं है ?'

सतीश ने कहा, 'नही। अपना अधिकार आप नष्ट न करतीं तो हारान बाबू को, इतनी परेशानी ही क्यों उठानी पड़ती ? इतनी रात को व्यर्थ का टंटा न बढ़ाइये, जरा सोचकर देखिये।'

तेज कार्बोलिक गन्ध से सांप जिस प्रकार फैलाया हुआ फन बात की बात में समेट,

चोट करने के बाजय अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगता है, यह प्रतिमा, यह कौशलमयी, तेजस्वनी युवती पलक मारते उसी प्रकार सिमट-सी गई। सूखे मुख से विह्वल की भांति देखकर बोली, 'जरा सुनूं भी तो कि मेरे विषय में उन्होंने क्या कहा?'

उपेन्द्रनाथ अब चुप न रह सके। इस गर्विता नारी का सन्देह, भय, मान उन्हें बरछी के समान बेधते रहने पर भी उनका उदार अन्तःकरण सतीश की इस जासूसी के विरूद्ध बिगड़ खड़ा हुआ। वह अनुचित उत्तेजना भरकर कुछ गुप्त रहस्य खोजकर बाहर निकालने की चेष्टा कर रहा था, यह उन्होंने समझ लिया। सतीश को रोककर किरणमयी से बोले, 'क्यों आप सतीश के पागलपन पर ध्यान देकर व्यर्थ घबरा रही हैं? स्वामी के धन से स्त्री को बंचित करने का अधिकार किसी को नहीं है। आप निश्चिन्त रहें। मेरी समझ में तो आप लोगों के विशेष सुभीते के विचार से ही हारान बाबू ने लिखा-पढ़ी की बात उठायी है, पर वे जो कुछ भी करेंगे आपकी सलाह को लेकर करेंगे। इसके बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। रात बहुत हो गई है। द्वार बन्द कीजिए। चलो सतीश, देर न करो' सतीश को ढकेल गली में खड़े हो, मुस्कराकर किरण से बोले, 'कल-परसों फिर भेंट होगी। नमस्कार!'

12

उस जनशून्य गली से निकल कर दोनों जन किराये की एक गाड़ी में बैठ गये और उसकी खिड़कियों से सड़क पर आने-जाने वालों की ओर चुपचाप देखने लगे। बातें करने योग्य अवस्था दोनों में से किसी के मन की न थी। उपेन्द्र व्यथित मन से सोचने लगा। कल ही घर लौट जाऊंगा। भला हो या बुरा, इस विषय में मुझे हाथ डालने की आवश्यकता नहीं। केवल लौटने के पहले यह देख आंऊगा कि हारान भाई का इलाज ठीक हो रहा या नहीं। फिर कुछ नहीं, आठ साल तक जो आदमी मन के बाहर पड़ा था, वह बाहर ही पड़ा रहेगा। यह सोचकर देह पर उड़कर आ बैठने वाले कीड़े-मकोड़े के समान इस मोह बढ़ाने वाली चिन्ता को जोर से दूर फेंककर उपेन्द्र गाड़ी के अन्दर ही एक बार हिल-डुल कर बैठे। सतीश की ओर देखा, वह चीनापुर रोड़ के दो मंजिल मकानों के अन्धेरे बरामदे की ओर देख रहा है। बोले, 'सतीश, एक चुरूट तो दो। बड़ी सर्दी है।'

सतीश ने पाकेट से चुरूट और सलाई की डिब्बी निकालकर हाथ में दी और उसी प्रकार बाहर को देखता रहा कुछ बोला नहीं।

उपेन्द्र ने चुरूट सुलगाकर बारम्बार धुंआ फेंकते हुए सतीश को सुनाकर कहा—'भीतर का अन्धकार इस धुंए के समान ही उड़ जाये!'

सतीश हुंकारी तक न भर, पूर्ववत् बैठा रहा।

घड़घड़ाती हुई गाड़ी परिचित अपरिचित राह, मकान, दुकान, बाजार पार करती हुई चलने लगी। चुरूट जलकर राख हो गई, उसका धुंआ शून्य में विलीन हो गया। फिर भी दोनों आदमी दो तरफ बैठे ज्यों के त्यों देखते रहे। उपेन्द्र ने मन-ही-मन सोचा, सतीश अवश्य ये ही सब बातें सोच रहा है और हो न हो कुछ निश्चय भी कर रहा है, नहीं तो वह इतनी देर चुप रहने वाला जीव नहीं है। परन्तु वह क्या सोच रहा है, इसका अनुमान

करने पर, प्रयत्न करने पर उपेन्द्रनाथ को शुरू से आखिर तक सारी बातें याद गयीं।

वे भीतर ही भीतर कांप उठे और मन-ही-बोले—'आह! बेचारे के घर की कैसी शोचनीय दशा हो रही है?' उन्होंने वहां जो कुछ देखा-सुना था, सबका एक-न-एक कारण स्थिर किया, पर सतीश क्यों बेचारी स्त्री के साथ इस प्रकार कमर कसकर लड़ने को तैयार हो गया—इसका कुछ भी कारण उन्हें ढूंढे न मिला। सतीशा अशिक्षित है, पर नासमझ नहीं। सरस्वती देवी ने अगर उसे धोखा दिया है, तो चाणक्य महाराज ने उसकी कमी निकाल दी है। उपेन्द्र यदि न जानते होते, तो उसके व्यवहार से उतना दुःख नहीं मानते।

हारान के दिल के प्रस्ताव में एक विचित्रता थी, एक विशेषता थी, इसी से उपेन्द्र थोड़ी ही देर में बहुत बातों का निर्णय कर सके थे। लंगोटिया मित्र की जीवित मृत देह के पास बैठकर उन्होंने विचारा था कि इन दोनों अनाथ अबलाओं का जन्म भर भरण-पोषण और रक्षा करूंगा। किसी अच्छे से तीर्थस्थान में एक छोटा-सा मकान ले लूंगा। वह पेड़-पौधों से घिरा हुआ शान्त आश्रम के समान होगा और उसके चारों ओर शिष्ट, सभ्य, भले आदमियों के घर होंगे। गायों की सेवा कर, अतिथि-ब्राह्मणों की पूजा कर, व्रत कर, व्रत-उपवास आदि कर इन दोनों स्त्रियों के दिन जिस सुख-शान्ति के साथ बीतने लगेंगे उसका एक मधुर काल्पनिक चित्र उपेन्द्र ने अपने मन में बना लिया। उस कल्पित चित्र के एक कोने में, पेड़-पौधों की आड़ में उसके अनजाने में अपना ही चित्र अंकित कर दिया। इसी समय किरणमयी द्वारा आरोपित कुत्सित अभियोग और उसकी संतप्त क्रुद्ध श्वांस-वायु बवंडर के समान उस चित्र के चिन्ह तक को न जाने कहां उड़ा ले गई! उपेन्द्रनाथ अब मौन न रह सके। पुकार कर बोले—'सतीश, क्या सोच रहे हो?'

सतीश ने उपेन्द्र की ओर देखकर कहा—'उपेन्द्र भैया, क्या सोच रहा हूं, जानते हो लड़कपन में एक बंगला-उपन्यास पढ़ा था, उसी की सोच रहा हूं, !

उपेन्द्र ने पूछा—'कौन-सा उपन्यास?'

सतीश ने कहा—'नाम याद नहीं है, लेखक का नाम भी याद नहीं आता। पर लेखक था कोई बड़ा नामी आदमी। उपन्यास की एक घटना की ही बात मैं सोच रहा था। वह बड़ी सुन्दर घटना है—बड़ी विचित्र!'

उपेन्द्र आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगे।

सतीश ने मन को चोट पहुंचाने वाले स्वर में कहा—'उपेन्द्र भैया, तुम तो जीवन भर अंग्रेजी ही पढ़ते रहे, किसी दिन बंगला की ओर देखा तक नहीं, पर देशी भाषाओं में ऐसी पुस्तकें हैं जिन्हें एक बार पढ़ने से बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है।' यह कह वह लम्बी सांस लेकर चुप हो रहा।

उपेन्द्र ने झुझला कर कहा—'पहले तुम उस उपन्यास का किस्सा तो बताओ, उसके बाद देखा जाय कि कितना ज्ञान उत्पन्न होता है।

सतीश हंसा, बोला—'वचन दो कि अप्रसन्न न होंगे?'

'नहीं, तुम कहो!'

सतीश ने कहा—'बड़ी सुन्दर कहानी है। एक बड़े जमींदार नाव पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। एक दिन संध्या के समय आसमान में बादल घिर आये। जोरों से आंधी-पानी भी शुरू हो गया। वे भय के मारे किनारे उतर गए। सामने ही एक बहुत

बड़ी टूटा-फूटा मकान था। पानी से बचने के लिए उसी में चले गए। उस मकान में सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था—कहीं कोई आदमी नहीं था सारे मकान में घूम कर अन्त में उन्होंने देखा कि एक कमरे में दीपक टिमटिमा रहा है और फटे बिस्तर पर एक मुमूर्षू आदमी पड़ा हुआ है और उसकी रूपवती स्त्री भूमि पर पड़ी रो रही है। उस स्त्री ने उस रात को एक भयंकर स्वप्न देखा था। अच्छा, उपेन्द्र भैया तुम स्वप्न मानते हो?'

उपेन्द्र ने संक्षेप में कहा, 'नहीं। फिर?'

सतीश ने कहा—'उसके बाद वह उसी रात को चल बसा। जमींदार ने उस रूपवती युवती विधवा को घर लाकर जबरदस्ती उससे विवाह कर लिया। चारों ओर से धिक्कार की वर्षा होने लगी और इसी दु:ख से उनकी प्रथम स्त्री ने विष खाकर आत्म-हत्या कर ली।

कथानक के इस वर्णन से उपेन्द्र ने समझ लिया कि सतीश 'विषवृक्ष' की छीछालेदर कर रहा है और सतीश की स्मृतिशक्ति का यह परिचय पाकर यदि कोई दूसरा समय होता, तो उपेन्द्र खूब हंसते पर इस समय उन्हें हंसी न आई। उपन्यास के इस कथानाक का कुत्सित सत्य तेज तीर के समान आकर उनकी छाती में लगा। वे मन-ही-मन बोले, यह तो सतीश की स्मृति नहीं—यह उसकी आशंका है और यह आशंका क्या है, किस बात के आधार पर उसने 'विषवृक्ष' की डाल के पत्ते तोड़-मरोड़कर उसे अपने सांचे में ढाल दिया है, यह बात सोचकर उपेन्द्र गम्भीर लज्जा से संकुचित हो गए।

सतीश से अन्धेरे में यह नहीं देखा कि उस समय उपेन्द्र का मुंह पीला पड़ गया है। सतीश ने जले पर नमक छिड़क कर फिर कहा—'खाई खोदकर मगर न बुलाओ, उपेन्द्र भैया?'

उपेन्द्रनाथ कोई उत्तर न दे सके। देक तक चुप बैठे रहकर धीरे-धीरे बोले—'यह उपन्यास की बात रहने दो। किन्तु यह बतलाओ कि तुम उपदेश क्या देना चाहते हो?'

सतीश हंस पड़ा, बोला—'बस देख लो, उपेन्द्र भैया, तुम अप्रसन्न हो गए। मैं तुम्हें उपदेश नहीं दे सकता—लेकिन पांव पकड़कर तुमसे अनुरोध कर सकता हूं कि वहां तुम्हारे जाने की अवश्यकता नहीं है, वे लोग भले आदमी नहीं जान पड़ते।'

'कौन लोग?'

सतीश ने कहा—' भैया, अप्रसन्न मत होना, बहुवचन का प्रयोग मैंने केवल सभ्यता के लिए किया है। मैं हारान बाबू की बात नहीं कहता। वे भलाई-बुराई से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनकी मां को भी मैंने आँखों से नहीं देखा, मेरा संकेत तीसरे व्यक्ति की ओर है।'

उपेन्द्र, तीसरे व्यक्ति का क्या अपराध है? देखो सतीश, तुम्हारे पिता यदि अपनी सम्पत्ति किसी दूसरे आदमी को लिख देने का विचार करें तो शायद तुम प्रसन्न न होंगे?'

सतीशा, 'नहीं उपेन्द्र भैया, आशीर्वाद करें कि पिता जी को ऐसा करने की आवश्यकता ही न पड़े। मैं जानता हूं कि वे मुझे अच्छा नहीं समझते, मुझसे प्रसन्न भी नहीं रहते—मैं तो उनका नीच पुत्र हूं, किन्तु नीच होकर भी मैं उनकी मृत्यु के समय सज-धजकर, सिंगार-बनावकर, आंखों में सुरमा लगाकर और ठाठ से बाल झाड़कर यों मांथे पर बिन्दी नहीं लगा सकता। मैं बोलने में यदि कुछ ज्यादती नहीं कर रहा होऊँ, तो क्षमा करना

भैया, तुमने यदि एक बार भी आंखें खोलकर देखा होता, तो समझ जाते कि हारान बाबू का संकोच बहम नहीं, बल्कि वह उनकी बहुत दिनों की चिन्ताओं का परिणाम था।

उपेन्द्रनाथ चुप होकर सोचने लगे कि हारान बाबू ने कब और किस बात पर संकोच प्रकट किया? सतीश ने कहा, 'उपेन्द्र भैया, तुम यह न सोचो, कि हारान बाबू तुम्हें सब भार अर्पण करने के समय अपनी स्त्री की बात ही भूल गए थे अथवा लज्जा से कह नहीं सकते थे, बल्कि मेरा विश्वास है कि यदि तुम स्वयं न चर्चा करते, तो वे अपनी इच्छा से उसके विषय में कुछ न कहते।'

उपेन्द्रनाथ मन-ही-मन बहुत खीझते रहने पर भी अब तक चुपचाप उसकी बात सुन रहे थे, लेकिन पराई स्त्री के सम्बन्ध में ऐसी सन्दिग्ध और कुत्सित कल्पनाएं अब उनकी सहन शक्ति के बाहर हो गईं। वे कठोर स्वर से बोल उठे, सतीश, तुम यहां तक नीचे गिर गए हो। मेरा ऐसा विचार नहीं था। जान पड़ता है, तुम बात समझने में वैसे ही हो।'

सतीश हंसा, बोला, 'नीचे कैसे गिर क्या? बुराई को बुराई कहता हूं, इसलिए ?'

उपेन्द्र—'भला हो या बुरा, तुम्हें उसकी चर्चा करने का क्या अधिकार है?'

सतीश—'अधिकार किसे कहते हैं? वह अंग्रेजी की बात है, बंगला में उसका कुछ अर्थ नहीं होता। हमारे समाज में अधिकार-अनधिकार का इतना सूक्ष्म विचार नहीं चलता। बहुतेरे लोग तो जेल के कैदी को चोर कहने में आपत्ति करते हैं, लेकिन उस बात को तो हर एक मानकर नहीं चल सकता।'

उपेन्द्र 'वह दूसरी बात है। चोरी सिद्ध करके ही किसी को चोर कहा जाता है, चोर जेल जाता है, किन्तु इसके सम्बन्ध में तुम्हें क्या प्रमाण मिला है?'

सतीश, 'बिना प्रमाण के भी बहुतेरे आदमी जज की कृपा से जेल की हवा खाते हैं। हम लोगों की समझ में जो बात नहीं आती, उसे वे समझते हैं और हम-तुम जिस चीज को जल के समान स्वच्छ देखते हैं, वह विचारक के लिए कभी-कभी पहाड़ बन जाती है। आज तुम्हारे सम्बन्ध में भी यह बात घटित होती है। यह मत समझना, कि मैं गलत कह रहा हूं। इतनी बड़ी दुनिया आंखों के सामने देखते रहने पर भी बहुतों को ईश्वर का प्रमाण ढूंढ़ना पड़ता है और कितनो को तो ढूँढ़े भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। मैं जानता हूं कि तुम क्रुद्ध होगे, क्योंकि सदा से तुम भलों के साथ मिलते रहे हो, भलों को ही तुमने देखा है, और स्वयं भी भले ही बने रहे हो, किन्तु मेरे समान यदि तुम भला-बुरा दोनों देखा चुके होते और देखकर पक्के हो गए होते, तो मुझे इतनी बातें कहने की आवश्यकता न होती, तुम्हारी अपनी ही आंखें बहुत कुछ समझ लेतीं।'

उपेन्द्रनाथ कुछ देर चुप रहकर बोले, 'सब चीजे आंखें तले पड़ें, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं है, और न पक्का होने के लिए मैं तुम्हारे समान नीच ही बन सकूंगा। अब इस प्रसंग को छोड़ो, गाड़ी फाटक के भीतर आ पहुंची है। लेकिन देखो सतीश, एक बात याद रखना, कच्चे का दाम क्या है, यह उस समय मालूम होगा, जब तुम और भी पक्के हो जाओगे।

दूसरे दिन उठने में उपेन्द्र को देर हो गई। सूर्य निकले बहुत देर हो चुकी है, यह बात खिड़की से आने वाले प्रकाश की ओर देखते ही उनकी समझ मे आ गई। उपेन्द्रनाथ अकचका कर उठ बैठे। कमरे में सतीश न था। वह कहा गया है, पूछने पर बाहर बेहरा

खड़ा था, आकर बोला, 'सतीश बाबू सामने के बगीचे में कुश्ती लड़ रहे हैं, नीचे चाय तैयार है, साहब आपकी राह देख रहे हैं।

उपेन्द्र झटपट तैयार होकर नीचे उतरा। ज्योतिष हाथ पकड़कर टेबुल पर ले गया। वहीं उसकी बहन सरोजिनी भी अतिथियो की राह देख रही थी। उसने समाचार-पत्र फेंककर हंसते हुए कहा, कल रात को दस बजे तक हम आप लोगों की प्रतीक्षा करते रहे थे। अन्त में मंझले भैया बोले कि अवश्य कोई हृदयहीन मित्र उन्हें मार्ग से घसीट ले गया होगा और शायद आप लोग रात को नही लौट सकेंगे। कल रात को किस समय लौटे उपेन्द्र बाबू?'

उपेन्द्र ने हंसकर कहा, ग्यारह बजे। एक आवश्यक काम में फंस गया था, सबको कष्ट दिया।'

ज्योतिष ने कहा, 'यह हमे मालूम है। हमने यह नही सोचा था कि तुम व्यर्थ रास्ते मे फिर रहे होगे। सतीश बाबू कहां गए?'

बेहरे ने आकर निवेदन किया, 'सतीश बाबू उधर बाग में कुश्ती लड़ रहे हैं। उन्हे सूचना दे दी गई है।'

बेहरे के चले जाने पर, ज्योतिष ने उपेन्द्र की ओर देखकर कहा, 'कुश्ती कैसी! क्या वहां और भी कोई है?'

उपेन्द्रनाथ ने कहा, मैं नही जानता। मेरी समझ मे कुश्ती नही, किसी प्रकार का व्यायाम होगा। उसे बचपन से व्यायाम का अभ्यास है। कुछ करता होगा।'

सरोजिनी कल दोपहर को म्यूजियम (अजायबघर) देखते गई थी। सध्या के बाद घर लौटकर उसने सुना कि उपेन्द्र बाबू अपने एक मित्र के साथ आए है। किन्तु उस समय वे लोग पथरियाघट्ट की ओर चले गये थे। उसने अब पूछा, 'उपेन्द्र बाबू, सतीश बाबू कौन है? मैंने तो उन्हे नही देखा'।'

उपेन्द्र, 'कल जब हम लोग आए, तब आप उपस्थित नही थी। सतीश मेरा बचपन का मित्र है, यद्यपि आयु मे बहुत छोटा—यह लो, आ ही गया।'

सतीश ने घर मे पैर रखा। वाह! क्या ही सुन्दर, सुगठित शरीर है—उस समय भी उसके माथे पर पसीने की बूंद झलक रही थी। सुन्दर, गोरे चेहरे पर व्यायाम के कारण एक हल्की लालिमा की झलक पड़कर उसे और भी सुन्दर बना रही थी। सरोजिनी ने पल भर देखा और आंखें नीची कर ली।

ज्योतिष ने कहा, 'बेहरा कह रहा था, आप कुश्ती लड रहे थे, कुश्ती लडिए या चाहे जो कुछ कीजिए, आपकी देह देखकर मुझमे ईर्ष्या होती है, शायद मेरे जैसे चार-पाच आदमी भी आपका पल्ला नही पकड़ सकते।

सतीश ने मुस्कराकर कहा, 'बिना परीक्षा लिए इतना बड़ा सर्टिफिकेट! दूसरे, केवल शारीरिक शक्ति का मूल्य ही क्या है? मुझमे और कोई शक्ति तो है नही।'

अन्तिम बात के साथ व्यथा की झलक मालूम हुई। सरोजिनी ने प्यालो मे चाय डालते हुए अनुमान किया, शायद सतीश बाबू की आर्थिक अवस्था अच्छी नही है। ज्योतिष बाबू तो पहले ही उपेन्द्रनाथ से सब कहानी सुन चुके थे, वे चुपचाप रहे। इसी बीच मे चाय के प्याले तैयार हो गए। सतीश ने उस ओर आंख उठाकर भी न देखा और

एकटक दीवार पर टंगे हुए एक चित्र की ओर देखता रहा।

ज्योतिष ने कहा, 'आइये, सतीश बाबू, चाय तैयार है।

सतीश निकट आया, मुस्कराकर बोला, 'आप लोग आरम्भ कीजिए, मैं स्नान किये बिना कुछ नहीं खाता।'

ज्योतिष—'वाह वाह ! मुझे तो मालूम ही न था, तो जाइये, देर न कीजिए। बेहरा। '

सतीश, 'नहीं, नहीं, आप शीघ्रता न करें। मैं अपने समय पर स्नान कर लूंगा; दूसरे मुझे सवेरे कुछ खाने का अभ्यास भी नहीं है। हां, मेरा दोपहर का भोजन मामूली आदमियों से कुछ अधिक होता है। चाय आदि व्यर्थ की चीजें खा-पीकर भूख को नष्ट करना मुझे अच्छा नहीं लगता। आप लोग चाय पीते रहें, तब तक मैं यह हारमोनियम लेकर दो भजन गाता हूं।'

गाने की बात सुनकर सरोजिनी प्रसन्न हुई। सिर उठाकर सहसा बोल उठी, 'हां, अवश्य गाइये।' लेकिन तत्काल ही झेंपकर सिर झुका लिया। उसको अपनी बात अपने ही कानों में असंगत-सी जंची। ज्योतिष ने हंसकर कहा, 'मेरी बहन को गाना मिल जाये तो और कुछ न चाहिए नहीं, नहीं, सतीश बाबू आप कुछ...'

उपेन्द्रनाथ अब तक चुप बैठे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे, बोल उठे, 'नहीं नहीं, क्या ? बिना स्नान किए कभी कुछ नहीं खाता।

'हम उसकी मान-मनौती करते रहे और इधर चाय के प्याले ठंडे हो जाएं, यह मुझे पसन्द नहीं। सतीश भाई, तू अपना भजन-वजन समाप्त कर ले, मुझे और भी काम करने है।' इतना कह कर उन्होंने चाय प्याला मुंह में लगाया।

ज्योतिष को उपेन्द्र की बात बहुत अच्छी लगी। वे मुस्कराने लगे।

सतीश पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया। इसके बाद फिर गाने का उत्साह न रहा। सरोजिनी अनमनी होकर चाय डालने लगी।

उपेन्द्र ने चाय पीते हुए कहा, 'कहीं भी इसके मारे मुझे शान्ति नहीं मिलती। ऐसी निराली तबियत का आदमी है कि कुछ-न-कुछ बखेड़ा खड़ाकर ही देती है। गनीमत समझो कि इसने सवेरे-सवेरे भजन गाने के बदले बांसुरी अलापने का प्रस्ताव नहीं किया।'

किसी को इस बात में रत्ती भर भी सचाई का अनुभव न हुआ। सभी हंसी समझकर हंसने लगे। चाय भी उड़ने लगी। इधर सतीश से चुपचाप बैठा न रह गया। वह उठा और घूम-घूमकर दीवारों पर लगी हुई तस्वीरें देखने लगा।

सन्ध्या के बाद एक बार सरोजिनी ने धीरे से उपेन्द्रनाथ से कहा—'सवेरे आपने गाना नहीं सुनने दिया, यह आपने बड़ा अन्याय किया।

उपेन्द्रनाथ ने कहा—'अच्छा, इस समय उसकी कमी निकल सकती है, सतीश को आने दो।'

ज्योतिष ने कहा—'हां-हां, हम सर्दी में बाहर निकलने को जी नहीं चाहता, कुछ गाना-बजाना हो तो बुरा क्या है? लेकिन सतीश बाबू कहा हैं, कही डाक्टरी करने तो नहीं गए?'

उपेन्द्रनाथ ने कहा—'हो सकता है। मैं समझता हूं जान-पहचान वालों से मिलने गया होगा।' सरोजिनी ने चकित होकर पूछा—'सतीश बाबू डाक्टर हैं?'

उपेन्द्र ने हंस कर कहा—'हां'

ज्योतिष ने कहा, 'नहीं उपेन्द्र, केवल स्कूल में पढ़ने से ही काम न चलेगा। किसी अच्छे होमियोपैथिक डाक्टर के साथ कुछ दिन रहे बिना व्यावहारिक ज्ञान नहीं होगा और ये भी तीसमार खां के समान लोगों की जान लेते फिरेंगे। तुम कहो तो मैं एक भलेमानस डाक्टर का साथ करा दे सकता हूं। लेकिन दोनों की आपस में कहां तक पटरी बैठेगी, नहीं कह सकता, तुम जैसा सर्टिफिकेट दे रहे हो... ।'

उपेन्द्र ने कहा, 'वे होशिहार होंगे, तो अवश्य पटरी बैठ जाएगी, नहीं तो सिर फुड़ौबल की नौबत आ सकती है।'

सरोजिनी चकित होकर देखने लगी। ज्योतिष ने कहा, 'नहीं, वे बहुत होशियार आदमी हैं।'

उपेन्द्र ने कहा, 'तो ठीक है ! उसे पहचानकर उसके सारे गुण-दोषों को समझकर जो उसके मन को वश में कर लेगा, उसे बड़ी ही अच्छी चीज मिलेगी। लेकिन उसके मन को वश में करना ही तो कठिन है। यह नहीं कि जटिल या दुर्बोध हो, बल्कि बड़ा सीधा—बड़ा साफ है। मेरे विचार से मन की इस सफाई के कारण ही लोग उसे समझने में गलती कर जाते हैं। मन न मिलने पर भी हम जहां सभ्यता की दुहाई देते हैं और शिष्ट भाव से, भलमनसाहत के लिहाज से मनमुटाव पैदा करके मन में एक मैल रखके चुपचाप चले आते हैं, वहां वह हाथपाई कर, पूर्णतः निपटारा करके ही आता है, मन को भारी करके नहीं आता। बचपन से उसे जानता हूं, कभी यह नहीं देखा कि उसके मुंह से एक बात निकलती हो और मन कुछ और ही हो। इसी से तो मेरा उस पर अगाध प्रेम है।

ज्योतिष हंसने लगे, बोले, 'इसी से तो तुम शिकायत करते थे कि दस आदमियों के बीच इसे लेकर जाना-आना मुसीबत है।'

उस समय उपेन्द्रनाथ का मन ज्योतिष की ओर नहीं था। इसी से उनकी बातें कानों में पहुंचने पर भी हृदय में न पहुंची। बाल-बन्धु के विरूद्ध कल रात का व्यवहार और कठोर भाषण उन्हें भीतर ही-भीतर मसोस रहा था, इसीलिए बातों-ही-बातों में उनका मन पिछले दिन की स्मृति के एक अत्यन्त गूढ़ प्रदेश में प्रवेश कर गया था। किशोरावस्था के छोटे-बड़े झगड़ों में, दूसरे मुहल्ले के समान या असमान आयु वालों से हाथापाई, मार-पीट, तर्क-वितर्क तथा और भी कितनी ही कठिन परिस्थितियों के समय सतीश अपना हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ शरीर लेकर उनका साथ दिया करता था। इन्हीं सब स्मृति घटनावलियों के बीच में आकर उनका हृदय अत्यन्त अनुतप्त हो उठा। जब उपेन्द्रनाथ ने कहा, इसीलिये तो मेरा उस पर इतना प्रेम है।' तब ज्योतिष और सरोजिनी ने चकित नेत्रों से उनकी ओर देखा। इस असम्बद्ध बात का ठीक-ठीक वे दोनों अर्थ न समझ सके। पर दूसरे प्रश्न का भी समय न रहा। चुपचाप पर्दा हटा कर सतीश ने भीतर प्रवेश किया। पहले ही सरोजिनी की दृष्टि उस पर पड़ी। बड़ी प्रसन्नता से स्वागत करके बोली, 'बड़ा अच्छा हुआ सतीश बाबू आ गए।'

सतीश ने चुपके से उसकी ओर देख मुस्कराकर कहा, 'मालूम होता है, मेरी ही बातें हो रही थीं। उपेन्द्र भैया मुझे अब किसी के सामने मुंह दिखाने योग्य न छोड़ेंगे।' कह

कर पास पड़ी एक गद्दीदार आराम-कुर्सी पर बैठने जा रहा था कि उपेन्द्रनाथ ने उंगली से हारमोनियम दिखाकर कहा, 'जरा वहां, इस समय गाना-बाजाना न हो सकेगा?'

सतीश बताये हुए स्थान पर बैठ कर बोला, भैया, इस समय तो गाना न हो सकेगा, यह तो मेरे बांसुरी बजाने का समय है।'

उस रात को कुछ देर से सभा भंग होने के बाद खाट पर लेट, सरोजिनी लम्बी सांस लेकर मन-ही-मन बोली, 'वे यदि हम लोगों के कोई अपने सगे होते, तो उन्ही से सीखती।' सरोजिनी को गाना सिखाने के लिए एक युक्त-प्रदेशीय उस्ताद जी नियुक्त थे। उनके स्थान पर सतीश को नियुक्त करने के लिए वह भांति-भांति के उपाय सोचती हुई सो गई।

13

उपेन्द्र और सतीश के चले जाने पर किरणमयी किवाड़ बन्द कर खड़ी हो गई। अन्धेरे में उसकी आंखे हिसक पशु के समान जलने लगी। उसके जी में आ रहा था कि झपट कर किसी का कलेजा फाड़ डालूं तो मुझे चैन पड़े। हाथ के दीपक को ऊंचा कर पागल-की-सी चेष्टा करती हुई बोली, 'आग लगा·देने का उपाय होता, तो लगा देती। आग लगा कर जहां जी चाहता, चल देती। हाय-हाय करके, चीख-चिल्ला करके बुड्ढी भीतर ही जल मरती, तभी ठीक होता। मेरे साथ बैर बांधने का अवसर ही न पाती।' इस जाड़े की रात में भी उसके गोरे गालों और माथे पर पसीने की बूंदें निकल आई थीं। हाथ से पोंछती हुई अचानक अपने आपको ही धिक्कार देकर बोल उठा—'मैं निश्चय ही कह सकती हूं कि यह सब उस अभागिन बुढ़िया का काम है। अपने लड़के के साथ मिलकर उसी ने ऐसी हालत उत्पन्न कर दी है।'

सतीश की बातें बिच्छू के डंक की भांति जलाने लगी। इन दोनों आदमियों ने कुछ बातें अवश्य सुनी हैं, यही ठीक प्रकार से समझ न सकने के कारण वह और भी छटपटाने लगी। उसको पति और सास दोनों ने ही मिलकर समझाया था कि उपेन के समान भला आदमी कोई नही है उसके आ जाने से फिर कष्ट न रहेगा। क्यों उसने विश्वास किया था? क्यों उसने अपने ही हाथ से पत्र लिखा था? अंधेरे सीलदार आंगन में एक ओर खड़ी रह कर वह क्रोधित नारी इन लोगों को झूठे, षड्यन्त्रकारी, पैशाचिक स्वभाव के और न जाने क्या-क्या कह कर भी तृप्ति न पा सकी। क्रोध और हिंसा ने उसके हृदय में जो भयंकर तूफान उठा दिया था उसका कणमात्र व्यक्त कर देने की भाषा जब उसे याद नहीं पड़ी तब वह तन-मन से प्रार्थना करने लगी कि वह अर्धमृत आज ही रात को प्राप्त हो जाये।

दो दिनों के बाद सबेरे रसोईघर में बैठी किरण तरकारी काट रही थी। नौकरानी ने आकर खबर दी, 'डाक्टर साहब आए हैं।'

किरण ने कहा, 'जाकर उससे कह दे—मां आज अच्छी हैं।'

दासी कुछ आश्चर्य में पड़ गई। कुछ देर तक देखती रह कर बोली—'वे उसी कमरे में बैठे हुए हैं।'

उसकी बात के विशेष अर्थ की ओर तनिक भी ध्यान न देकर किरण ने सहज भाव से कहा, 'उसकी दवा तो कोई खाता नहीं फिर भी वह क्यों आता है, मैं नहीं जानती। तू अपने काम पर जा, वह स्वयं ही चला जाएगा।'

इस डाक्टर की दवा काम नहीं आती, दासी के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। इसलिए इसके बताने की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु क्यो वह आता है। यह प्रश्न पूर्णतः नया था। वह आश्चर्य में पड़ कर सोचने लगी, कल सन्ध्या को मैं घर चली गई थी इस बीच हठात् कौन-सी ऐसी घटना हो गई कि डाक्टर का इस मकान में आना तक अनावश्यक हो गया। फिर भी साहस करके वह एक बार बोली, 'अच्छा, मैं सब्जी काट देती हूं, तुम एक बार हो आओ न!

किरणमयी अत्यन्त रूखे भाव से बोली, 'तू जा। अपना कुछ काम हो तो जाकर कर।'

इस अचानक तथा अत्यन्त आवश्यक उग्रता से दासी एकदम सहम गई। इस घर में वह बिल्कुल ही पुरानी न होने पर भी नई नहीं थी। इसके पूर्व भी ऐसे अकारण रूखेपन का परिचय वह पा चुकी है, किन्तु ठीक इस प्रकार की बात स्मरण न कर सकी। कोई और समय होता तो वह भी शायद क्रोध करती, किन्तु आज उसने नहीं किया। अति आश्चर्य से मौन रह गई। थोड़ी देर चुप रहकर धीरे-धीरे उस कमरे के दरवाजे के पास जाकर बोली, 'वे काम में लगी हुई है? इस समय आप जायें।'

डाक्टर पैरों के पास बैग रखकर उसी चौकी के पास बैठा हुआ था, बोला, 'काम में लगीं हुई हैं? काम तो मुझे भी है।'

दासी ने कहा, 'तो जाओ न बाबू!'

डाक्टर आवाक् रह गया। बोला, 'एक बार जाकर कह दो। मुझे एक विशेष काम है।'

दासी ने कहा, 'आप समझते क्यों नही हो बाबू! मैंने बहुत कहा है, और अधिक न कह सकूंगी। यह सब मैं कुछ नही जानती। आज आप जाएं।' यह कहकर, वह चली गई।

किन्तु डाक्टर के पैर उठे नहीं। लेकिन जाने का प्रस्ताव स्वयं ही करके खड़ा रहना भी कठिन हो गया।

दासी मुस्कराने लगी, बोली, 'जाओ न!'

डाक्टर ने मुंह ऊपर उठाकर क्रुद्ध होकर कहा, 'तुम क्या समझती हो कि मैं जाना नही जानता?'

'मैं क्या पागल हूं कि समझूंगी कि तुम जाना नहीं जानते। हां डाक्टर, कितने ही रोगी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, सुनूं तो?' कहकर और मुंह घुमाकर वह हंसने लगी।

क्रोधित डाक्टर ने पहले यही इच्छा की कि उसके मुंह पर थप्पड़ मारकर बन्द कर दे, किन्तु यह काम तो सम्भव नही था, केवल बोला, 'तुम जाओ!'

'मैं कहां जाऊंगी? मकान तो मेरा है, जाना होगा तो तुमको ही जाना होगा!'

'मैं जा रहा हूं।' कहकर ज्यों ही वह जाने को प्रस्तुत हुआ त्यों ही किरणमयी ने दोनों चौखटों पर हाथ रख कर मार्ग रोक कर कहा, 'जा रहे हो, किन्तु यह मान कर जाओ कि

यही जाना अन्तिम जाना है।'

उसके कण्ठस्वर और चेहरे के अचानक परिबर्तन से डाक्टर भयभीत हो उठा; लेकिन मुंह से बोला, 'अच्छी बात है, यही हो, यही अन्तिम जाना है।'

किरणमयी, 'सचमुच ही अन्तिम जाना है। जब कि तुम आ गए हो, तब स्पष्ट रूप से ही सब जान जाओ। अच्छा, वहां उसी स्थान पर बैठ जाओ, अब खोलकर कहती हूं। यह कहकर डाक्टर का बैग लेकर उसने स्वयं भूमि पर रख दिया और कुर्सी दिखाकर बोली, 'रसोई बनानी है, समय नहीं है, संक्षेप में कहती हूं।

इसी समय दासी ने आकर सूचना दी, 'दो बाबू आ रहे हैं। उसके साथ ही जूते की आवाज सुनकर किरणमयी भय से भयभीत हिरणी की भांति दासी को जोर से ठेलकर कमरे से दौड़कर भाग गई। डाक्टर और नौकरानी आश्चर्य में पड़ कर एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

थोड़ी ही देर के बाद जूते की आवाज द्वार के पास आकर रूक गई। डाक्टर ने देखा, दो अपरिचित सभ्य आदमी हैं। दोनों भले आदमियों ने देखा, डाक्टर हैं, उनके कोट के पाकेट से हृदय-परीक्षा के चोगे ने अपनी गरदन बढ़ा कर परिचय दे दिया। उपेन्द्र और सतीश ने देखा डाक्टर का चेहरा अत्यन्त सूखा है। दुर्घटना की आशंका करके पूछा, 'आपने कैसा देखा डाक्टर साहब?'

डाक्टर चुप रहा। उसका चेहरा और भी काला हो गया।

उपेन्द्र ने और अधिक भयभीत होकर प्रश्न किया—'अब कैसा देखा?'

तो भी डाक्टर ने बात नही कही, विह्वल की भांति वह केवल देखता रहा।

दासी ने कहा, 'तुम जाओ न डाक्टर साहब, अभी तक खड़े क्यों हो?'

डाक्टर व्यस्त होकर बैग उठाकर बोला, 'मैं जाता हूं, मुझे बहुत काम है।' यह कह कर उपेन्द्र और सतीश के बीच से ही वह तेजी से नीचे उतर गया और उस महाजन का पदानुसरण करके दासी कहां चली गई यह बात जानी भी नहीं गई।

उस सुनसान टूटे मकान के टूटे बरामदे में दिन के नौ बजे उपेन्द्र और सतीश चुपचाप आश्चर्य से एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

कुछ देर बाद सतीश बोला—'उपेन्द्र भैया, हारान बाबू की मां क्या पागल है?

उपेन्द्र बोले—'वह हारान भैया की मां नहीं हैं और कोई है, सम्भवतः दासी है। किन्तु मैं सोचता हूं, डाक्टर इस प्रकार क्यों चला गया?'

सतीश बोला—'चोर की भांति मानो पकड़े जाने के भय से भाग गया।'

उपेन्द्र अनमने भाव से बोला—'यहां तो कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। वही कमरा हारान भैया का है न?'

सतीश बोला—'हां, चलो उसमें।'

किन्तु हठात् घुसने का साहस नहीं हुआ। 'मुझे भय लगता है, शायद कोई घटना घट गई है।

सतीश बोला—'ऐसी बात होने से रोने-धोने के लिए आदमी जुट जाते—ऐसी कोई बात नहीं।'

ऐसे ही समय में दिखाई पड़ा कि किरणमयी उस ओर के बरामदे से घूमकर आ रही है। जान पड़ता था, मानो अभी-अभी वह रो रही थी। आंखें पोंछ कर चली आ रही है। कल दीपक के प्रकाश में जो मुंह सुन्दर दिखाई दे रहा था, आज दिन के समय, सूर्य के प्रकाश में साफ-साफ समझ में आ गया, ऐसा सौन्दर्य और किसी दिन आंखों से दिखाई नहीं पड़ा था—कोई जीवित भी नहीं, चित्रों में भी नहीं।

बहू ने कहा, 'आज हम लोग प्रस्तुत नहीं थे। मैंने सोचा था 'आवेंगे'कह जाने पर भी शायद न आ सकेंगे।' सतीश की ओर देखकर सहसा मुस्कराकर बोली, 'बबुआ जी भी है!'

आज सतीश ने सिर झुका लिया।

उपेन्द्र ने पूछा, 'हारान भैया कैसे हैं?'

बहू ने उत्तर दिया, 'वैसे ही। चलिए, उस कमरे में चलें।

हारान के कमरे में उनकी मां अघोरमयी बिछौने के पास बैठी हुई थीं। उपेन्द्र के प्रणाम करते ही ऊंचे स्वर में रो पड़ी।

हारान थके स्वर से मना करके बोला, 'चुप भी रहो, मां!'

उपेन्द्र लज्जा से, दुःख के एक ओर बैठ गया।

सतीश इस प्रकार उस ओर देखकर मुंह को यथासाध्य भारी बनाकर उस काठ के सन्दूक पर जाकर बैठ गया।

बहू पल भर खड़ी रह कर सतीश की ओर विद्युत कटाक्ष फेंक कर बाहर चली गई, मानो स्पष्ट धमका गई, 'तुम लोग यह काम अच्छा नहीं कर रहे हो।'

14

सतीश ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह डाक्टरी पढ़ना नहीं छोड़ेगा। इसीलिए दूसरे दिन सन्ध्या समय किसी से भी कुछ न कहकर वह बिहारी को साथ लिए अपने पुराने मकान पर जा पहुंचा। वह मकान उस समय भी खाली पड़ा था। मकान मालिक से मिलकर उसने छः महीने का प्रबन्ध कर लिया और निकट ही के हिन्दू आश्रम में जाकर पता लगाकर एक रसोइया नियुक्त कर लिया और प्रसन्न होकर बाहर निकल पड़ा। बिहारी से उसने कहा—'हम लोग कल ही चले आवेंगे, क्या कहते हो बिहारी?'

बिहारी ने अपनी सम्मति प्रकट की।

मार्ग में चलते-चलते सतीश बोला—'काम तो अच्छा नहीं हुआ बिहारी! जो भी हो उसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है, इसके सिवा, माना जाए तो मेरे लिए ही उसका उस डेरे का काम छूट गया है। एक बार सूचना देनी चाहिए।'

बिहारी समझ गया और चुप ही रहा।

सतीश कहने लगा—'जो कोई भी क्यों न हो, मार्ग का भिखारी होने पर भी दुःख में पड़ने पर उसकी खबर लेनी चाहिए, नहीं तो मनुष्य जन्म ही व्यर्थ है। किन्तु मैं उसके मकान के अन्दर न जाऊंगा—गली के अन्दर भी नहीं—मोड़ पर खड़ा रहूंगा; तू एक बार जाकर मालूम कर आना कष्ट में पड़ी है या नहीं। कष्ट में तो अवश्य ही पड़ गई है—यह

मैं अच्छी प्रकार समझ रहा हूं, इसलिए किसी तरह कुछ दे आना चाहिए बिहारी चुपचाप पीछे चलने लगा। सतीश बोला—'किन्तु मुझसे यह सब बातें बतावेगी नहीं, फिर भी तुमसे कुछ भी न छिपावेगी। तू समझ गया बिहारी?

बिहारी ने फिर भी कोई बात नहीं कही।

सावित्री के गली के मोड़ पर पहुंच कर सतीश खड़ा हो गया। बोला—'अधिक देर मत करना।'

बिहारी ने गली में प्रवेश किया। सतीश पास-पास इधर-उधर टहलने लगा,—दूर जाने का उसे साहस नहीं हुआ। पीछे मूर्ख बिहारी उसे न देखकर और कहीं चला न जाय!

दस मिनट बाद ही लौटकर बोला—'वह नहीं है।'

सतीश ने व्यग्र होकर पूछा—'कब लौट आयेगी?'

बिहारी बोला—'वह अब न आवेगी। दो महीने बीत रहे हैं, एक दिन भी नहीं आई।'

सतीश गैस के खम्भे के सहारे खड़ा होकर भीषण कण्ठ से बोला—'झूठी बात है। तेरे साथ छल किया गया है!' बिहारी ने दृढ़ता से सिर हिलाकर कहा—'नहीं बाबू जी, यह बात नहीं है। सचमुच ही अब वह वहां नहीं आती, घर छोड़कर चली गई है।'

सतीश—'उसका सामान?'

बिहारी, 'पड़ा है और वैसे सामान ही कौन-सा है कि जिसके लिए उसे बड़ा मोह होगा।'

सतीश ने झुंझलाकर कहा, 'पर वह तो गरीब औरत ही है, जो कुछ भी सामान उसका था, उसकी क्या वह परवाह नहीं करती! तू तो बना-बनाया मूर्ख है, किसी से सुनकर चला आया कि अब वह नहीं आयेगी। भला बिहारी, यह कभी सम्भव है कि वह लापता हो जाए और कोई उसकी खोज तक न करे? मैं पुलिस में रिपोर्ट करूंगा।'

बिहारी स्तब्ध हो खड़ा रहा।

सतीश ने कहा, 'मोक्षदा क्या कहती है? क्या उसे मालूम नही है? मैं नहीं मानता। वह जरूर जानती है, मैं अभी उसके पास जाता हूं।'

बिहारी घबराकर बोला, 'आप न जाइये बाबू साहब?'

'क्यों न जाऊं? वे लोग छिपाते क्यों है? क्या मैं किसी को खा जाऊंगा। मुझसे ये लुका-छिपी क्यों है? मैं तुझसे कहे देता हूं कि चाहे जैसे हो मैं उसका पता अवश्य ही लगाऊंगा।

बिहारी डर गया। बोला, 'इसमें उसकी मौसी का दोष नहीं है, बाबूजी, सावित्री अपनी इच्छा से घर छोड़कर चली गई। झगड़ा करके चली गई है और किसी से कुछ कह भी नहीं गई है।'

सतीश ने धमकाया, 'फिर कहता है, कुछ कह नहीं गई? अवश्य कह गई है, अवश्य ही अपना पता बता गई है।'

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं बता गई है। लेकिन है वह शहर में ही।'

'कहां? किस जगह है? गधे के समान चुपचाप देखता क्या है? कहता क्यों नहीं कि क्या हुआ है?

बिहारी ने कुछ देर स्थिर रहने के बाद कुछ सोचकर कहा, 'आपके मन में दुख होगा इसी से, नहीं तो सभी जानते हैं—मैं भी जानता हूं।'

सतीश अधीर हो उठा, बोला, 'कहता क्यों नहीं? क्या जानता है?'

बिहारी चुप खड़ा रह गया। सतीश जोर से चीख उठा, 'हरामजादे, तेरे पैर पड़ता हूं, जल्दी बता ?'

बिहारी ने तुरन्त जमीन में सिर रखकर जूते की धूलि माथे पर लगा कर सिसकते हुए कहा, 'बाबू, आपने मुझे नरक में ठकेल दिया। जरा आड़ में चलिए, कहता हूं....' कहकर अन्धेरी गली में जाकर एक किनारे खड़ा हो गया। सतीश ने सामने खड़े होकर पूछा, 'क्या है ?'

बिहारी ने सूखे गले को गीला करके कहा, 'सावित्री की मौसी समझती है कि वह आपके पास है। लेकिन मैं जानता हूं कि यह बात नहीं है।'

सतीश अधीर होकर बोला, 'तू बड़ा पंडित है, यह मैं भी जानता हूं, आगे बता।'

'सन्तोष कीजिए बाबू !' कहकर बिहारी एक बार और अच्छी तरह से गला साफ करके बोला, 'मुझे पूरी आशा हो रही है कि ...'

'क्या आशा हो रही है ?'

बिहारी ने विवश होकर कह डाला, 'वह वहीं गई है, उन्हीं विपिन बाबू के पास...'

'किसके पास ? विपिन के...'

'हां, बाबू जी वहीं...हयं-हयं ! वहां न बैठिए, नहाना पड़ेगा दुनिया भर के लोग वहां...'

सतीश ने सुनी-अनसुनी कर दी। उस ओर की दीवार पर पीठ लगा सीधा हो सूखे कण्ठ से पूछा, 'तब उसकी मौसी ने कैसे समझा कि वह मेरे पास है ?'

बिहारी ने कहा—'सावित्री ने उस दिन बाबू को अपमानित करके निकाल दिया। साफ शब्दों में कह दिया कि वह सतीश बाबू के सिवा और किसी के पास न जाएगी...घर के लोगों ने छिपकर यह झगड़ा सुना था।'

सतीश उठ खड़ा हुआ। जैसे-तैसे होश जरा ठिकाने लाकर पूछा—'फिर तूने कैसे जाना कि वह विपिन बाबू के पास गई?

बिहारी कुछ न बोला।

सतीश ने कहा, 'बोलो !'

बिहारी ने फिर एक बार इधर-उधर किया, सावित्री के सामने उसने पौरूष का जो अभिमान किया था उसे भी याद किया। अन्त में फिर एक बार थूक घोंटकर बोल उठा, 'मैं अपनी आंखों देख आया हूं।' सतीश चुपचाप सुनने लगा। बिहारी बोला, 'हम लोगों ने जिस दिन घर बदला था, उसके दूसरे दिन दोपहर को मैं आया था। उस समय विपिन बाबू सावित्री के बिस्तर पर पड़े हुए थे।

सतीश ने बड़े जोर से धमका कर कहा, 'झूठ बात है !'

बिहारी चौंक उठा, बोला, नहीं बाबू जी, सच कहता हूं।'

सतीश ने उसके चेहरे पर तीव्र दृष्टि डाल, कुछ देर चुप रहकर पूछा—'सावित्री कहां थी?'

'सावित्री उसी कमरे में थी। बाहर निकल, चटाई बिछाकर उसने मुझे बैठाया। पूछने

लगी, 'बाबू लोग अप्रसन्न हुए या नहीं? हम लोगों ने डेरा क्यों बदला? ये ही सब बातें।'

'उसके बाद?'

'मैं खिसियाकर चला आया। उसी समय से वह उस बाबू के साथ चली गई।'

'इतने दिन क्यों नहीं कहा?'

बिहारी ने कुछ उत्तर न दिया।

सतीश ने पूछा, 'तूने अपनी आंखों से देखा है या किसी से सुना है?'

'नहीं बाबू जी, मैंने अपनी आंखों से देखा है। अच्छी प्रकार आँखें खोलकर देखा है।'

'मेरे पैर छूकर कसम खा, अपनी आँखों से देखा है? देख, यह याद रखना, ब्राह्मण के पैर छूता है!'

बिहारी ने तुरन्त झुककर सतीश के पैर छूकर कहा, 'इस बात का स्मरण रात-दिन मेरे मन में बना रहता है। मेरी अपनी आँखों देखी बात है।'

सतीश फिर कुछ देर चुप रहकर बोला 'अच्छा, अब तू घर जा। उपेन्द्र भैया से कहना कि आज रात को मैं भवानीपुर जाऊंगा, लौट न सकूंगा।'

बिहारी को विश्वास न हुआ, वह रोने लगा।

सतीश चकित होकर बोला, 'यह क्या, तू रोता क्यों है?'

बिहारी ने आंखें पोंछते हुए कहा, 'बाबू जी, मैं आपके लड़के के समान हूं, मुझसे कुछ भी न छुपाइये। मैं आपके साथ चलूंगा।'

सतीश ने पूछा—'क्यों?'

बिहारी ने कहा—'बूढ़ा अवश्य हो गया हूं, लेकिन जात का अहीर हूं। एक लाठी हाथ में होने पर पांच-छः का मुकाबला सुगमता से कर सकता हूं। मैं समय पर जूझ सकता हूं और आवश्यकता पड़ने पर जान तक लड़ा सकता हूं।'

सतीश ने शान्त भाव से कहा—'मैं क्या लड़ने जा रहा हूं?'

बिहारी बोला—'तो लौट जाऊं?'

'जा'—कह कर सतीश चला गया। बिहारी आंखें पोंछता हुआ कुछ देर तक खड़ा रह कर चला गया।

बिहारी के दूसरे तरफ जाते ही सतीश सीधे मैदान की ओर तेजी से चल पड़ा। निश्चय नहीं था कि कहां जायेगा लेकिन उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो शीघ्र ही कहीं जाना होगा। इस बात को वह अच्छी प्रकार अनुभव कर रहा था कि उसके चेहरे पर भयंकर परिवर्तन हो गया है और वह परिवर्तन किसी परिचित को दिखाना उचित नहीं, क्योंकि उसे देखते ही सम्भव है, वह स्वयं भी डर जाए।

सुनसान मैदान में वृक्ष के नीचे एक बेंच पड़ी हुई थी। सतीश उस पर जाकर बैठ गया। वहां की निर्जनता ने उसे बहुत शान्ति दी। उस पर विपित्तियों का पहाड़ टूट पड़ा है, यह उसने दृढ़ता के साथ मान लिया था। अंधेरे में पेड़ के नीचे बैठकर वह छुटकारे का उपाय खोजने लगा। पहले ही उसके मुंह से निकला—करना क्या चाहिए?' यह प्रश्न कुछ समय तक अर्थहीन प्रलाप के समान उसके कानों में चक्कर काटता रहा। अन्त

में उत्तर मिला—कुछ भी नहीं किया जा सकता।

पूछा—'सावित्री ने ऐसा काम क्यों किया।'

उत्तर मिला—'उसने ऐसा कुछ भी न किया जिसके लिए उसके सिर नये सिरे से दोष मढ़ा जाये।'

प्रश्न—'मेरे साथ ऐसा विश्वासघात क्यों किया?'

उत्तर—'पहले यह बताओ कि उसने तुम्हें विश्वास ही कौन-सा दिया था, जो उसने नष्ट किया था?'

सतीश कुछ न बोल सका। सचमुच उसने कोई झूठी आशा नहीं दिखाई थी। एक दिन के लिए भी उसने सतीश के साथ धोखे-धड़ी का व्यवहार नहीं किया, कभी-लोभ लालच नहीं दिया बल्कि बार-बार सावधान किया है, हित-कामना की है और बहन से भी अधिक स्नेह और यत्न किया है। उसने उस रात की बात स्मरण की। रोगी के प्रति दया और हित-कामना का भाव हृदय में होने पर भी जिस प्रकार वैद्य को निष्ठुर काम करना पड़ता है, उसी प्रकार सावित्री ने निष्ठुर होकर उसे घर से बाहर निकालकर उसकी रक्षा की थी। ऐसा कौन कर सकता था? कौन अपनी छाती पर वज्र रोककर उसे बचा सकता था? सतीश की आंखें भर आई, किन्तु उसका यह संशय किसी प्रकार दूर न हो सका कि इन प्रश्नोत्तरों में उससे कहीं कोई भूल अवश्य हो रही है।

उसने फिर प्रश्न किया—'परन्तु मैंने तो उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है।'

उत्तर मिला—'क्यों किया? क्यों जान-बूझकर कीचड़ में फंसने गये?'

प्रश्न किया—'यह ज्ञात नहीं। कमल लेने जाने पर भी तो कीचड़ लगता है।'

उत्तर मिला—'यह तो पुरानी बात है—अब काम में नहीं आती। कमल लेकर घर लौटते समय मनुष्य कीचड़ धो लेता है। पर तुम्हारा कमल क्या है? और यह कीचड़ तुम कैसे धोकर घर जाते है?'

'मान लो, घर न लौटता?'

उत्तर मिला—'राम! राम!! ऐसी बात मुख पर भी न लाना।'

उसके बाद कुछ देर तक वह स्तब्ध हो सितारों से भरे काले आकाश की ओर देखता रहा, फिर सहसा बोल उठा—मैंने तो उसकी आशा छोड़ ही रखी थी। उसे पाना भी नहीं चाहता, लेकिन उसने मेरा इस प्रकार अपमान क्यों किया? एक बार भी कुछ पूछा क्यों नहीं? किस दुःख से वह यह काम करने गई? रूपयों के लोभ से किया है, यह बात तो किसी प्रकार ध्यान में नहीं आती। विपिन जैसे अनाचारी को—शराबी को वह मन-ही-मन प्यार करती है, यह मानने को हृदय साक्षी नहीं देता। फिर क्यों?

गंगा के ऊपर से आने वाली ठंडी हवा से सतीश को जाड़ा लगने लगा। ऊनी चादर से शरीर को अच्छी तरह ढक कर वह आंखें बन्द कर बैंच पर लेट गया। लेटते ही उसके सामने सावित्री का मुख उज्ज्वल होकर खिल उठा। कहां? पतिता होने का तो कोई भी चिन्ह इस मुख पर नहीं है। गर्व से दीप्त, विवेक से शान्त, स्नेह से स्निग्ध, यौवन के बोझ से गंभीर, साथ ही रस से चंचल—वह मुख, वह हंसी, वह दृष्टि, वह संयत परिहास, सबसे बढ़कर उसकी वह अकृत्रिम सेवा। एक साथ ये सब चीजें उसने अपने जीवन में कभी देखी नहीं थी। राख से ढंकी हुई आग के समान उसके आवरण को लेकर खिलवाड़

करने जाने पर जो आग भड़क उठी, उसकी ज्वाला से कैसे कहां भागकर वह जान बचाये? जान बचाकर ही क्या करेगा? उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। इन आंसुओं को उसने रोकना न चाहा—इन आंसुओं को पोंछने की भी उसे इच्छा न हुई। आंसुओं में इतनी मिठास है, इतनी सरसता है, इसका आज पहले-पहल अनुभव कर वह सुखी हुआ और जिसके कारण इतने बड़े सुख का आस्वादन जीवन में आज पहली बार करने का उसे अवसर मिला, उसके प्रति दोनों हाथ जोड़कर नक्षत्रभूषित दिगन्त विस्तृत आकाश की ओर दोनों सजल नेत्रों को स्थापित कर उसने बार-बार नमस्कार किया।

सतीश चाहे जैसा भी क्यों न हो, लेकिन इस बात पर वह पूर्ण विश्वास करता था कि भगवान हैं, उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता, छोट-बड़े सबको उसके सामने एक दिन उत्तर देना पड़ेगा। आंखें पोंछकर वह उठ बैठा, मन-ही-मन बोला, 'भगवान, किसके हाथ तुम कब क्या भेज देते हो, यह कोई कह नहीं सकता। आज तुम्हारी ही कृपा से सावित्री दाता है, मैं भिक्षुक हूं। अतएव वह भली है या बुरी, इसके निर्णय का भार और चाहे जिसे सौंपो पर भगवान! इस विचार का भार इस भिखारी पर न देना। मेरे हृदय से सम्पूर्ण ज्वाला, सम्पूर्ण द्वेष दूर कर दो— जो व्यक्ति दाता के ही समान चुपचाप आंखों की ओट हो गया है, उसके प्रित मैं कृतघ्न न बनूं।'

सतीश फिर एक बार बेंच पर सो गया। किले की घड़ी में दो बज गए। उसके थके हुए नेत्र धीरे-धीरे मुंद गए। झपकियां लेते हुए उसने कहा—'नहीं, इस प्रकार भी नहीं। मैं कभी तुम्हारा विचार करने न बैठूंगा। आज से केवल प्रार्थना करूंगा कि अच्छी रहो, सुख से रहो।' इसके बाद वह सो गया।

उधर बैरिस्टर साहब के घर में सन्ध्या के बाद, बैठकखाने में सरोजिनी, ज्योतिष, उपेन्द्रनाथ तथा और भी एक नवयुवक बैठा था। इनकी दाढ़ी-मूंछें घुटी हुई थीं—शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। इनका नाम शशांक मोहन है। ये भी विलायत हो आये हैं, अत: पूरे साहब हैं। थोड़े दिन से सरोजिनी की ओर झुके हैं और प्रेम प्रकट करने का यत्न पूरे रूप से करते हैं। वह यत्न कहां तक सफलता की ओर बढ़ रहा है, यह विधाता ही जानता था। आज सतीश की चर्चा चली थी। उपेन्द्र ने उसके असाधारण शारीरिक बल, अद्‌भुत साहस का परिचय देकर उसकी अपूर्व संगीत साधना का वर्णन करना शुरू किया। पास ही सोफे पर बैठी सरोजिनी बड़ी तन्मयता से वे बातें सुन रही थी। इसी समय बिहारी ने बैठक में आकर सतीश के भवानीपुर चले जाने की सूचना दी।

उपेन्द्रनाथ ने कुछ विस्मित होकर पूछा—'वहां उसका कौन रहता है?'

बिहारी संक्षेप में 'मालूम नहीं' कह कर चला गया। सब लोग सतीश की ही प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए सभी लोग निराश हुए। सरोजिनी अब तक झुककर, हाथों पर गाल रखे बैठी थी। इस सूचना से वह सीधी हो बैठी, एक लम्बी सांस भरकर बोल उठी—'तो अब क्या होगा?'

ज्योतिष उसकी ओर देख प्रेमपूर्वक हंसे।

परन्तु केवल शशांकमोहन निराश न हुए, बल्कि प्रसन्न होकर उन्होंने प्रस्ताव किया कि अब पतवार सरोजिनी के ही हाथ में दी जाये। संगीत-सुधा का रसास्वादन करने में वे कितने पटु थे, यह वह स्वयं जानते थे। हां, सरोजिनी के आपत्ति प्रकट करते ही वे

बोल उठे—'मैं तो कहता हूं कि पुरूषों को गीत गाना ही अनुचित है। स्वभावतः उनका गला मोटा और भारी होता है अतएव वे चाहे जितनी भी उत्तम शिक्षा पायें, जितनी भी साधना करें, उनके गान में वह लालित्य और माधुर्य आ ही नहीं सकता जो स्त्रियों के कण्ठ स्वर में होता है।'

यद्यपि और किसी ने इस बात का प्रतिवाद नहीं किया, तथापि सरोजिनी चुप न रह सकी, वह बोली—'आपको भले ही पुरूषकण्ठ में माधुर्य न मिलता हो, परन्तु स्वर का मोटा होना कोई दोष नहीं है। यदि यही बात होती तो हार्मोनियम और पियानो के शुरू के पर्दे मोटे और भारी क्यों बनते और फिर लोग ही क्यों उन्हें खरीदते?'

शशांकमोहन के पास इस बात का उत्तर था। फिर भी वे अपने गोरे मुंह को जरा लाल कर न मालूम क्या कहने जा रहे थे कि सरोजिनी एकाएक उठ खड़ी हुई, बोली—'माँ से कह आऊं—वह भोजन की थाली लिये बैठी होंगी।'

उपेन्द्रनाथ ने चौंक कर कहा, 'ओ हो, मालूम होता है, उसका खाना-पीना मां जी के ही चौके में होता है। शैतान!'

उपेन्द्रनाथ के कथन में आन्तरिक प्रेम के अलावा और कोई बात न थी और सतीश यदि उन्हें विशेष प्रिय न होता, तो मुंह से ऐसा शब्द निकाल भी न सकते, इस बात को सरोजिनी सम्पूर्ण रूप से समझ गयी, हंसकर बोली—'यह आपकी जबरदस्ती है। उनकी रूचि यदि आपकी कुरूचि के साथ न मिले, तो दोष आपका है, उनका नहीं। अच्छा, मां को कह आती हूं।' कह कर सरोजिनी तेजी से अन्दर चली गयी।

उसके जाते ही शशांकमोहन ने उपेन्द्रनाथ की ओर घूमकर कहा— 'मेरी समझ में आपके मित्र महाशय सनातनी हैं।'

उपेन्द्रनाथ ने मुस्कराकर कहा, 'ऐसा-वैसा नहीं, कट्टर सनातनी है। पूजा-पाठ भी करता है।'

सतीश बीच-बीच में छिपकर शराब पीता था यह वे नहीं जानते थे। शायद स्वप्न में भी इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

शशांकमोहन ने पूछा, 'वे करते क्या हैं?'

उपेन्द्रनाथ, 'कुछ भी नहीं और किसी को आशा ही नहीं है कि किसी दिन वह कुछ करेगा।'

इस सम्वाद से शशांकमोहन के मन पर से एक बोझ-सा उतर गया। वे प्रसन्न हो हंसकर बोले, 'इसी पर?'

ज्योतिष अब तक चुप होकर सुन रहे थे। उपेन्द्र को लक्ष्य करके बोले—'उपेन्द्र, मुझे यह बात ठीक न जंची। शारीरिक उत्कर्ष का क्या कुछ भी मूल्य नहीं है? इसके अलावा उनकी गानविद्या पर तो मैं एकदम मोहित हो गया हूं। जो कुछ उन्होंने किया है, उसके योग्य सम्मान या आदर यदि हमारे देश में उन्हें न मिले तो निश्चय ही यह दुःख की बात है, पर इसमें दोष हम लोगों का ही है—उनका नहीं।'

जिसे मुकदमेबाजी के कागजात की छानबीन न करनी पड़े, जिसे अटर्नी के साथ ले दे और उठा-पटक न करनी पड़े, जिसे अफसरों की फटकार न सुननी पड़े, यदि वह भी इन ललित-कलाओं की ओर ध्यान न दे, तब तो यह संसार बिल्कुल नीरस दुकानदारी

बन जाये। भाई, सच तो यह है कि मुझे तुम्हारे इन मित्र महोदय को देखकर ईर्ष्या होती है। हां, इनके पिता की आय कितनी है?'

इसी समय सरोजिनी ने चुपचाप कमरे में आकर अपने भाई की कुर्सी के सहारे खड़ी होकर पूछा—'किसकी भैया?'

ज्योतिष ने कहां—'सतीश के पिता की।

उपेन्द्र ने कहा—'ठीक मालूम नहीं, पर मैं समझता हूं कि दो लाख से कम न होगी।'

ज्योतिष दोनों आंखें फाड़कर बोल उठे—'दो लाख? तब तो राजा जान पड़ता है!'

उपेन्द्रनाथ—'नहीं, राजा नहीं—हां, एक पुराने बड़े जमींदार हैं। उस पर बुड्ढे ने अपनी जीवन में बहुत बढ़ाया भी है।'

ज्योतिष कुर्सी पर लेट गये, एक लम्बी सांस लेकर बोले—'एकदम से सौभाग्य की देवी का वरद्-पुत्र ही है! स्वास्थ्य, शक्ति, रूप, ऐश्वर्य—मनुष्य जो कुछ चाहता है, सब एक साथ।'

उपेन्द्रनाथ हंसने लगे। अन्त में बोले—'एक भयंकर दोष भी है। दूसरे की विपत्ति को जान-बूझकर अपने सिर ले लेता है। इसी से भय लगता है कि कहीं किसी की विपत्ति मोल लेकर जान न गंवा दे। इसके अलावा तुम जो कुछ कहते हो, सभी ठीक है।'

ज्योतिष सीधे बैठकर बोले—'जान न खो बैठे? इसका क्या मतलब?'

उपेन्द्रनाथ ने कहा—'हां, असंभव नहीं है। पहले ऐसा कुछ काण्ड कर भी चुका है। क्रोध उसके शरीर में जितनी ही अधिक है, प्राणों का मोह उतना ही कम है। इस कलियुग में रहकर भी जिसकी धारणा अन्याय, अत्याचार के सम्बन्ध में सत्ययुग की-सी होती है, और क्रुद्ध होने पर जिसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता, उसके जीवित रहने न रहने पर मैं पूरा भरोसा नहीं रखता। सह सकना भी एक प्रकार की शक्ति है। बिना बुलाये सहायता करने का लोभ संभाल सकना भी कभी-कभी आवश्यक होता है, इन बातों को तो वह समझता ही नहीं है। वह मानो विलायत का पुराने जमाने का नाईट है, अब यहां बंगाल में आकर जन्मा है।'

ज्योतिष ने क्षण भर चुप रह हंस कर कहा—'चाहे जो कहो, लेकिन सुन कर श्रद्धा होती है।'

उपेन्द्रनाथ ने कहा—'और नहीं भी होती। संसार में रह कर बहुतेरी छोटी-मोटी चीजों की ओर से दृष्टि हटा लेनी पड़ती है, अभी तक उसने यह सीखा ही नहीं है। कभी सीख सकेगा या नहीं, पता नहीं। यदि न सीख सका तो अन्तिम फल अच्छा न होगा। न अपना और न उसके कुटुम्ब या इष्ट-मित्रों का।'

ज्योतिष ने कहा—'तुम तो उसके अपने हो—'मित्र हो, तुम्हीं क्यों नहीं सिखाते?'

उपेन्द्रनाथ के मुंह से हंसी निकल पड़ी, बोले—मैं उसका मित्र अवश्य हूं, लेकिन इस शिक्षा का भार मेरे जैसे मित्र पर नहीं है। जो सब मित्रों से बड़ा मित्र होगा, जो अन्य सभी इष्ट-मित्रों से बढ़कर अपना होगा, या वही उसे सीखा सकेगा अथवा वह सदा अशिक्षित ही रह जायेगा।'

सरोजिनी अब तक चुप बैठी सुन रही थी, अब मुंह फेर कर उसने जरा हंसी को छिपाने का प्रयत्न किया।

उपेन्द्रनाथ ने उकताकर कहा—'सतीश की चर्चा आज यहीं तक। मुझे अब उठना पड़ेगा, दो पत्र लिखने हैं।'

ज्योतिष को भी जरूरी कागज-पत्र देखने थे, उन्हें भी बैठने का अवकाश न था। वे भी उठने को तैयार थे। लेकिन पहले सरोजिनी ही उठ खड़ी हुई। उपेन्द्रनाथ से वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। किसी को विदाई का अभिवादन भी न किया। चुपचाप अन्यमनस्क-सी हो, धीरे-धीरे बाहर चली गई। आज की सभा जैसी जमने की बात थी वैसी जम तो सकी ही नहीं, बल्कि भंग हुई, उससे भी की बढ़ कर बुरी तरह से।

उपेन्द्रनाथ न तो कुछ जानते थे और न वे कुछ जान सके।

15

तीक्ष्ण बुद्धि वाली किरणमयी ने पति की बीमारी के समय इन कई दिनों तक उपेन्द्रनाथ के संग-साथ रहने का अवसर पाकर उन्हें पहचान लिया। इससे उनके द्वारा उसकी न केवल हानि की दुःखमयी आशंका ही दूर हुई, बल्कि इस अपरिचित के लिए एक गम्भीर श्रद्धा के भाव से उसका हृदय सजल जलद का-सा बन गया। ऐसा आदमी उसने कभी देखा नहीं था। ऐसे आदमी की संगत में आने की किसी दिन उसने कल्पना भी न की थी। इसी से, इस थोड़े समय के परिचय मात्र से उसने भविष्य का सारा सुख दुःख इन्ही के हाथों में निर्भय होकर सौंप दिया और निर्भय होकर भी निर्भर करना क्या वस्तु है, इस बात का ज्ञान होते ही उसके बंधे हुए प्राणों को मानो खुल कर मुक्त प्रकाश देखने का एक सबल अवसर मिला।

उपेन्द्रनाथ सवेरे से रात तक रह कर मृत्यु के किनारे पहुंचे हुए मित्र की सेवा करते रहे। इस सेवा का कुछ मूल्य न था। कारण, हारान के जीने की आशा बिल्कुल न थी, किन्तु इस सेवा ने किरणमयी की आंखों में अपने स्वामी की उन मुट्ठी भर सूखी हड्डियों को भी मूल्यवान् कर दिया। इन अर्द्धमृत शरीर पर ही वह बहुत मोहित हो उठी। उसके आचार-व्यवहारों में होने वाले इस परिवर्तन को मृत्यु के निकट पहुंचे हुए हारान बाबू ने भी देखा। लड़कपन में किरण पराये घर पाली-पोसी गई और लड़कपन में ही उससे भी अधिक पराये स्वामी के घर आयी थी। सास अघोरमयी ने कभी उसको प्यार नहीं किया, बल्कि जहां तक हो सका, उसे सताती रही। पति ने कभी उस पर प्रेम नहीं प्रकट किया। वे दिन में स्कूल में पढ़ाते और रात को स्वयं अध्ययन करते थे और अपनी स्त्री को भी पढ़ाया करते थे। विद्या-प्राप्ति के नशे ने उन्हें ऐसा दबा लिया था कि दोनों में गुरू-शिष्य के कठोर सम्बन्ध के सिवा पति-पत्नी के मधुर सम्बन्ध को विकसित होने या फूलने-फलने का कभी भी अवकाश न मिल सका। इसी प्रकार वह परम सुन्दरी और तीक्ष्ण बुद्धि वाली रमणी बालपन बिता कर परिपूर्ण यौवन के मध्य में पहुंची थी, इसी प्रकार संसार के सौन्दर्य-माधुर्य से निर्वासित होकर शुष्क बन गई थी और इसी प्रकार स्नेह और प्रेम से वंचित होकर ही वह नारी के श्रेष्ठ धर्म से हाथ धो लेने को तैयार हो बैठी थी। अघोरमयी को सब कुछ ज्ञात था। वह भी समझती थी कि उसी सुन्दर पतोहू आज-कल सतीत्व की मर्यादा को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगी है। किन्तु पुत्र-मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, विकट दुःख के दिन निकट थे, शायद इसी से वह वधू के बेढंगे आचार-व्यवहारों की ओर से

बहुत अंश में आंखें मूंद बैठी थी। जो डाक्टर हारान की चिकित्सा करता था, वह किस आशा से मूल्य लिये बिना दवा-दारू और पथ्य देता था और क्यों उसके घर का प्रायः आधा व्यय भी देता था, यह उससे छिपा न था, परन्तु बीमार लड़के की चिकित्सा के सामने और अपने कष्टों एवं अभावों के आगे किसी अन्याय को बड़े रूप से देखने का साहस उसमें न था, न शिक्षा ही थी। वैसे वह पतोहू को चाहती भी न थी। उसे यह विश्वास हो गया कि उपेन्द्र भी धीरे-धीरे इस जाल में फंस रहा है। उपेन्द्र के मुक्तहस्त होकर रूपये खर्च करने तथा निरन्तर सेवा करने के विषय में वह सोचती थी कि उपेन्द्र का उद्देश्य बाल-बन्धुत्व की सीमा को पार कर चुपके से एक और स्थान पर जड़ को फैला रहा है। पर इसमें उसे आपत्ति भी न थी। कल से उपेन्द्र क्यों नहीं आया—यही बात अघोरमयी अपने कमरे के बाहर बैठ कर एक मैली-कुचैली फटी हुई रजाई ओढ़े विचार कर रही थी।

शीतकाल का सूर्य उस समय भी डूबा न था। किन्तु इस घर के भीतरी भाग में अन्धकार की छाया पड़ चुकी थी। सूर्य भगवान् कब उगते और कब डूबते हैं, अच्छे दिनों में भी घर के लोग इसकी सूचना नहीं रखते, आजकल दुःख के दिनों में तो उसके साथ प्रायः सारा सम्बन्ध ही विच्छिन्न हो गया था।

अघोरमयी ने पुकारा, 'बहू, दीया-बत्ती जला कर एक बार यहां तो आना, कुछ कहना है।'

किरणमयी उसी कमरे में काम कर रही थी, बोली, 'मां, अभी शाम नहीं हुई, तुम्हारा बिस्तर बिछा आती हूं।'

अघोरमयी ने कहा—'क्या? मेरा बिस्तर? वह तो सोने के समय मैं आप ही बिछा लूंगी। नहीं-नहीं, तुम जाओ बहू दीये जला आओ, बैठो, जरा दम तो ले लो। दिन-रात परिश्रम करते-करते तुम्हारी देह आधी रह गई, उस ओर भी निगाह रखनी चाहिए।' यह कह और एक लम्बी सांस भर कर वह चुप हो रही। थोड़ी देर बाद जब बहू पास आकर बैठने लगी तो बोली—'पहले दीपक...'

बहू ने कुछ ऊब कर कहा, 'मां, तुम क्यों इतना घबरा रही हो? शाम होने में अब भी बहुत देर है।'

अघोरमयी ने प्रेम से कहा, 'देर है तो होने दो, नीचे तो अंधेरा हो गया है, जरा दिन रहते ही सीढ़ी का दीपक जला देना ठीक है। शायद अभी उपेन्द्र आ जाये, कल से वह यहां नहीं आया। क्यों बहू, अभी तक तुमने हाथ-मुंह नहीं धोया, न बाल संवारे? देखती हूं, अब तक तुमने कुछ भी नहीं किया—क्या कर रही थीं?'

सास के स्वर में इस अचानक ममतानुरोध का आभास पाकर चकित बहू क्षण भर उसके मुख की ओर देखती रही, जरा हंस कर बोली, 'मां, इस समय किस दिन हाथ-मुंह धोती और कपड़े बदलती हूं? अभी तो मेरा रसोई घर का काम भी नहीं समाप्त हुआ। उसके पश्चात्...'

सास झुंझलाकर बोल उठी, 'बाद का काम उसके बाद होगा, बहू, पहले मेरी बात मानो!'

बहू जाने के लिये खड़ी होकर बोली, 'जाती हूं, दीपक जला आती हूं, फिर तुम्हारे

पास आकर बैठूंगी।'

अघोरमयी खीझ उठी, 'मेरे पास इस समय झूठ-मूठ बैठने की क्या आवश्यकता है, पहले काम देखना चाहिए कि बैठना। बहू दिन-दिन तुम न जाने कैसी होती जा रही हो!

उसकी स्नेहपूर्ण फटकार एकाएक तीव्र अपमान के रूप में बदल गयी। वे बातें कड़वी और रूखी होकर किरणमयी के कानों में चुभ-सी गई। उसने भी उत्तर दिया, 'मां, तुम्हीं लोगों ने तो मुझे ऐसा बनाया है। हर समय ऐसी उल्टी-पल्टी बातें करने से, सुनना चूल्हे में जाए, वे समझ में भी तो नहीं आतीं। तुम्हारा तात्पर्य क्या है, साफ-साफ कहती क्यों नहीं।' कहकर एक सेकेण्ड भी उत्तर के लिए न ठहरी, तेजी से चली गई। बहू के इस तरह जाने का तात्पर्य इस घर के सभी जानते थे अघोरमयी ने भी समझ लिया।

किरणमयी नीचे-ऊपर दीपक जलाकर जब अपनी सास की कोठरी में आई तब पास रो रही थी। उसके आंसू किसी भी थोड़े से कारण से उबल पड़ते थे।

किरणमयी ठिठक कर खड़ी हो गई, बोली, 'मां, तुम्हारी राम नाम की माला ला दूं?'

रजाई के कोने से आंख पोंछ कर भरे हुए स्वर से बोली, 'ला दो।'

वह दीवार पर टंकी हुई झोली उतारकर सास के हाथ में देने गई। सास ने झोली न लेकर बहू का हाथ पकड़ लिया और कहा 'जरा बैठो बेटी!' कहकर उसका हाथ खींच, अपने पास बैठा, उसके मुंह और सिर पर हाथ फेर दिया, ठुड्डी चूमी और बहुत देर तक स्तब्ध होकर रोने लगी। किरणमयी अटल भाव से बैठी हुई स्नेह का यह अभिनय देखती रही।

कुछ देर बाद अघोरमयी ने फिर एक बार चादर के कोने से आंख पोंछकर कहा, 'शोक और दुःख से मैं पागल हो गई हूं, मेरी जरा-जरा सी बात पर तुम्हें इतना क्रोध न करना चाहिए!

किरण ने अविचल भाव से कहा, 'शोक और दुःख केवल तुम्हीं को तो नही है। मैं भी तो मनुष्य हूं, जब तुम इसे भूल जाती हो, तभी मुझे दुःख होता है, नहीं तो हजार बातें कहने से भी क्रोध नहीं आता।'

अघोरमयी ने आँखें पोछते हुए कहा, 'यह क्या मैं नहीं जानती बेटी। लेकिन एक-एक कर मेरे सब चले गए, अब एक तुम्हीं मुझ अन्धी की लड़की हो, तुम्हीं मेरी बेटी या बेटा, सब कुछ हो। हारान का शोक केवल तुम्हारा मुंह देखकर ही सह सकूंगी, तुम्हें ही देखकर कलेजा पत्थर का कर सकूंगी।' इतना कह, वह फिर एक बार चादर आंखों में लगाकर रोने लगी लेकिन किरण इस कपट में अपने को न भूली। वह मन-ही-मन जलकर शान्तिपूर्वक स्थिर भाव से बोली, 'तुमने तो अपने लिए यह बात सोच रखी है, लेकिन मां, मैं कैसे सहन करूंगी, इसकी तुम्हें कोई चिन्ता नही—और मैं यह भी कहती हूं अभी इन बातों की आवश्यकता ही क्या है? जब सचमुच वह बुरी घड़ी आ उपस्थित होगी, तब कलेजा कड़ा करने के लिए क्या समय की कमी रहेगी? पर अभी से ऐसा सोचना क्या ठीक है?'

बहू की बातें खूब मीठी न लगने पर भी उसमें कितना व्यंग छिपा हुआ था, अघोरमयी यह न जान सकी बल्कि बोली—'अब समय आने में देर ही क्या है बेटी? उपेन्द्र उस दिन जिस डाक्टर साहब को लाया था, वह भी अवस्था कुछ निराशजनक ही बता गया।

बहू, मैं तो केवल यही सोच रही हूं कि उपेन्द्र यदि इस समय न आ पहुंचता, तो हमलोगों की कैसी दुर्दशा होती है ?'

बहू को चुपचाप सुनते देख, वह जरा उत्साहित होकर कहने लगी—'उसे बचपन से ही जानती हूं। नोआखाली में तो हारान और उपेन्द्र दोनों दो भाइयों के समान ही मेरे पास आते-जाते थे, तभी से वह मुझे मौसी कहता है। जैसे इसके बाप बड़े उदार आदमी हैं, वैसे ही उनका यह लड़का भी बड़ा उदार है। उस दिन मुझे रोता देखकर बोला—'मौसी हारान भैया का छोटा भाई ही समझो, इसे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।' मैंने कहा—'बेटा, मुझे किसी तीर्थस्थान में रख दो, जिससे जितने दिन जीऊं उतने दिन गंगा के किनारे ही रहूं और अन्त में माता गंगा की गोद में जाकर अपने हारान के पास जा सकूं।' वह और अधिक न बोल सकी, व्याकुल होकर रोने लगी। बहू चुपचाप बैठी थी। वह चुप रही। वह कुछ देर रोकर हृदय का बोझ हल्का कर अन्त में आंखें पोंछ गम्भीर स्वर में बोली—'रह-रहकर मन में यही बात उठती है कि बहू' यदि उपेन्द्र न आता तो—'बहू, नीचे कोई पुकार रहा है क्या ?'

बहू ने कहा—'मजदूरिन नीचे बरतन मांज रही है, कोई आया होगा तो वह खोल देगी।' सास ने व्यथित होकर कहा— नही-नहीं बहू ! तुम्हीं जाओ। मजदूरिन जब काम में लगी रहती है, तब वह किसी की कुछ सुनती नहीं है।'

किरण ने बिना किसी प्रकार का उद्वेग प्रकाशित किए धीरे से कहा—'मां मुझे भी काम है, भोजन बनाना...'

अघोरमयी अचानक जलकर बोली—'भोजन भागा नही जाता है बेटी। तुम कुछ भी नही समझती। जिनके बिना...'

किरण खड़ी होकर बोली—'मुझे समझाने की आवश्यकता नहीं है। सभी लोगों के चले जाने पर भी यदि हम लोगों के दिन कटे है, तो उपेन्द्र बाबू के बिना भी काम न रूकेगा।' कहकर वह रसोई घर की ओर चली गई।

अघोरमयी क्रोध से कोई बात न कह सकी और जब तक बहू आंख की ओट न हुई, तब तक उसकी दोनों आंखें मानो आग बरसाकर उसे ढकेलकर बिदा करती रहीं। इसके बाद वह बड़े क्रोध से मजदूरिन को बार-बार पुकारने लगी। उसकी भी आहट न मिली। शीत के भय से सन्ध्या के पहले ही बड़ी झनझनाहट के साथ बर्तनों का मांजना-धोना समाप्त कर रही थी, उसे अघोरमयी की क्रोध भरी आवाज सुनाई न पड़ी। अघोरमयी क्रुद्ध होकर स्वयं उठी। कमरे का दीपक हाथ में ले, बरामदे के पास आ चिल्लाकर बोली—'अरी, कान में डाट डाल लिया है क्या ? सुनती नहीं उपेन्द्र बाबू घण्टे भर से बाहर खड़े-खड़े चिल्ला रहे हैं।'

यह चिल्लाहाट मजदूरिन ने सुनी और उपेन्द्र का नाम सुन झटपट गिरती-पड़ती दौड़कर किवाड़ खोल दिए। किन्तु कोई न था। तब उसने बाहर सिर निकाल कर अन्धेरे में जितनी दूर दिख पड़ा, आंखें फाड़कर देखा, जब कोई न दिखाई पड़ा, तब लौटकर बोली—'नहीं मांजी, कोई भी तो नहीं है।'

अघोरमयी दीपक हाथ में लिए व्यथित होकर प्रतीक्षा कर रही थी, अविश्वास करके बोली, 'नहीं कैसे ? मैंने अपने कानों से उसकी आवाज सुनी है ? तूने एक बार गली में

उतर कर क्यों नहीं देखा ?

दासी ने कहा, देखा तो पर कोई नहीं है।'

बात विश्वास करने योग्य न थी। उपेन्द्र कल नहीं आया, क्या आज भी न आयेगा ? इसी से झुंझलाकर अघोरमयी बोली, 'तू जा, एक बार फिर अच्छी प्रकार देख आ, कोई है या नहीं ?'

बाहर अन्धेरी गली में दासी जाना नहीं चाहती थी। उसने भी झुंझलाकर उत्तर दिया, 'तुम भी कैसी बातें करती हो मां जी ? वे क्या आंख-मिचौली खेल रहे हैं कि अन्धेरी गली में जाकर टटोल कर देखना होगा ?' कह कर वह अपना काम करने लगी।

अघोरमयी अपने कमरे में जाकर चुपचाप बिस्तर पर पड़ रही। बीमार लड़के का हाल पूछने का भी उत्साह उसमें न था। उसके मन में बार-बार यह बात उठने लगी—उपेन्द्र कल नहीं आया, आज भी नहीं आया। नाना प्रकार के सम्भव-असम्भव कारण सोचती रही पर उसके मन में एक बार भी न आया कि वह कलकत्ते का रहने वाला नहीं है, अन्यत्र उसके घर-द्वार, बाल-बच्चे हैं। वहां लौट जाना भी सम्भव है। सोचते-सोचते अचानक ही उसके मन में विचार आया कि अप्रसन्न तो नहीं हो गया ? इस बात को मन में दुहराते ही उसका अन्तःकरण भय से भर गया। बहू के व्यवहार की बात के साथ मन-ही-मन अपनी इस नई आशंका को जोड़कर उसने कहा, 'ठीक, यही बात है। बहू यदि अब...' वह पड़ी न रह सकी। रसोई घर की ओर चली।

किरणमयी जलते हुए चूल्हे की ओर दृष्टि किए चुप बैठी थी। जलती लकड़ियों की कुछ सफेद और कुछ लाल रोशनी उसके मुंह पर पड़ रही थी। सिर पर कपड़ा न था, आज उसने बाल भी नहीं बांधे थे। बिखरे बालों को जैसे-जैसे लपेट लिया था, आंचल लटक रहा था।

अघोरमयी द्वार के सामने चुपचाप खड़ी रही। आज जो वस्तु उसकी आंखों के आगे दिखाई दी, उसे सम्पूर्ण रूप से हृदय में बिठा लेने की भी शक्ति उसमें न थी। जिस शांत मुखड़े पर आग की दीप्ति विचित्र तरंगों की भांति थिरक रही थी, वह उसके तमाम ज्ञान के बाहर की वस्तु थी। इस मुखड़े में कोई दोष है या नहीं, इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। निष्कलंक-निर्दोष कहने से भी उस मुखड़े का ठीक-ठीक वर्णन नहीं होता। वह मुखड़ा बड़ा ही सुन्दर है, ऐसा कहने से भी जी नहीं भरता।

यह तो प्रत्यक्ष आश्चर्य है ! इसे पहले कभी नहीं देखा। यह अपूर्व है ! बड़ी देर तक देखने के बाद लम्बी सांस-भरकर मन-ही-मन बोली—'अहा ! यह क्या मनुष्य का मुखड़ा है ?'

सास के शब्द से बहू चौंक उठी। देखा, सास खड़ी है। धीरे से सिर का कपड़ा सम्भालकर बोली—'मां, तुम यहां क्यों आयी हो ?'

स्वर सुनकर उसे और भी चकाचौंध लग गयी, अपनी बहू के मुंह से ऐसा शांत; ऐसा करूण कण्ठस्वर उसने कभी नहीं सुना। झट से बोली—'बेटी, तुम अकेली भोजन बना रही हो, इसी से एक बार देखने आ गयी।'

बहू ने उसकी ओर एक पीढ़ा बढ़ा दिया और चूल्हे की ओर दृष्टि किए चुप साधे

बैठी रही। उसके मन में फिर झुंझलाहट ने सिर उठाया। गन्ध जैसे वायु के सहारे फूल के बाहर आती है, वायु के झकोरे से उड़ जाती है, ठीक उसी प्रकार किरणमयी का उस समय का मनोभाव सास के अचानक आने से क्षण भर में बाहर आकर कपट स्नेह की आंधी से उड़ गया। इसमें सच्चापन नहीं, केवल कपट है, इस विषय में उसे जरा भी सन्देह नहीं रह गया, पर व्यर्थ की बात बढ़ाकर लड़ना-झगड़ना अब उसे अच्छा नहीं लगता था, इससे वह ऊब-सी गयी थी—थक गई थी।

कुछ देर चुप रह कर अघोरमयी ने कहा, 'मजदूरिन को यहां भेजती जाऊं ?

किरणमयी ने अपने अन्दर उठे हुए विद्रोह को दबाकर शांत भाव से कहा, 'क्या आवश्यकता है मां ! मैं नित्य ही अकेली रहती हूं। कुछ भय नहीं लगता बल्कि वे वहां अकेले हैं—कोई उनके पास जाकर बैठता तो अच्छा होता।'

बीमार लड़के की चर्चा से माता चोट खाकर व्यस्त होकर बोली—'हां, ठीक है, मैं जाती हूं बेटी ? तुम भी जल्दी ही काम समाप्त करके चली आओ !'

इसी बीच में उपेन्द्र कलकत्ते से घर लौट गया था, सतीश भी केवल एक ही दिन उपेन्द्र के साथ हारान हो देखने आया था फिर नहीं आया। वह अपनी चोट से अलग छटपटा रहा था। उपेन्द्रनाथ ने भी उसका मनोभाव और इस घर में आने की अरूचि देखकर उसे आने के लिए नहीं कहा। वे अकेले ही दवा-दारू का तथा अन्य कामों का प्रबन्ध कर आते थे। हां, कलकते से घर लौटने के दिन सतीश से उन्होंने कहा था—'कभी-कभी जाकर हारानचन्द्र की सुध लेते रहना और मुझे उनके विषय में सूचित करते रहना।' आज स्कूल से लौटते ही सतीश को उपेन्द्रनाथ का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है—'आशा है, तुम्हारी पढ़ाई चल रही होगी। कई दिनों से हारान भैया का समाचार नहीं मिला है, इससे चिन्ता हो रही है। यद्यपि मैं समझता हूं, समाचार देने की वैसी कोई खास बात न होने के कारण ही तुमने सूचना नहीं दी है, तथापि उनकी चिकित्सा ठीक हो रही है या नहीं, यह अवश्य लिखना।'

सतीश की पीठ पर मानो कोड़ा पड़ा। उसने एक दिन भी वहां जाकर हारान की सुध न ली। इस बीच में न मालूम वहां क्या हो चुका हो ! अपनी लापरवाही के कारण वह घबरा उठा। शीघ्रता से नीचे उतरा। बिहारी जलपान ला रहा था। धक्के से उसके हाथ की तश्तरी और गिलास गिर पड़ा। सतीश ने घूम कर देखा तक नहीं। सड़क पर आकर एक खाली गाड़ी में चढ़ बैठा और तेजी से हांकने की आज्ञा देकर मार्ग की ओर सतर्क होकर देखता रहा। उसे भय था कि कहीं वह गली भूल कर दूर न निकल जाए। बीस मिनट बाद जब वह गाड़ी से उतर कर उस छोटी गली में घुसा, तब भी दिन का प्रकाश था। पैरों के नीचे खुली नाली, चलने का मार्ग और सिर पर आकाश। ये सब अन्धकारों में मिल कर एकाकार नहीं हुए थे। तेजी से चल कर 13 नम्बर मकान के सामने आते ही किवाड़ खुल गए, मानो कोई आंखें बिछाए उसी का मार्ग देख रहा था। सतीश का अन्तःकरण कांप उठा। एकाएक भीतर जाने का उसे साहस नहीं हुआ।

किवाड़ के एक पल्ले की ओट में किरणमयी खड़ी थी। उसने अपना मुस्कराता हुआ

मुखड़ा जरा बाहर निकाल कर बड़े आदर से कहा, 'आओ छोटे बाबू, आओ ! वाह, ठिठक गए !'

फिर वही देवर का नाता ? लज्जा से सतीश का चेहरा लाल हो गया, किन्तु अपने को संभाल कर विनय सहित बोला, 'मालूम होता है, आपने अब तक मुझे क्षमा नहीं किया।'

किरणमयी ने कहा, 'नहीं, तुम तो क्षमा चाहते भी नहीं। बिना चाहे, बिना मांगें क्या मैं जबरदस्ती क्षमा का तौक तुम्हारे गले में लटका देती। ? इससे शायद तुम्हारी मान-हानि होती और तुम ऐसे सस्ते भी तो नहीं हो कि मैं अनायास तुम्हारी मान-हानि करूं ?'

उसकी इस मीठी चुटकी और व्यंग में एक ऐसी गम्भीर कातरता की पुट थी कि सतीश तत्काल झुक गया और बड़ी नम्रता से बोल उठा, 'कुछ भी मूल्य नहीं है भाभी कोई मान-हानि न होगी, आप मुझे क्षमा करें।'

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, 'ऐसी बहुत-सी बातें हैं देवर जी, क्षमा करते ही अन्त हो जाता है। आज तुम्हें क्षमा करने पर यदि फिर 'सतीश बाबू' कह कर सम्बोधन करना पड़े तो याद रखो, वह क्षमा तुम्हें कभी न मिलेगी। तुम्हें फंसा रखने की यह एक जंजीर तुमने स्वयं मेरे हाथ में पकड़ा दी है। उसे अपनी मीठी-मीठी बातों में भुला कर मुझसे ले लोगे, ऐसी मूर्ख इस भाभी को न समझो।' यों कह कर उसने बड़ी अदा के साथ अपनी गर्दन हिलायी। सतीश चौंक उठा। जंजीर से जकड़ने की बात उसे अच्छी न लगी। उसके मन ने कहा, कहीं सचमुच यह सुन्दर युवती अपनी सबल जंजीर में न जकड़ ले, सावधान ! सतीश वास्तव में अपनी रक्षा के लिए अपनी तमाम शक्तियों को केन्द्रीभूत करके प्रस्तुत हो गया। इस मकान में पैर रखते समय उसकी दृष्टि कर्त्तव्य-त्रुटि के धिक्कार से कुण्ठित और लज्जा से झुकी हुई थी, पर अब सहसा यह नयी ठोकर खाकर वह आशंका और तीव्र हो उठी। उसका चेहरा सूख कर ऐसा हो गया कि किरणमयी ने विस्मित होकर पूछा, 'क्या हुआ ? तुम्हारा मुंह यों सूख क्यों गया ? शायद तुमने अब तक कुछ जलपान नही किया है ? आओ ऊपर चलो, कुछ खा लो।'

सतीश बिना बोले-चाले निमन्त्रण पूरा करने के लिए प्रस्तुत हो गया और इस हंसी-मजाक का कुछ अंश कोरा हास्य नहीं जान पड़ता, यह विचार करता हुआ इस रहस्यमयी सुन्दरी के पीछे-पीछे चल पड़ा।

ऊपर पहुंचकर वह इधर-उधर देख कर बोली, 'आज मां मजदूरिन को साथ लेकर काली जी के दर्शन करने गयी हैं। रसोई घर में बैठ कर तुम मेरी पूरियां बेल देना, मैं छान लूंगी, बेल तो सकोगे न ?'इतना कहकर हंस पड़ी, बोली, 'हूं: ! तुम बेल सकोगे, यह तुम्हारी सूरत ही बता रहा है, आओ।'

सतीश ने हृदय के अन्दर होने वाले तर्क-वितर्क को कुछ समय के लिए छिपाकर पूछा 'भाभी, क्या मेरे चेहरे पर यह भी लिखा है कि मैं पूरियां बेल सकता हूं या नहीं ?'

किरणमयी ने कहा—'निस्सन्देह, लेकिन उस लिखावट को पढ़ने की बुद्धि होनी चाहिए। उस रात को क्या मेरे चेहरे पर कुछ लिखा, जिसे तुमने अनायास पढ़ लिया था ?'

सतीश ने फिर सिर झुका लिया। रसोई घर में जाकर पहले इसी प्रकार की पैंतरेबाजी होती रही। बाद को दोनों मिल-जुल कर जब भोजन बनाने लग गए और इस संघर्ष का उत्ताप कुछ ठंडा हो चला, तब किरणमयी ने पूछा—'तुम्हारी बहुतेरी बातें मैंने तुम्हारे उपेन्द्र भैया से सुनी हैं। अच्छा छोटे बाबू, वे शायद अब यहां नहीं हैं, घर चले गए?' सतीश के 'हां' कहने पर किरणमयी ने कहा—'मैं समझ गयी थी कि वे यहां नहीं हैं, लेकिन मां को विश्वास नही होता। वे कहती हैं उन्हें बिना बताए उपेन्द्र बाबू कभी घर न जायेंगे। जो हो, शायद उन्हें शीघ्रता मे जाना पड़ा है।'

सतीश को इसका ठीक-ठीक पता नहीं था। वह तो कुछ भी न जानता था। इसी बीच में इन लोगों के कारण ही दोनों मित्रों में कोई अप्रिय तर्क-वितर्क भी हो गया है, यह बात वह कहना नहीं चाहता था। अतः चुप ही रहा। उपेन्द्र के बिना कुछ कहे-सुने चले जाने का कारण क्या हो सकता है यह उसकी समझ में नहीं आया, किन्तु किरणमयी ने बात दबने न दी, बोली, 'छोटे बाबू, तुम्हारे भैया का यह काम अच्छा नहीं हुआ। वे कहकर जाते तो न उनका कुछ बिगड़ता और न मां ही इस प्रकार सोच-सोचकर मरतीं। मैंने मां को लाख समझाया कि उपेन्द्र बाबू हमेशा यहां नहीं रहते, दूसरी जगह उनका घर है, इसके सिवा कोई कितने दिनों तक दूसरों के पीछे पड़ा रह सकता है? किन्तु मां मेरी एक नहीं मानतीं। मां ही क्यों, बूढ़ा होते ही मनुष्य-मात्र किसी की कोई बात नही मानता, अपने स्वार्थ के सिवा उसे संसार मे मानों और कुछ सूझता ही नही है।'

सतीश ने उस बात का स्पष्ट उत्तर न देकर कहा—'उपेन्द्र भैया इतने दिन यहां रह गए, यही विस्मय है। कही अधिक दिन रहने का उन्हें अभ्यास नहीं है। खास कर शादी के बाद से तो एक रात भी कभी बाहर नही रहते—हम लोग सिर पटक कर रह जाते हैं। पहले सभी बातों में वे हम लोगों के साथ थे। हर काम में हमारे आगे-आगे रहते थे। अब उन्होंने एक-एक कर सब छोड़, घर का पल्ला पकड़ा है। कचहरी गए बिना काम नही चलता मेरी समझ में, इसी से एक बार जाते हैं।'

बहू ने बाधा देकर कहा—'बैठो छोटे बाबू, तुम्हारे खाने के लिए आसन-पानी ठीक कर दूं। तुम खाते भी रहो और बातें भी करते रहो। क्यों, यही अच्छा होगा न?' कह कर आसन बिछा, थाली में भोजन की सामग्री परोस कर पास बैठ गई और बड़े आग्रह से बोली—'हां, फिर?'

सतीश ने एक कौर मुंह में डालकर कहा—'हां, तो फिर एक बारात की बात सुनिए। हमारे उपेन्द्र भैया वर-बधू का जोड़ा मिलाने में बड़े उस्ताद हैं। उन्होंने कितनों की शादियां करायी हैं, इसका कुछ हिसाब नही। हमारे साथियों में से एक के विवाह का सारा आयोजन उपेन्द्र भैया ने अपने हाथो किया। परन्तु ऐन ब्याह की रात को ढूंढे न मिले। एक दम लापता!'छोटी बहू की तबियत ठीक नहीं का बहाना बनाकर वे किसी प्रकार घर से न निकले। हम सब ने मिलकर कितना अनुरोध किया भाभी, किन्तु सब व्यर्थ। पत्थर का देवता होता तो पसीज जाता लेकिन उपेन्द्र भैया किसी प्रकार भी न पसीजे। अन्त में छोटी बहू के यह कहने पर कि 'मैं अच्छी हूं, तुम जाओ, वे बोले कि 'तुम्हारे भले-बुरे का विचार करने का भार मेरे ऊपर है, तुम्हारे ऊपर नहीं, तुम केवल चुप ही रहो।'

किरणमयी चुपचाप बैठी सुनती रही। उसका सम्पूर्ण विगत जीवन मानो उसके हृदय की अन्धेरी गुफा में उतरकर न जाने किस रत्न की खोज में उसकी दीवारों को खुरचता फिरने लगा, किन्तु सतीश कुछ भी न समझ सका। कौन-सी बात कहां चोट करती है, उसे इसका क्या पता? उसने सिलसिला जारी रखा। उपेन्द्र की अनुपस्थिति से किसने कैसी निन्दा की, किसने क्या हंसी उड़ायी, किस प्रकार सबके साहस नष्ट हो गए, क्योंकर सारा मजा किरकिरा हो गया इत्यादि सारी बातें वह बताने लगा, पर उसकी बातें सुनता कौन? किरणमयी तो उस समय कहानी से बहुत दूर चली गई थी।

एकाएक सतीश ने हाथ रोका और बातों का सिलसिला भी। उसने पूछा—'आप सुनती हैं या कुछ सोचती हैं?'

किरणमयी चौंक कर हंसती हुई बोली—हां-हां, सुनती हूं, लेकिन मेरा कहना, यह है कि यदि कोई बीमार हो तो उसकी सेवा करना कुछ बुरा नहीं। यह तो उचित ही है।'

सतीश ने आवेश में आकर कहा—'सेवा करना तो उचित ही है पर ज्यादती तो उसमें भी अच्छी नहीं होती। उस पर जब छोटी बहू को माता निकली थीं, तब उपेन्द्र भैया आठ-दस दिन तक उनके सिरहाने से न उठे। घर में इतने आदमी हैं, फिर उनको स्नान-भोजन बन्द करने की क्या आवश्यकता थी?'

किरणमयी कुछ देर तक उसके मुख की ओर चुपचाप देखती रही, फिर बोली—'अच्छा छोटे बाबू, तुम्हारे उपेन्द्र भैया क्या अपनी बहू को बहुत प्यार करते हैं?'

सतीश ने कहा—'आवश्यकता से अधिक।'

किरणमयी फिर कुछ देर चुप रह कर बोली—'छोटी बहू देखने में कैसी हैं? बहुत सुन्दर हैं।'

'हां, बहुत सुन्दर हैं।'

किरणमयी ने मुस्कराकर कहा, 'मेरी जैसी?'

सतीश ने सिर झुका लिया। कुछ देर के बाद सोचकर सिर उठाकर कहा—'क्या आप सचमुच यह बात जानना चाहती हैं?'

'और नहीं तो क्या?'

सतीश, 'देखिए, मेरी बातों का कोई मूल्य नहीं, परन्तु यदि कुछ भी मूल्य हो, तो मैं कहूंगा कि मेरी समझ में आप जैसा रूप इस पृथ्वी पर भगवान ने और किसी को दिया ही नहीं है।'

किरणमयी कुछ उत्तर देना चाहती थी कि इसी समय नीचे सास की पुकार सुनकर उठ खड़ी हुई। वह काली जी के दर्शन करके लौटी थीं।

सतीश जलपान कर ज्यों ही बाहर आया त्यों ही अघोरमयी सामने दिखाई पड़ी। सतीश के मुंह की ओर देखकर उसने पूछा, 'बहू! यह उपेन्द्र का भाई है न? वह कहां है?'

किरणमयी 'वे घर लौट गए।'

अघोरमयी—'अच्छा' कह अपने रोली और चन्दन से सुशोभित मुख पर ग्लानि की कालिख-सी पोत कर, उदास होकर अपने लड़के के कमरे में चली गई।

सतीश ने कहा—'भाभी, अब मैं जाऊं?'

किरणमयी ने अनमनी-सी होकर कहा 'अच्छा।'

सतीश दो-एक कदम जाकर ही वापस लौट आया, 'बोला 'हां, उपेन्द्र भैया की चिट्ठी आई है। उन्होंने पूछा है कि हारान भैया की चिकित्सा ठीक प्रकार से हो रही है या नहीं?'

किरणमयी—'चिकित्सा बन्द है। जो डाक्टर देख रहा था उससे दिखाने की राय न हुई। अब किसकी दवा होनी चाहिए, इसका निश्चय किए बिना ही वे चले गए।'

सतीश विस्मित होकर बोल उठा, 'यह क्या भाभी? एकदम दवादारू बन्द करके बैठी हो, यह कैसी व्यवस्था है?'

'बिना व्यवस्था किए ही वे चले गए। जहां तक मुझे स्मरण आता है, एक बार उन्होंने कहा था कि सतीश यहीं है, वही व्यवस्था करेगा, पर तुम भी तो नहीं आए। मैं कर ही क्या सकती थी?'

सतीश कुछ देर स्तब्ध खड़ा रहकर बोला, 'कल सवेरे ही आऊंगा।' और वह तेजी से बाहर चला गया।

16

उस रात को सतीश के चले जाने पर बड़ी देर तक किरणमयी अंधेरे बरामदे में मौन बैठी रही, अन्त में उठकर रसोई घर में जाकर, रसोई चढ़ाकर फिर मन मारकर बैठी रही।

उसके हृदय में आज सतीश अपने अनजाने में सुरबाला आदि अपरिचित नर-नारियों का दल लाकर यह जो एक अद्‌भुत नाटक का अस्पष्ट अभिनय आरम्भ करके चला गया, शून्य कमरे में अकेली बैठकर उसको स्पष्ट रूप से देखने का लोभ एक ओर किरणमयी को जैसा प्रबल हो उठा दूसरी ओर कोई अनिश्चित आशंका उसके हाथ, पैर, नेत्रों की दृष्टि को उसी प्रकार बोझिल बनाने लगी। उसे ऐसा जान पड़ा मानो अन्धेरी रात भूत की कहानी की भांति यह संस्मरण, उसको लगातार एक हाथ से खींचने और दूसरे हाथ में ठेलने लगा।

इसी प्रकार विचित्र स्वप्नजाल में पड़ी हुई वह जब अत्यन्त अभिभूत हो रही थी, उसी समय जूते की आवाज सुन, चौंक कर दृष्टि उठाते ही उसने देखा, दरवाजे के बाहर ही डाक्टर अनंगमोहन खड़े हैं।

किरणमयी माथे के कपड़े को थोड़ा-खींच कर उठ खड़ी हुई। डाक्टर ने यह देख कर भौंहें तान लीं।

इसके पूर्व यह डाक्टर ठीक इसी स्थान पर अनेक बार आकर खड़े हुए हैं और उसके कर कमलों की बनी रसोई के लोभ के अतिथि बनने का आवेदन जताकर बार-बार हंसी-मजाक कर गए हैं। उसी पुरातन इतिहास की पुनरावृति की कल्पना करके ही किरणमयी का मन खीझ उठा। वह कठोर बनकर उसी की प्रतीक्षा करके खड़ी रही। लेकिन डाक्टर ने मजाक नहीं किया, क्रुद्ध गम्भीर मुंह से कुछ देर तक चुप रह कर कहा, दस-बारह दिन मुझे बाहर रहना पड़ा, इसलिए हारान बाबू के लिए मैं बहुत ही चिन्तित हो गया था, लेकिन आकर देख रहा हूं, चिन्ता का कुछ भी कारण नहीं था।'

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, 'नहीं, वे अच्छी तरह ही थे।'

'अच्छी तरह रहें तो वही अच्छा है। अब तो मेरी कोई आवश्यकता है नहीं?'

किरणमयी ने इसके उत्तर में गरदन हिलाकर कहा, 'नहीं।'

डाक्टर ने कहा, 'तुम लोगों को मेरी आवश्यकता न रहने पर भी मेरी आवश्यकता अभी तक समाप्त नहीं हुई है। यही बात कहने के लिए मुझे इतनी दूर आना पड़ा है।'

किरणमयी ने मुंह न उठाकर ही धीरे-धीरे कहा, 'अच्छी बात तो है, मां अभी तक जाग रही हैं, उनसे कह देना आवश्यक है—मुझसे कहना व्यर्थ है।'

डाक्टर ने अपने मुंह को अत्यन्त गम्भीर बनाकर कहा, 'मैं उनके पास से ही आ रहा हूं। उनका भी कहना है, आवश्यकता नहीं, आवश्यकता समाप्त हो गई है, यह मैं भी समझ गया हूं, लेकिन डाक्टर की विदाई नामक एक बात है, उसको भूल जाने से काम नहीं चलता।'

किरणमयी मौन ही रही।

डाक्टर व्यंग करके कहने लगे—' आज पांच-छः महीने के बाद यह भार तुम ही लोगों अथवा तुम्हारी सास लेंगी, यह तुम लोगों की आपसी बात है। किन्तु जाओ कह देने से ही तो डाक्टर नहीं चला जाता किरण।'

डाक्टर के मुंह से अपना नाम सुनकर आज मानो उसको तीर की भांति बिंध गया। वह इस प्रकार सिहर उठी कि उस क्षीण प्रकाश में भी डाक्टर ने उसे देख लिया।

किरणमयी ने मधुर स्वर से पूछा, 'क्या चाहते हैं आप, रूपया?'

डाक्टर ने हंसी का बहाना दिखाकर कहा, 'आप' क्यों कहती हो। यहां और कोई उपस्थित नहीं है, 'तुम' कहने से भी दोष नही होगा। लेकिन इतने दिनों तक मैं क्या मांगता रहा हूं, सुनूं? वह क्या रूपया था?'

पुनः किरणमयी का समूचा शरीर कांप उठा।

डाक्टर बोले, 'रूपया नही चाहता, यह बात कहना बहुत कठिन है। अब तुमको जबकि उसका अभाव नहीं है, तब रूपया देकर ही विदा कर दो। मं दोनों ही ओर से ठगा जाना नहीं चाहता। लेकिन तुमको इतने दिनों मे मेरे मन की बात ज्ञात हो गई है, इसके लिए मैं तुमको ध-‍वाद देता हूं।' आज अन मैं अधिक विरक्त न करूंगा। पूछता हूं, कल एक बार आ सकता हूं।'

यह मनुष्य भीतर ही भीतर किस प्रकार जल रहा था और यह सब उसका ही फेंका हुआ उत्तप्त भस्मावेष है इसे निश्चित समझ कर भी किरणमयी ने शान्त दृढ़ स्वर से मुंह ऊपर उठाकर कहा, 'नहीं। आप ठहरिए, मैं इसी समय ला देती हूं।' कह पास का दरवाजा खोलकर वह शीघ्रता से चली गई।

इस बार डाक्टर भयभीत हो उठा। किरण को वे पहचानते थे। कहां क्या लाने के लिए गई है, हठात् इतनी रात को कैसा एक असम्भव काण्ड कर कहां का हंगामा, कहां खींच लाएगी। वह चोट खाकर गई है, लौट कर निर्दय प्रतिघात अवश्य करेगी। उसके सुनिश्चत प्रतिशोध की कठोरता की कल्पना कर अनंगमोहन भय से स्तंभित हो रहा।

किरणमयी को लौट आने में देर नही लगी। उसने चुपचाप मुंह झुकाए आंचल में बंधे हुए कुछ आभूषण डाक्टर के पैरों के निकट बिखेर कर धीरे-धीरे कहा, 'यह लीजिए, आपका पावना कितना है, उसका हिसाब इतने दिनों के बाद करना व्यर्थ है, इतना समय

भी मेरे पास नहीं है, धीरज भी न रहेगा—जो कुछ मेरे पास था, सब ही आपको लाकर मैंने दे दिया है, इसी को लेकर हमें छुटकारा दीजिए—आप जाइए!

अनंग पीले चेहरे से चुप रहे। किरण ने कहा—'देर क्यों कर रहे हैं? विश्वास कीजिए, मेरे पास और कुछ भी नहीं है। जो कुछ था, सब लाकर मैंने दे दिया है—रात हो रही है, अब आप विदा हो जाइए।'

अनंग भयग्रस्त होकर बोले—'मैंने तो तुम्हारे शरीर के गहने मांगे नही। केवल रूपया मांगा था। वह भी..'

किरण अत्यन्त उग्र भाव से बोली—'गहने भी रूपये ही हैं, यह बात समझने की आयु आपकी हो गई है। व्यर्थ ही बहाना करके क्यों झूठ-मूठ देर कर रहे हैं।

इस बार अनंग जोर से सिर हिला कर बोल उठे—'नहीं, मैं किसी प्रकार भी यह सब न ले सकूंगा।'

किरणमयी निकट ही बैठ गई थी, बिजली के समान तमक कर बोली—'क्या? क्यों न ले सकेंगे? आप दया कर रहे हैं किस पर? आपको जो कुछ मैंने दिया, उसे किसी प्रकार भी मैं वापस न ले सकूंगी, यह बात मैं निश्चित रूप से कहे देती हूं।' एक क्षण मौन रह कर उसने कहा—'आप यदि न भी लेंगे तो कल यह सब ही गरीबों में बांट दूंगी लेकिन घर में रख कर किसी प्रकार भी पति का अकल्याण न करूंगी।' —यह कहकर पैरो से उन सबको जरा ठेलकर उसने कहा—'लीजिए, उठाइए इन सबको!'

अन्तिम बात इतनी कड़ी सुनाई पड़ी कि हत्बुद्धि अनंगमोहन झुक कर उन सबको उठाने लगा।

किरणमयी क्षण भर उस ओर ताकती रही, फिर अपनी उग्रता को संभाल कर घृणा के साथ उसने कहा—'ले जाइए, ये सब चिह्न इस मकान में जब तक रहेंगे, तब तक मेरे मुंह में अन्न न रूचेगा न आंखों में नींद आयेगी।'

डाक्टर सबको समेट कर उठ खड़ा हुआ। किरणमयी ने अधीर भाव से कहा—'रात तो बहुत हो गई!'

डाक्टर ने कहा—'जा रहा हूं। लेकिन तुमने भी भूल की। ये गहने मैंने तो दिए नहीं, सब ही तुम्हारे अपने हैं। तो भी, क्यों मेरे न लेने से तुम गरीब दुखियों में बांट दोगी, यह मैं समझ न सका। मुझे तुम क्षमा करो किरण।'

किरणमयी धमका कर बोली—'फिर मेरा नाम लेते हैं—हां, ये सब अवश्य मेरी ही वस्तुएं हैं, लेकिन उन सबके मोह से ही मैंने आपसे सहायता ली थी। रात बहुत हो गई डाक्टर साहब!'

डाक्टर ने अपने नाम का छपा एक कार्ड निकाल कर कहा—'मेरे मकान का यह ठिकाना..।'

'दीजिए!' कहकर किरणमयी ने हाथ बढ़ाकर ले लिया, और पीछे की ओर जाकर जलते हुए चूल्हे में उसे फेंक कहा—'इससे अधिक मुझे आवश्यकता न पड़ेगी। आप अभी-अभी मुझसे क्षमा मांग रहे थे न? आपको पूर्ण रूप से क्षमा कर सकूंगी इसीलिए मैंने आपका सब ऋण, सब सम्बन्ध समाप्त कर डाला। किसी दिन किसी कारण से भी आपकी कोई बात मेरे मन में न आवे, जाते समय केवल यही बात आप कहते जाइए।'

और किसी प्रकार के प्रश्नोतर की प्रतीक्षा न करके ही किवाड़ बन्द करके वह अपनी रसोई के स्थान पर वापस जाकर बैठ गई।

इस अवहेलना और लांछन ने पहले तो डाक्टर को गम्भीर आघात पहुंचाया, किन्तु दूसरे ही क्षण एक लज्जाजनक दुर्घटना की सम्भावना उनके मन में उठने के साथ ही वह भीतर बात क्या है, सुनने के लिए व्यग्र हो उठा। उसको प्रतीक्षा करने में आपत्ति नहीं थी और प्रतीक्षा करता ही रहा किन्तु कोई भी लौट कर नहीं आया। तब खड़ा-खड़ा कितना क्या सोचकर चले जाने का विचार करके बैग उठाकर जब खड़ा हुआ और दृष्टि ऊपर उठाई तो देखा किरणमयी है। डाक्टर ने अपने अभिमान को रोककर कहा—'जरा हटो, बड़ी देर हो गई और भी बहुत रोगी राह देख रहे हैं—मां जी अच्छा हैं न?'

'अच्छी हैं।' कहकर किरणमयी एक ओर हटकर खड़ी हो गई।

बाहर डाक्टर के पैरों का शब्द जब उसके कानों के बाहर चला गया, तब उसने एक लम्बी सांस लेकर देखा, चूल्हा बुझ गया है। फूंककर उसे जलाकर और एक लम्बी सांस लेकर वह फिर चुपचाप बैठ गई।

प्यास से गला सूख गया था, तो भी वह उठ न सकी। उसको ध्यान आने लगा, मानो बाहर के अन्धकार में तब भी कोई उसके लिए हाथ बढ़ाकर प्रतीक्षा कर रहा है। छाती के अन्दर ऐसा ही अशान्त हो उठा कि दोनों बाहुओं से जोर लगा कर उसने उसे दबा रखा। विदाई के इस कार्य को एक दिन उसको पूरा करना ही पड़ेगा, यह बात वह निश्चय रूप से जानती थी। प्रयोजन आ पड़ने से उसने जिसको अपने घर बुलाकर पाल-पोस कर बड़ा किया था, वह आज ही 'जाओ' कह देने से ही चला गया, असम्भव काम कैसे हो गया!

हठात् किवाड़ खुलने की आवाज से किरण ने चकित होकर मुंह ऊपर उठाकर देखा, दासी कह रही—'चूल्हा बुझकर तो पानी हो गया बहू! रात भी कम नहीं हुई है।

किरणमयी झटपट उठ पड़ी, उसके पास जाकर चुपके-चुपके उसने पूछा—'डाक्टर है या चला गया री?'

दासी दीपक को तेज करते हुए वह बोली— 'उसको गये लगभग दो घंटे हो गये। लेकिन तुमसे कहे देती हूं बहू जी_ !' अचानक उसकी जीभ रूक गई। दीपक को ऊपर उठाकर आभूषण हीन बहू का सर्वांग बार-बार देखकर फर्श के ऊपर दीपक को रखकर वह बैठ गई और बोली—'यह सब कैसा काण्ड है बहू!'

17

दिवाकर के बड़े दु:ख की रात बीत गई और सवेरा हो गया। कल सबेरे उसे गुप्त रूप से बी० ए० की परीक्षा में फेल होने की सूचना मिली थी और संध्या को अपने ही विवाह के बारे में अपने ही कमरे में सामने खड़े रहकर उपेन भैया को प्रसन्न चित्त से, परम उत्साह के साथ भट्टाचार्य जी के साथ बातचीत करते सुन वास्तव में ही उसने निश्छल हृदय से अपनी मृत्यु की कामना की थी। सद्य: पुत्र खो देने वाली जननी जैसे दु:ख से सो जाती है और व्यथा से ही फिर जग भी उठती है, उस अभागिनी की तरह वह भी

आज व्यथा पाकर नींद टूटने पर उठ गया। आंखें खोलकर उसने देखा, कमरे के पूरब की ओर शीशे पर प्रकाश की झलक पड़ रही है। आज इस प्रकाश के साथ उसने रंचमात्र भी सम्बन्ध अनुभव नहीं किया। दिन की इन प्रथम किरणों का सम्मान के साथ उठकर प्रणाम किया जाता है, यह बात उसे याद ही नहीं पड़ी। धर्मशाला के पूर्ण अपरिचित अतिथि के चेहरे की भांति इन प्रकाश कणों की ओर वह परम उदासीन भाव से देखता हुआ बिस्तर पर ही पड़ा रहा। स्वच्छ शीशे के बाहर असीम नीलाकाश दिखाई पड़ रहा था। एकाएक उसके मन में यह विचार आया कि इस विराट् सृष्टि के किसी कोने में भी उसके लिए ज़रा-सा भी स्थान है या नहीं। उसके बाद जितनी दूर तक दिखाई पड़ा, ध्यान से उसने देखा, नहीं, कहीं नहीं। सृष्टिकर्ता ने इतना सृजन किया है अवश्य लेकिन ऊपर, नीचे, आस-पास, जल में, सुई की नोक बराबर स्थान भी उसके लिए नही रखा है। उसकी मां नहीं है, उसके बाप नहीं हैं, घर नहीं है, सम्भवतः जन्मभूमि भी नहीं है। वास्तव में अपना कहलाने वाला कहीं भी कोई नही है। यही तो अत्यन्त छोटा-सा कमरा है, सत-सहस्त्र बन्धनों से जिसके साथ वह जकड़ा हुआ है, होश होने के बाद से जिसने उसको मातृ-स्नेह की भांति आश्रय दे रखा है, वह भी उसका अपना नहीं है—यह उसके मामा का घर है। यह आश्रय उसकी जननी का नहीं है—विमाता का है।

इस प्रकार दुःख की चिन्ताएं जब क्रमशः जटिल ओर विस्तृत होती जा रही थीं, अचानक उपेन्द्र का कंठ स्वर सुनकर एक ही क्षण में वह सीधे मार्ग पर लौट आया। वह झटपट उठ बैठा, खिड़की खोलकर मुंह बढ़ाकर उसने देखा, उपेन्द्र नौकर को कुछ उपदेश देकर बाहर चले गये। वे तो किसी ओर न देखकर सीधे चले गये, लेकिन दिवाकर ने अपनी उन दोनों आंखों में व्यथा अनुभव करके मुंह घुमा लिया। उसको ज्ञात हुआ, मानो छोटे भैया के उन्नत ललाट पर कुछ सूर्य किरणें धक्का खाकर उसके नेत्रों पर आकर पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। वह फिर एक बार शय्या का आश्रय लेकर निर्जीव की भांति आंखें बन्द करके लेट गया और चिन्ताओं ने उसी क्षण उसको फिर दबा लिया।

आज भी अभ्यास के अनुसार उसकी नींद प्रातःकाल में ही टूट गई थी लेकिन पिछली रात को उसको नींद नहीं आयी थी। दुःस्वप्न रूपी भूत-प्रेत का दल सारी रात मानो इस शरीर को लेकर खींचातानी करते रहने के बाद अभी तुरन्त छोड़ गया है। उनकी छोड़ी हुई लम्बी सांस की भाप अभी तक कमरे के कोने में जमा होकर पड़ी हुई है, इसका अनुभव वह आंखें बन्द किये ही करने लगा। फिर फेल होने की बात याद आयी। अनेक दुःख सहकर उसने पढ़ा-लिखा है पर सब ही व्यर्थ गया! आज यह समाचार सभी सुनेंगे। फिर जैसे धुआं एक छोटे से सुराख़ से भीतर आकर सारे घर में भर जाता है, उसी प्रकार इस एकमात्र निष्फलता के छोटे द्वार के सहारे निराशा के घने अन्धकार में उसका मन एकदम डूब गया।

कोई आठ बजने का समय है। वह दोनों हाथों की मुट्ठी बांधे उठ बैठा और बोला—'नहीं, क़िसी प्रकार भी नहीं। छोटे भैया चाहे अप्रसन्न हों, भाभी चाहे दुःखी हों किन्तु मैं किसी भी प्रकार विवाह न कर सकूंगा। जो गृहलक्ष्मी होगी; वह आप ही मेरे घर आयेंगी या कभी न आयेंगी। आने पर मैं उसको आदरपूर्वक रखूंगा; लेकिन उसे असम्मान के बीच में खींचकर नहीं लाऊंगा, इस संकल्प से मुझे कोई हटा नहीं सकेगा।